सुकवि-माधुरी-माला—तृतीय पुष्प

मिश्रबंधु-विनोद

अथवा

हिंदी-साहित्य का इतिहास तथा कवि-कीर्तन

लेखक

"मिश्रबंधु"

साहित्य-समालोचना के उत्तम ग्रंथ

मिश्रबंधु-विनोद

अथवा

हिंदी-साहित्य का इतिहास तथा कवि-कीर्तन

(प्रथम भाग)

लेखक

गणेशबिहारी मिश्र

रावराजा डॉक्टर श्यामबिहारी मिश्र

डी० लिट्०, साहित्य-वाचस्पति,

रायबहादुर डॉक्टर शुकदेवबिहारी मिश्र

डी० लिट्०, साहित्य-वाचस्पति

(मिश्रबंधु)

"ते सुकृती नरेंद्र कवि कैलास जग माहिं,
जिनके सुजस-सरीर को जरा-मरन-भय नाहिं।"

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, गौतम बुद्ध-मार्ग

लखनऊ

पंचम संस्करण } सं० २०१२ वि० { मूल्य ५)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. भारती (भाषा)-भवन, ३८१०, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
३. सुधा-प्रकाशन, भारत-आश्रम, राजा बाज़ार, लखनऊ
४. वेस्टर्न बुकडिपो, रेज़िडेंसी रोड, नागपुर—१

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुक्सेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुक्सेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके यहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
वंशीधर-प्रेस
कोठी वंशीधर
इलाहाबाद

मिश्रबंधु-विनोद

पहला भाग

विषय-सूची

भूमिका

ग्रंथ के भाग तथा संस्करण

अब चार भाग-संयुक्त इस ग्रंथ के प्रथम भाग का चतुर्थ संस्करण निकल रहा है। पहला संस्करण संवत् १९७० में निकला था। उस समय इसमें तीन भाग, १,५०३ पृष्ठ तथा ३,७५७ कवियों एवं लेखकों के विवरण थे। इनमें से ३,०१२ के कथन समालोचनाओं तथा चक्रों में थे, एवं शेष ७४५ वर्तमान लेखकों की एक सूची में दी गई थी। दूसरे संस्करण में चार भाग एवं ४१२, ५६० ३६८ और ६६०, कुल २,००५ पृष्ठ थे, जिनमें से ७८५ लेखकों की उपर्युक्त सूची निकाल डाली गई थी। कुल मिलाकर ४,५०१ कवियों एवं लेखकों के विवरण समालोचनाओं तथा चक्रों में दिए गए थे। जब तक चतुर्थ भाग निकले, उसके पूर्व ही प्रथम भाग का तृतीय संस्करण, सं० १९८६ में, निकल गया। प्रथम तीन भागों के द्वितीय संस्करण उसी साल में निकले। चौथा भाग एक नवीन ग्रंथ है। इसकी प्रथमावृत्ति सं० १९९१ में निकली। इसका प्रायः सब मसाला नवीन है, अर्थात् अन्य ग्रंथों से न लिया जाकर खोज से प्राप्त किया गया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के प्राचीन हस्त लिखित हिंदी-ग्रंथों की खोज में सं० १९२३ तक के ही ग्रंथों के विवरण रहते हैं, और इसके पीछे वालों के कथन छोड़ दिये जाते हैं। फिर भी उस खोज के कुछ लेखकों का कथन चतुर्थ भाग में है। यह भाग सं० १९४५ से १९९० तक चलता है।

जैसे चतुर्थ भाग अधिकांश एक नवीन ग्रंथ है, वैसे ही इस प्रथम भाग में भी इस बार इतना अधिक बढ़ाव हुआ है कि यह भी अर्द्ध-नवीन ग्रंथ हो गया है। इसका पहला संस्करण ३१ वर्ष हुए छपा था, सो भूमिका में इस

काल जो कथन किए गये, उनमें से कई समय की गति से बदल गये हैं। कई कारणों से प्रथम संस्करण की भूमिका कुछ बड़ी हो गई थी। ग्रंथ जनता के सामने इतने वर्षों से उपस्थित है, सो उन कथनों में से बहुतेरे अब अनावश्यक समझ पड़ते हैं। आजकल संसार की प्रगति संक्षिप्त गुण की ओर बहुत है। इन कारणों से प्रथम तीन संस्करणों की भूमिकाएँ हटाकर अब एक ही लिखी जाती है, सो भी संक्षेप में।

इस ग्रंथ को कलकत्ता, पटना, बनारस, इलाहाबाद, आगरा, लखनऊ, दिल्ली, पंजाब, नागपुर आदि के विश्वविद्यालयों ने पाठ्य-ग्रंथ नियत करके हमें आभारी किया है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन एवं कई अन्य संस्थाओं ने भी इसे अपनाने का औदार्य दिखलाया है। इस प्रकार अब यह ग्रंथ मानो जनता का ही हो गया है। अतएव इसमें अनावश्यक घटाव-बढ़ाव, जहाँ तक हो सके, न करना ही ठीक है। फिर भी, कई वर्षों से, हिंदी की इतनी अधिक चर्चा है कि ज्ञान-वृद्धि परम शीघ्रता से हो रही है। अतः न चाहते हुए भी परिवर्तन तथा परिवर्द्धन करने ही पड़ते हैं।

आरंभ

हिंदी इतिहास-ग्रंथ बनाने का विचार हमने पहलेपहल दिसंबर सं० १९५८ की सरस्वती पत्रिका में प्रकट किया। उस समय एक सौ समालोचनाओं के सहारे ऐसा करने का भाव था। इस ग्रंथ में इतिहास-संबंधी सभी गुण लाने का प्रयत्न हुआ है, किंतु वर्णन-पूर्णता के विचार से छोटे-बड़े प्रायः सभी कवियों का वर्णन किया गया है।

लेखन-शैली

इस ग्रंथ को हम तीन भाइयों ने मिलकर बनाया है, सो लेखकों के लिये सदैव हम, हम लोग आदि शब्द इसमें मिलेंगे। बहुत स्थानों पर लेखकों द्वारा ग्रंथादि देखे जाने या अन्य कार्य किए जाने के कथन हैं। इन स्थानों पर 'हम' शब्द से सब लोगों के द्वारा उसके किए जाने का प्रयोजन निकलता है, परंतु हम तीनों में से किसी ने भी जो कुछ किया है, उसका भी वर्णन हमने 'हम' शब्द से किया है। एक-एक, दो-दो मनुष्यों के कार्यों को अलग लिखने से

ग्रंथ में अनावश्यक विस्तार होता और भद्दापन आता। फिर अधिकतर स्थानों पर सभों की राय मिलाकर लेख लिखे गए हैं। तीनों लेखकों के कार्यों को अलग-अलग दिखाना हमें अभीष्ट भी न था। ग्रंथ में जहाँ एक संवत् के नीचे कई नाम आए हैं, या अज्ञात अथवा वर्तमान समय में बिना संवत् लिखे हो नाम लिखे गए हैं, वहाँ वे अकारादि-क्रम से लिखे हैं।

काल-क्रम

कवियों के पूर्वापर क्रम रखने में हमने जन्म-संवत् का विचार न करके काव्यारंभ-काल के अनुसार क्रम रक्खा है। साहित्य-सेवा की दृष्टि से किसी का जन्म उसी समय से माना जा सकता है, जब से वह रचना प्रारंभ करे। इसी कारण कई छोटी अवस्थावाले लेखकों के नाम बड़ी अवस्थावालों के पूर्व आ गए हैं। काल-नायकों के कथनों में इस नियम से प्रतिकूलता है। काल-नायक केवल काव्योत्कर्ष के विचार से नहीं रक्खे गए हैं, वरन् इसके साथ उनके वर्णित विषय, उनका तात्कालिक प्रभाव और उनके समयों के विचार भी मिले गए हैं। सूदन-काल संवत् १८११ से १८३० तक चलता है। इसके नायक बोधा भी हो सकते थे, परंतु उनका कविता-काल १८३० से प्रारंभ होता है, सो समय से पीछे होने के कारण वह समय-नायक नहीं बनाए गए। फिर भी उनका वर्णन इसी समय हुआ। कई स्थानों पर ऐसा हुआ है कि कवियों के जिस संवत् में उनका वर्णन हुआ है, उससे बहुत पीछे तक रचना की। जैसे सुन्दर शाहूपयी का कथन संवत् १६७८ में हुआ है, परंतु उनका रचना-काल १७४६ तक चला गया है। ऐसे स्थानों पर इतिहास-ग्रंथ में, प्रकट में, कुछ भ्रम अवश्य देख पड़ेगा, परंतु किसी कवि का वर्णन तो एक ही स्थान पर हो सकता है, और वह स्थान उसके रचनारंभ का ही होना चाहिए, नहीं तो उससे पीछे के कविगण उससे पहले के समझ पड़ेंगे।

आधार

हमने इस ग्रंथ में बहुत से कवियों तथा ग्रंथों के नाम लिखे हैं। बड़े लेखों में तो प्रायः संवतों और ग्रंथों के ब्योरे यहीं लिख दिए गए हैं कि किस प्रकार से उपलब्ध हुए, परंतु छोटे लेखों में बहुधा ऐसा नहीं लिखा गया है।

कहीं कहीं ठीक संवत् न लिखकर हमने केवल यह लिख दिया है कि कवि अमुक सवत् के पूर्व हुआ। सवतों एव ग्रंथों के नाम हमें निम्न लिखित-प्रकार से ज्ञात हुए है—

(१) स्वयं उन्हीं कवियों की रचनाओं से।
(२) अन्य कवियों की रचनाओं से।
(३) काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज से।
(४) शिवसिंहसरोज से।
(५) डॉक्टर ग्रियर्सन-कृत मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़् हिंदोस्तान एवं लिंग्विस्टक सर्वे ऑफ् इंडिया से।
(६) अपनी जाँच एवं किंवदंतियों से।
(७) जोधपुर-निवासी मुन्शी देवीप्रसाद के लेखों से।
(८) अन्य ग्रंथों इत्यादि से।

विवरण

(१) हिंदी-इतिहास के सबध में यह बड़े हर्ष की बात है कि कवियों में रचना-काल दे देने की रीति प्राचीन समय से चली आती है। इससे सैकड़ों कवियों के विषय में सुगमता से भ्रम-हीन सवत् प्राप्त हो गए। कविगण अपने ग्रथों में स्वरचित अन्य ग्रथों के भी हवाले कहीं-कहीं देते हैं। इन हवालों से उनके अन्य ग्रंथों के नाम ज्ञात हुए हैं। 'विनोद' में जहाँ कहीं संवत् लिखने में प्रकट रूप से कवि के ग्रथों का हवाला नहीं दिया गया है, वहाँ भी गौण रूप से वह मिल जाता है। कहीं-कहीं रचना-काल में तो संवत् लिखा ही है, ग्रंथनामावली में ग्रंथ के सामने भी, ब्रैकेट में, सवत् लिख दिया गया है। ऐसे स्थलों पर समझ लेना चाहिये कि सवत् उसी ग्रंथ से ज्ञात हुआ है। कहीं-कहीं ग्रथों या अन्य प्रकार से किसी कवि का जन्म-काल मिल गया, परतु उसका रचना-काल प्रामाणिक रीति पर नहीं मिला। ऐसी दशा में कवि के योग्यतानुसार ज्ञात बातों पर ध्यान देकर जन्म-काल में २० से ३० वर्ष तक जोड़कर हमने कविता-काल निकाला है। जहाँ लेख से किसी प्रकार यह न प्रकट

होता हो कि सवत् ग्रंथ मे मिला है, वहां उसे अन्य प्रकारों से उपलब्ध समझना चाहिए।

(२) बहुत-से कवियों ने अन्य भाषा के कवियों के नाम अपनी रचनाओं में रक्खे हैं। ऐसे लेखों से यह प्रकट हो गया कि लिखित कवि लेखक कवि का या तो समकालिक था, या पूर्ववर्ती। कहीं-कहीं कवियों के ग्रंथों की प्राचीन प्रतियां मिलीं, जिनमें उनके लिखे जाने के समय लिखे हैं। इन दोनों दशाओं में यह लिख दिया गया है कि कवि अमुक समय से पूर्व हुआ। जिन ग्रंथों में अन्य कवियों के नाम विशेषतया पाए जाते हैं, उनका ब्योरा यों है—

संवत् १७१८ के कविमालासंग्रह में कई कवियों के नाम हैं।

सवत् १७७८ के लगभग संगृहीत कालिदास-हजारा में २१२ कवियों की रचनाएं हैं।

सवत् १७९२ के दलपतिराय-वंशीधर-कृत अलंकार-रत्नाकर में ४४ कवियों के नाम हैं।

सवत् १८०० का सर्वांग कवि द्वारा संगृहीत सारसंग्रह पंडित युगलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय में है। इसमें प्रायः १५० कवियों की रचनाएं पाई जाती हैं।

सवत् १८०३ का रसचंद्रिकाविलाससंग्रह।

सवत् १८७४ का विद्वन्मोदतरंगिणीसंग्रह।

सवत् १९०० का रागसागरोद्भवसंग्रह।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त सूदन कवि ने, सं० १८१० मे, सुजान-चरित्र-नामक ग्रंथ रचा, जिसमें उन्होंने १५० कवियों के नाम प्रारंभ में दिए हैं। सूर्यमल-कृत १८९७ वाले वंशभास्कर में भी प्राय १२५ कवियों के नाम हैं।

(३) काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा सरकारी सहायता से, संवत् १९५६-५७ से, हस्त-लिखित ग्रंथों की खोज करा रही है। इसमें प्राय २००० कवियों के नाम आए हैं, और अनेकानेक उपयोगी ग्रंथों एवं उनके सवतों का पता लगा है। खोज करनेवाले पुरुष स्थान-स्थान पर घूमकर ग्रंथों को देखते और उनके सवतों आदि का पता लगाते हैं। इसकी १२-१५ रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी हैं,

और शेष हस्त-लिखित हैं। जहाँ हमें ग्रंथों से कोई पता नहीं लगा है, वहाँ किसी अन्य उचित कारण के अभाव में हमने खोज का प्रमाण माना है। इस खोज का हमने खोज शब्द से ही ग्रंथ में यत्र-तत्र हवाला दिया है। इससे हमें सामग्री-संचय में बड़ा सहारा मिला है।

(४) जहाँ सरोज और खोज में भेद निकला है, वहाँ किसी अन्य कारण के अभाव में हमने खोज का ही प्रमाण माना है खोज ने किसी ख़ास पते के अभाव में सरोज के संवत् को स्वीकार किया है। सरोज के कुछ संवतों में गड़बड़ रह गया है, और उनके दुरुस्त करने का पूरा प्रयत्न भी नहीं किया गया। जैसे कालिदास, कविंद और दूलह को सरोजकार ने पिता, पुत्र और पौत्र मानकर भी उनके समयों में बहुत ही कम अंतर रक्खा है। खोज में इससे अधिक श्रम किया गया है इसी कारण हमने उसका अधिक प्रमाण माना है। सरोज में प्रायः कविता-काल को उत्पत्ति-काल लिखा गया है। शिवसिंह सरोज का हमने प्राय. 'सरोज' शब्द से हवाला दिया है।

(५) डॉक्टर साहब ने विशेषतया सरोज का ही आधार ग्रहण किया है, परंतु कई स्थानों पर उन्होंने नई बातें भी लिखी हैं, जिनकी सत्यता के कारण भी दे दिए हैं। सरोज में मैथिल-लेखकों का कथन संतोषदायक नहीं है। इधर डॉक्टर साहब स्वयं बिहार में नियुक्त रहे हैं, इस कारण मैथिल-कवियों के विषय में आपके अनुसंधान माननीय हैं। आपके ग्रंथों से हमें कुछ मैथिल-कवियों का पता मिला है।

(६) जब किसी अन्य समुचित प्रकार से समय का पता नहीं लगा, तब हमने लोगों से पूछ-पाछकर कई कवियों के काल निर्द्धारित किए। ऐसी दशा में हमने यह बात उन वर्णनों में लिख दी है। वर्तमान समयवाले कवियों के हाल में पता लगाए हुए लेखक बहुत अधिक हैं। उनमें जहाँ कुछ न लिखा हो, वहाँ यही समझना चाहिए कि हाल पता लगाने से ही मिला है।

(७) स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी हमारे यहाँ प्रसिद्ध इतिहासज्ञ थे। आपने इतिहास के विषय में खोज भी अच्छी की थी। राजपूतानावाले कवियों के विषय में हमें आपसे अच्छी सहायता मिली। वर्तमान समय के कवियों एवं लेखकों के नाम हमें विशेषतया समस्या-पूर्ति के पत्रों, पत्रिकाओं, सामाजिक पत्रों एवं

अन्य पत्र-पत्रिकाओं से मिले। उनके ग्रंथ आदि का हाल जानने को हमने प्रायः ५०० कार्ड लेखकों के पास भेजे और भेजवाए, तथा प्रायः २० सामयिक पत्रों में यह प्रार्थना प्रकाशित कराई कि हम इतिहास-ग्रंथ लिख रहे हैं, सो कवि एवं लेखकगण कृपया अपना या औरों का हाल हमें भेजने की अनुग्रह करें। इनके उत्तर में प्रायः ३०० महाशयों ने अपनी या औरों की जीवनी हमारे पास भेजने की कृपा की। इसके अतिरिक्त जो कुछ हमें ज्ञात था, उसके सहारे से हमने इस ग्रंथ में लेखकों के वर्णन किए हैं। जिन वर्तमान लेखकों के निश्चित परिचय नहीं मिल सके, उनकी अवस्था आदि के विषय में कहीं-कहीं अनुमान से भी वर्णन लिख दिए गए हैं, परंतु यह अनुमान ऐसों ही के विषय में किया गया है, जिनसे हम मिल चुके हैं। इस ग्रंथ में बहुत-से ऐसे कवियों के वर्णन हैं, जिनके काल-निरूपण में भूल होनी संभव है। इस संबंध में यही निवेदन करना है कि यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि एक मनुष्य सब कुछ नहीं जान सकता। बहुत-सी ऐसी भी बातें हैं, जो पता लगाने से भी हमें न ज्ञात हुईं, परंतु औरों को वे सहज ही में मालूम हैं। यदि वे उन बातों को हमें सूचित करेंगे, तो आगे के संस्करणों से ये भूलें निकल सकेंगी।

सहायक

इसी स्थान पर हम उन सज्जनों का भी कथन कर देना चाहते हैं, जिन्होंने कृपा करके इस ग्रंथ की रचना में हमें सहायता दी। सबसे अधिक धन्यवादार्ह बाबू श्यामसुंदरदास हैं। यह बहुत करके उन्हीं के प्रयत्नों का फल है कि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने सरकार से हिंदी-ग्रंथों की खोज के लिये आर्थिक सहायता पाई, और १८ वर्षों से सभा यह काम सफलता-पूर्वक कर रही है। यदि खोज ने यह प्रशंसनीय काम न कर रक्खा होता, तो ऐसा पूर्ण साहित्य-ग्रंथ कदापि न बन सकता। शिवसिंहसरोज से भी हमें बहुत सहायता मिली है। स्वर्गीय गोविंद गिल्लाभाईजी ने काठियावाड़ से कवियों और ग्रंथ-लेखकों की विवेचना-सहित एक सूची भेजी, जिससे प्रायः ५०० लेखकों का पता चला। ग्वालियर-निवासी श्रीयुत भास्कर रामचंद्र भालेराव से गुजरात, महाराष्ट्र, बुंदेलखंड आदि के सौ-डेढ़ सौ अमुद्रित कवियों के विवरण मिले। मारवाड़-निवासी मुंशी देवीप्रसादजी ने हमें प्रायः १०८ कवियों की एक नामा-

वली भेजी, जिसमें हमें २०५ नए नाम मिले। मुंशीजी ने हमारे पूछने पर इन २०५ कवियों के विषय में विशेष विवरण लिखने की भी कृपा की। वृंदावन के श्रीहितरूपलाल गोस्वामीजी ने ४०-५० नाम विवेचना-सहित दिए। श्रीभवानी-शंकर याज्ञिक से कई कवियों के समय-निरूपण में योग मिला। लाला भगवान-दीनजी ने भी हमें १८५ कायस्थ कवियों की नामावली भेजी, और पंडित मक्खन द्विवेदी गजपुरी तहसीलदार संयुक्तप्रांत ने भी प्राय: ४० कवियों की नामावली भेंट की। इन दोनों नामावलियों में प्राय ६० नए नाम मिले। सवना-निवासी गोस्वामी भोलानाथ ने ९३ कवियों की नामावली भेजने की कृपा की। पंडित ब्रजरत्न भट्टाचार्य ने वर्तमान समय के २७ लेखकों के नाम हमें लिख भेजे। इन दोनों महाशयों के नामों में भी कुछ नए नाम मिले। गंधौली-निवासी स्वर्गवासी पंडित युगलकिशोर ने प्राचीन एवं प्रसिद्ध कवियों तथा ग्रंथों के विषय में हमें बहुत-सी बातें बताईं, जिनके कथन इस ग्रंथ में एवं नवरत्न में जहाँ-तहाँ मिलेंगे। कोरौना-निवासी पंडित विश्वनाथ त्रिवेदी ने हमारे लिये वर्तमान कवियों के पास प्राय. ३०० कार्ड भेजने की कृपा की। उपर्युक्त महानुभावों को हम उनकी कृपा के लिये अनेकानेक धन्यवाद देते हैं। श्रीमान् महाराजा सर विश्वनाथसिंहजू देव बहादुर, छतरपुर ने वैष्णव-संप्रदाय के तथा अन्य कवियों के विषय में बहुत-सी उपयोगी बातें हमें बताने की दया की, और अपना बृहत् पुस्तकालय भी दिखलाकर बड़ा अनुग्रह किया। श्रीमान् की दया बिना वैष्णव कवियों एवं संप्रदायों का पूरा हाल हमें न ज्ञात होता। चिरंजीव कृष्णविहारी मिश्र और प्रियवर दुलारेलाल भार्गव ने द्वितीय संस्करण के संपादन में अच्छी सहायता दी। ठाकुर मंगलप्रसादसिंह, पोखरपुर-परसा (सारन) ने बिहार-प्रांत के बहुत-से कवियों तथा लेखकों के चरित्र भेजे।

श्रेणी-विभाग के कारण

हमारी सम्मति से विनोद में कथित बहुतेरे कवि कुछ-कुछ उत्कृष्ट हैं, फिर भी अपेक्षित दृष्टि से उनमें ज़मीन-आसमान का अंतर पाया जाता है। इस कारण प्रत्येक कवि की विस्तृत आलोचना करने में, कवि-संख्या-बाहुल्य से, ग्रंथ बहुत बढ़ जाता, और कुछ भी स्पष्ट अनुमति न देने से कविता से कम परिचित

पाठकों को प्रत्येक कवि की बड़ाई-छोटाई का बहुत कम ज्ञान हो सकता। कई पदार्थों के प्रशंसनीय-मात्र कहने से उनमें अपेक्षाकृत प्रशंसा की मात्रा का भेद वर्णन को बहुत बढ़ाए बिना समझ में नहीं आ सकता। उधर श्रेणी-विभाग स्थिर करने से यह भेद बहुत शीघ्र, दो ही शब्दों द्वारा, प्रकट हो जाता है, और बिना श्रेणी-विभाग के वर्णन बढ़ाने से इस बात पूर्ण अंतर समझ में आ जाना कठिन है। सरोजकार एवं भाषाओं के अन्य इतिहासकारों ने श्रेणी-विभाग स्थिर किए बिना ही कवियों की प्रशंसा की है। इन प्रशंसाओं से अधिकांश दशाओं में कवियों की अपेक्षाकृत गरिमा का भेद ज्ञान नहीं होता। इन्हीं कारणों से हमने किसी-प्राचीन प्रमाण के अभाव में भी श्रेणी-विभाग चलाने का साहस किया है। अनेक सज्जन हमसे इस कारण बहुत कुछ रुष्ट भी हो गए हैं, पर हमसे और कोई दूसरा ढंग उन्होंने नहीं स्थिर किया कि कवियों की आपेक्षिक छोटाई-बड़ाई कैसे व्यक्त की जाय? अतः श्रेणी-प्रथा को हम नहीं हटा सकते। श्रेणियों में रखने के विचार में हमने केवल काव्य-प्रौढ़ता पर ध्यान दिया है, एवं 'कवियों के महात्मा या महाराज आदि होने की कुछ भी परवा नहीं की, केवल थोड़े-से ऐसे महाशयों को इस कारण हमने किसी भी श्रेणी में नहीं रक्खा। श्रेणी नियत करने में मतभेद होना स्वाभाविक है, और इसमें झगड़े की कोई आवश्यकता नहीं। सभी स्थानों पर हमारे लेखों से कवि की किसी श्रेणी-विशेष में स्थिति के कारण नहीं मिलेंगे। ऐसे स्थानों पर ये स्थितियाँ हमारी सम्मति-मात्र प्रकट करती हैं, जो उक्त कवियों की कविता देखने से स्थिर हुई हैं। यदि कोई महानुभाव किन्हीं कवियों के ग्रंथ पढ़कर हमारे मत को अप्रमाण मानें, तो हमें उनसे कुछ नहीं कहना है। श्रेणी-विभाग उन्हीं लोगों को लाभदायक हो सकता है, जिन्होंने इन कवियों के ग्रंथ न देखे हों, अथवा जो हमारी कारण-कथन-हीन सम्मति-मात्र को प्रमाण मानें। विद्वज्जनों को यथावलोकन से इन सम्मतियों के कारण स्वयं ज्ञात हो जाएँगे, क्योंकि यथासाध्य पूर्ण विचार के बाद ही सम्मति दी गई है। प्रत्येक स्थान पर कारण लिखने से ग्रंथ का विस्तार बहुत अधिक बढ़ जाता। काव्योत्कर्ष कैसे आता है, और दोष कैसे माने जाते हैं, इसका कुछ हाल इसी भूमिका में आगे मिलेगा।

वली भेजी, जिसमें हमें २०५ नए नाम मिले। मुंशीजी ने हमारे पूछने पर इन २०५ कवियों के विषय में विशेष विवरण लिखने की भी कृपा की। वृंदावन के श्रीहितरूपलाल गोस्वामीजी ने ४०-५० नाम विवेचना-सहित दिए। श्रीभवानी-शंकर याज्ञिक से कई कवियों के समय-निरूपण में योग मिला। लाला भगवान-दीनजी ने भी हमें १८५ कायस्थ कवियों की नामावली भेजी, और पंडित मन्नन द्विवेदी गजपुरी तहसीलदार संयुक्तप्रांत ने भी प्राय ४० कवियों की नामावली भेंट की। इन दोनों नामावलियों में प्राय ६० नए नाम मिले। सवना-निवासी गोस्वामी भोलानाथ ने ९३ कवियों की नामावली भेजने की कृपा की। पंडित व्रजरत्न भट्टाचार्य ने वर्तमान समय के २७ लेखकों के नाम हमें लिख भेजे। इन दोनों महाशयों के नामों में भी कुछ नए नाम मिले। गँधौली-निवासी स्वर्गवासी पंडित युगलकिशोर ने प्राचीन एवं प्रसिद्ध कवियों तथा ग्रंथों के विषय में हमें बहुत-सी बातें बताईं, जिनके कथन इस ग्रंथ में एवं नवरत्न में जहाँ-तहाँ मिलेंगे। कोरौना-निवासी पंडित विश्वनाथ त्रिवेदी ने हमारे लिये वर्तमान कवियों के पास प्राय. ३०० कार्ड भेजने की कृपा की। उपर्युक्त महानुभावों को हम उनकी कृपा के लिये अनेकानेक धन्यवाद देते हैं। श्रीमान् महाराजा सर विश्वनाथसिंहजू देव बहादुर, छतरपुर ने वैष्णव-संप्रदाय के तथा अन्य कवियों के विषय में बहुत-सी उपयोगी बातें हमें बताने की दया की, और अपना बृहत् पुस्तकालय भी दिख-लाकर बड़ा अनुग्रह किया। श्रीमान् की दया विना वैष्णव कवियों एवं संप्रदायों का पूरा हाल हमें न ज्ञात होता। चिरंजीव कृष्णविहारी मिश्र और प्रियवर दुलारेलाल भार्गव ने द्वितीय संस्करण के संपादन में अच्छी सहायता दी। ठाकुर मंगलप्रसादसिंह, पोखरपुर-परसा (सारन) ने बिहार-प्रांत के बहुत-से कवियों तथा लेखकों के चरित्र भेजे।

श्रेणी-विभाग के कारण

हमारी सम्मति से विनोद में कथित बहुतेरे कवि कुछ-कुछ उत्कृष्ट हैं, फिर भी अपेक्षित दृष्टि से उनमें ज़मीन-आसमान का अंतर पाया जाता है। इस कारण प्रत्येक कवि की विस्तृत आलोचना करने में, कवि-संख्या-बाहुल्य से, ग्रंथ बहुत बढ़ जाता, और कुछ भी स्पष्ट अनुमति न देने से कविता से कम परिचित

पाठकों को प्रत्येक कवि की बड़ाई-छोटाई का बहुत कम ज्ञान हो सकता। कई पदार्थों के प्रशंसनीय-मात्र कहने से उनमें अपेक्षाकृत प्रशंसा की मात्रा का भेद वर्णन को बहुत बढ़ाए बिना समझ में नहीं आ सकता। उधर श्रेणी-विभाग स्थिर करने से यह भेद बहुत शीघ्र, दो ही शब्दों द्वारा, प्रकट हो जाता है, और बिना श्रेणी-विभाग के वर्णन बढ़ाने से हर बार पूर्ण अंतर समझ में आ जाना कठिन है। सरोजकार एवं भाषाओं के अन्य इतिहासकारों ने श्रेणी-विभाग स्थिर किए बिना ही कवियों की प्रशंसा की है। इन प्रशंसाओं से अधिकांश दशाओं में कवियों की अपेक्षाकृत गरिमा का भेद ज्ञात नहीं होता। इन्हीं कारणों से हमने किसी-प्राचीन प्रमाण के अभाव में भी श्रेणी-विभाग चलाने का साहस किया है। अनेक सज्जन हमसे इस कारण बहुत कुछ रुष्ट भी हो गए हैं, पर इसके ठौर कोई दूसरा ढंग उन्होंने नहीं स्थिर किया कि कवियों की आपेक्षिक छोटाई-बड़ाई कैसे व्यक्त की जाय? अतः श्रेणी-प्रथा को हम नहीं हटा सकते। श्रेणियों में रखने के विचार में हमने केवल काव्य-प्रौढ़ता पर ध्यान दिया है, एवं कवियों के महात्मा या महाराज आदि होने की कुछ भी परवा नहीं की, केवल थोड़े-से ऐसे महाशयों को इस कारण हमने किसी भी श्रेणी में नहीं रक्खा। श्रेणी नियत करने में मतभेद होना स्वाभाविक है, और इसमें झगड़े की कोई आवश्यकता नहीं। सभी स्थानों पर हमारे लेखों से कवि की किसी श्रेणी-विशेष में स्थिति के कारण नहीं मिलेंगे। ऐसे स्थानों पर ये स्थितियाँ हमारी सम्मति-मात्र प्रकट करती है, जो उक्त कवियों की कविता देखने से स्थिर हुई हैं। यदि कोई महाशय किन्हीं कवियों के ग्रंथ पढ़कर हमारे मत को अग्राह्य मानें, तो हमें उनसे कुछ नहीं कहना है। श्रेणी-विभाग उन्हीं लोगों को लाभदायक हो सकता है, जिन्होंने इन कवियों के ग्रंथ न देखे हों, अथवा जो हमारी कारण-कथन-हीन सम्मति-मात्र को ग्राह्य मानें। विद्वज्जनों को ग्रंथावलोकन से इन सम्मतियों के कारण स्वयं ज्ञात हो जायँगे, क्योंकि यथासाध्य पूर्ण विचार के बाद ही सम्मति दी गई है। प्रत्येक स्थान पर कारण लिखने से ग्रंथ का विस्तार बहुत अधिक बढ़ जाता। काव्योत्कर्ष कैसे आता है, और दोष कैसे माने जाते हैं, इसका कुछ वर्णन इसी भूमिका में आगे मिलेगा।

इन्हीं विचारों के सहारे हम कवियों को श्रेणी-बद्ध करते हैं, न कि प्रेम अथवा द्वेष-भाव से। किसी ग्रंथ में ऐसे दुर्भावों से काम लेना हम अति गर्हित समझते हैं। 'विनोद' में बहुत-से कवियों पर समालोचनाएँ लिखी गई हैं, और बहुतेरों को चक्र में स्थान मिला है। इससे यह प्रयोजन नहीं कि चक्रवाले कविगण समालोच्य लेखकों से अवश्य ही न्यून हैं। उनके चक्र में स्थान पाने का कभी-कभी यही कारण है कि हम उनके ग्रंथ भली भाँति या कुछ भी देख या प्राप्त न कर सके।

काव्योत्कर्ष

काव्योत्कर्ष क्या है? इस ग्रंथ में स्थानाभाव एवं अन्य कारणों से कवियों के वर्णन पूरे नहीं हो सके हैं। हमने स्थान-स्थान पर काव्योत्कर्ष एवं साहित्य-गरिमा आदि के कथन किए हैं। यदि कोई पूछे कि किन गुणों के होने से हम काव्य को गौरवान्वित मानते हैं, तो हमें विवशतः कहना पड़ेगा कि इन गुणों एवं कारणों का कथन हर एक छंद के लिये पृथक् है। इसका कोई छोटा सा नियम नहीं बताया जा सकता। आचार्यों ने दशांग-कविता पर अनेकानेक ग्रंथ रचे हैं। उनमें गुण-दोषों के सांगोपांग वर्णन हैं। ऐसे ग्रंथ हिंदी-साहित्य में भरे पड़े हैं, जैसा अन्यत्र कहा गया है। इन गुणों के अतिरिक्त स्वभाव-कथन एवं भारी वर्णनों के सम्मिलित प्रभावों पर भी ध्यान देना पड़ता है। शब्द-प्रयोग का भी सम्मिलित प्रभाव छंद-लालित्य-प्रवर्द्धक होता है। इन सब बातों पर समालोचक की रुचि प्रधान है। कोई किसी गुण को श्रेष्ठ मानता है, और कोई किसी को। इस स्फुट छंदों के गुण-दोष परखनेवाली अपनी प्रणाली के कुछ उदाहरण यहाँ देते हैं—

देव-कृत छंद

सखी के सकोच गुरु सोच मृगलोचनि रि-
सानी पिय सों जु उन नेकु हँसि छुयो गात,
देव वै सुभाय मुसुकाय उठि गए यहि
सिसिकि-सिसिकि निसि खोई रोय पायो प्रात।
को जानै री बीर बिनु बिरही बिरह-बिथा

हाय-हाय करि पछिताय न कछू सोहात ;
बड़े-बड़े नैनन सों आँसू भरि-भरि ढरि
गोरो-गोरो मुख आजु ओरो-सो बिलानो जात ।

यह रूपघनाक्षरी छंद है, जिसमें ३२ वर्ण होते हैं, और प्रथम यति सोलहवें वर्ण पर रहती है। "एक चरन को वरन जहँ दुतिय चरन।में लीन, सो जतिभंग कवित्त है, करैं न सुकवि प्रवीन।" यहाँ रिसानी शब्द का 'रि' अक्षर प्रथम चरण में है, और 'सानी' दूसरे में। इस हेतु छंद में यतिभंग-दूषण है।

चतुर्थ पद में आँसू भर-भरकर तथा ढरकर के पीछे वाक्य कर्ता द्वारा कोई अन्य कर्म माँगता है, परंतु कवि ने कर्ता-संबंधी कोई क्रिया न लिखकर "गोरो-गोरो मुख आजु ओरो-सो बिलानो जात" मात्र लिखा है, जिससे छंद में दुष्प्रबंध-दूषण लगता है। 'को जानै री बीर' में कई गुरु-वर्ण साथ-साथ एक स्थान पर आ गए हैं, जिनसे जिह्वा को क्लेश होने से प्रबंध-योजना अच्छी नहीं है। यहाँ अंतरंगा सखी का वचन बहिरंगा सखी से है। जिस बहिरंगा सखी के सम्मुख गात छुआ गया था, वह चली गई थी। वचन दूसरी बहिरंगा से कहा गया है, जो वह हाल नहीं जानती। केवल अंतरंगा सखी के सम्मुख यदि गात छुआ गया होता, तो नायिका को संकोच न लगता, क्योंकि अंतरंगा सखी को आचार्यों ने सभी भेदों की जाननेवाली माना है, जिसमें पूरा विश्वास रक्खा जाता है।

यहाँ गुरु सोच से गुरुजनों से संबंध रखनेवाला शोक नहीं माना जा सकता, क्योंकि एक तो शब्द गुरुजनों को प्रकट नहीं करते, और दूसरे उनके सम्मुख गात्र-स्पर्श आदि बाह्य रति-संबंधिनी कोई क्रियाएँ भी नहीं हो सकतीं। एतावता संकोच-भव भारी शोक का प्रयोजन लेना चाहिए। मृगलोचनि में वाचक धर्मोपमान लुप्ता उपमा है। यहाँ उपमेय-मात्र कहा गया है। पूर्ण उपमा है मृग के लोचन-समान चंचल लोचनवाली स्त्री, परंतु यहाँ धर्म चंचलता, वाचक एवं उपमान का प्रकट कथन नहीं है। थोड़ा ही-सा गात छूने से क्रोध करने का भाव नायिका का मुग्धात्व प्रकट करता है। नायक अच्छे भाव से मुस्कराकर उठ गया। यहाँ सुभाय एवं मुसुकाय शब्द जुगुप्सा को बचाते हैं, क्योंकि यदि नायक

अप्रसन्न होकर उठता, तो बीभत्स-रस का संचार हो जाता, जो शृङ्गार का विरोधी है। नायक के उठ जाने के पीछे नायिका ने जितने कर्म किए हैं, उन सबसे मुग्धात्व प्रकट होता है। निशि खोने एवं प्रात पाने में रूढ़ि लक्षणा है। न निशि अपने पास का कोई पदार्थ है, जो खोया जा सके, और न प्रात कोई पदार्थ है, जो मिल सके। इस प्रकार के कथन संसार में प्रचलित हैं, जिससे रूढ़ि लक्षणा हो जाती है। 'गोरो-गोरो मुख आजु ओरो-सो बिलानो जात' में गौणी सारोपा प्रयोजनवती लक्षणा एवं पूर्णोपमालंकार है। मुख में गुण देखकर ओलापन स्थापित किया गया है। उपमा में यहाँ गोराई और बिलाने के दो धर्म हैं। बिलानेवाले गुण में दुष्प्रबंधदूषण लगने का भय था, क्योंकि ओला बिलकुल लुप्त हो जाता है, किंतु मुख नहीं। कवि ने इसी कारण बिलकुल बिला जाना न कहकर केवल बिलानो जात कहा है। बीर, बिरही, बिथा, संकोच, गुरु सोच, मृगलोचनी, गोरो-गोरो, ओरो, भाय, मुसुकाय, भरि-भरि, ढरि आदि शब्दों से वृत्त्यानुप्रास का चमत्कार प्रकट होता है। भरि-भरि, गोरो-गोरो, सिसिकि-सिसिकि, बड़े-बड़े और हाय-हाय वीप्सित पद हैं। वीप्सा का यहाँ अच्छा चमत्कार है।

इस छंद में पूर्ण शृङ्गार-रस है। 'नेकु हँसि छुयो गात' में रति स्थायी होता है। "नेकु जु प्रिय जन देखि-सुनि आन भाव चित होय, अति कोबिद पति कबिन के सुमति कहत रति सोय।" प्रिया को देखकर नायक के चित्त में दर्शन-भव आनंद से बढ़कर क्रीड़ा-संबंधी भाव उत्पन्न हुआ। इस भाव ने इतनी वृद्धि पाई कि उसने हँसकर पत्नी का गात छुआ, सो यह भाव केवल आकर चला नहीं गया, वरन् ठहरा। यह था रति का भाव, सो हमें स्थायी रति का भाव प्राप्त हुआ। यही शृंगार-रस का मूल है। रस के लिये आलंबन की आवश्यकता है। यहाँ पति और पत्नी रस के आलंबन हैं। रस जगाने के लिये उद्दीपन का कथन हो सकता है, परन्तु वह अनिवार्य नहीं है। इस छंद में कवि ने उद्दीपन नहीं कहा है। नायक का हँसकर गात छूना और मुस्कराना संयोग-शृंगार के अनुभाव हैं, तथा नायिका का रिसाना मानचेष्टा होने से वियोग-शृंगार का अनुभाव है। सिसिकि-सिसिकि निशि खोना तथा रोकर प्रात पाना संचारी नहीं

हैं, क्योंकि ये समुद्र-तरंगों की भाँति नहीं उठे हैं, वरन् बहुत देर स्थिर रहे हैं। हाय-हाय करके पछताना और कुछ भी अच्छा न लगना भी ऐसे ही भाव हैं। इन्हें एक प्रकार से अनुभाव मान सकते हैं। आँसुओं का ढलना तनसंचारी है। अत. यहाँ शृंगार-रस के चारो अंग पूर्ण हुए, सो प्रकाश शृंगार-रस-पूर्ण है। पहले संयोग था, परन्तु पीछे से वियोग हो गया, जिसकी प्रबलता रहने से छंद में संयोगांतर्गत वियोग-शृंगार है। बहिरंगा सखी के सम्मुख नायक ने कुछ हसकर गात छुआ, जिसमे हास्य रस का प्रादुर्भाव छंद में होता है। परन्तु दृढ़ता-पूर्वक नहीं। शृंगार का हास्य मित्र है, सो उसका कुछ आना अच्छा है। थोडा हँसकर गात छूने और मुस्कराकर उठ जाने मे मृदु हास्य आया है, जिसका स्वरूप उत्तम है, मध्यम अथवा अधम नहीं। शृंगार में क्रोध का वर्णन अप्रयुक्त नहीं है। यहाँ मुग्धा कलहांतरिता नायिका है। पात्र-भेद मे यह वाचक पात्र है, जिसकी शुद्ध-स्वभावा स्वकीया आधार है। सखी का वर्णन स्वकीया के साथ होता है, और दूती का परकीया के साथ। कुछ ही गात छूने मे क्रोध करना भी स्वकीयात्व प्रकट करता है, और रात-भर रोना-धोना स्थिर रहने से उसी की अंग-पुष्टि होती है। वाचक पात्र होने से छंद में अभिधा का प्राधान्य है, जिसका भाव लक्षणा के रहते हुए भी सबल है। यहाँ अर्थांतरसंक्रमित वाच्यध्वनि निकलती है, क्योंकि कलहांतर्गत पश्चात्ताप की विशेषता है, जिससे चित्त का यह भाव प्रकट होता है कि क्रोध का न होना ही रुचिकर था। नायिका मुग्धात्व-पूर्ण स्वाभाव से क्रोध करने पर विवश हुई। उसकी इच्छा नायक के मनाने की है, परन्तु लज्जा के कारण वह ऐसा कर नहीं सकती। वाचक के जाति, यदृच्छा, गुण तथा क्रिया-नामक चार मूल होते हैं। यहाँ उसका जाति मूल है। नायिका स्वभाव से ही गात छुए जाने से क्रुद्ध हो गई। इस छंद में गौण रूप से समता, प्रसाद एवं सुकुमारता गुण आए हैं, परन्तु उनमें अर्थ-व्यक्त का प्राधान्य है। छंद में कैशिकी वृत्ति और नागर नायिका है, क्योंकि उसने ज़रा-सा गात छुए जाने से सखी के संकोच-वश लज्जा-जनित क्रोध किया, और नायक के उठ जाने से थोड़े-से अनरस पर ऐसा शोक किया कि रात-भर रोदन, हाय-हाय, पछताना, आँसुओं का बाहुल्य आदि जारी रक्खा। एता-

वता छंद-भर में नागरत्व का प्राधान्य है, सो ग्रामीणता-सूचक रस में अन्‍रस होते हुए भी नायिका नागरी है।

छंद में दो स्थानों पर उपमालंकार आया है, जिसका चमत्कार अन्यत्र नहीं देख पड़ता*। इससे यहाँ एकदेशोपमा समझनी चाहिए। यहाँ विपादन और उल्लास का आभास है, परन्तु वे दृढ़ नहीं होते। 'को जानै री बीर बिन बिरही बिरह-बिथा' में लोकोक्ति- अलंकार है, और कुछ गात छुए जाने से रिसाने के कारण स्वभावोक्ति आती है। यह नहीं प्रकट होता कि नायक ने कोई लज्जा का अंग छुआ, परन्तु फिर भी नायिका क्रुद्ध हुई। सुतरां अपूर्ण कारण से पूर्ण कार्य हो गया, जिससे दूसरा विभावना-अलकार हुआ। नायक उत्तम है, क्योंकि वह नायिका के क्रोध से मुस्कराता ही रहा। नायिका मध्यमा है। नायिका पहले सिसकी, फिर रोई, फिर उसने हाय-हाय किया, और अंत में उसके आँसू बहने लगे। इसमें उत्त-रोत्तर शोकावृद्धि से सारालकार आया। नायिका के क्रोध से नायक में सुन्दर भाव हुआ, सो अकारण से कारज की उत्पत्ति होने के कारण चतुर्थ विभावना-अलंकार निकला। नायक के हँसकर गात छूने से नायिका हँसने के स्थान पर क्रुद्ध हुई, अर्थात् कारण से विरुद्ध कार्य उत्पन्न हुआ, सो पंचम विभावना-अलंकार आया। "अलकार यक ठौर में जहँ अनेक दरसाहि, अभिप्राय कवि को जहाँ सो प्रधान तिन माहिं।" इस विचार से छद में उपमा का प्राधान्य है।

सखी के मुख से मृगलोचनि एवं बड़े-बड़े नैन कहे गए, जिससे सखी मुख-गर्व प्रकट है। वाचक प्राधान्य से यहाँ प्राचीन मत से उत्तम काव्य है। कुल मिलाकर छद बहुत अच्छा है। इसमें दोष बहुत कम और सद्गुण अनेक हैं।

तुलसीदास-कृत छंद

जे पुर-ग्राम बसहिं मग माहीं, तिनहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं। केहि सुकृती केहिवरी बसाए? धन्य पुन्यमय परम सोहाए। जहँ-जहँ राम-चरन चलि जाहीं; तहँ-समान अमरावति नाहीं। परसि राम-पद पदुम-परागा, मानति भूरि भूमि निज भागा।

---

*शब्द-रसायन में देवजी ने इसे एक देशोपमा के उदाहरण से रक्खा भी है।

ये दो चौपाई-छंद हैं। तुलसीदास की चौपाइयों में दस-पंद्रह छंद निकलते हैं, परंतु उन्होंने इन सबको चौपाई कहा है। ऊपर लिखे छंद पादाकुलक हैं।

पुर कहिए छोटो नगर राजनगर के तीर।
वन में जे लघु पुर बसैं तिनसों कहियत ग्राम।

नगर पुर से भी बहुत बड़ा होता है। कवि ने यहाँ लिखा है कि इन ग्रामों और पुरों को न केवल साधारण नगर, वरन् नाग एवं सुर-नगर सिहाते हैं, सो यहाँ अयोग्य के योग्य वर्णन से संबधातिशयोक्ति अलकार पूरा हुआ। पुर-ग्रामों में स्वय बड़ाई नहीं है, परंतु राम के रास्ते में पड़ने से उनमें गौरव आया है, जिससे द्वितीय अर्थांतर-न्यासालकार होता है। पहले नाग-नगर सिहाए और फिर उनसे भी श्रेष्ठतर सुर-नगर सिहा गए, सो उत्तरोत्तर महत्व वृद्धि से वर्णन में सारालकार आया। 'केहि सुकृती केहि घरी बसाए' में केहि के उत्तमता- पूर्वक दो बार आने से पदार्थावृत्त दीपक-अलकार है। ऐसे स्थानों पर वर्ण्य एव अवर्ण्य का धर्म प्राय· एक नहीं होता, परतु आचार्यों ने फिर भी यह अलकार माना है। इन दोनों प्रश्नों से कवि का कुछ पूछने का प्रयोजन नहीं है, वरन् इनसे वह प्रकट करता है कि किसी बड़े सुकृती ने उन्हें किसी अच्छी घडी में बसाया। इस प्रकार काकु-अलकार हुआ। इन दोनो प्रश्नों एव 'धन्य पुन्यमय परम सोहाए' से उनके माहात्म्य का बड़ा भारी गौरव दिखलाया गया है, जिनसे उदात्त-अलंकार होता है। 'धन्य-पुन्य' में छेकानुप्रास है। किसी सुकृति ने अच्छे समय पर ग्राम बसाया, जिसके योग से अल्प ग्राम ने भी इतनी बड़ाई पाई कि उसमें राम-चरण गए। यहाँ द्वितीय अर्थांतर-न्यासालंकार है। "जहँ-जहँ" में वीप्सालकार है, और "राम-चरन चलि जाहीं" में उपादान लक्षणा है, क्योंकि चरण राम के चलाने से चलते हैं। "तेहि समान अमरावति नाहीं" में चतुर्थ प्रतीपालकार है, क्योंकि यहाँ उपमेय से उपमान का निरादर हुआ है। द्वितीय अर्थांतर-न्यासालंकार एव सबंधातिशयोक्ति भी है। "परसि पद-जलज-परागा" में आदि वर्ण वृत्यानुप्रास आया है। इन दोनो पदों में अधिक अभेद रूपक है। पराग के कारण परिणाल नहीं होने पाया। भूरि, भूमि, भागा में भी वृत्यानुप्रास है। राम-पद-

रज के स्पर्श से भूमि के भूरि भाग्य-वर्द्धन से उसमें श्लाघ्य चरित्र का महत्त्व प्रकट हुआ, जिससे उदात्तालंकार आया। यहाँ ऋद्धि से भी उदात्त हो सकता है, परंतु आचार्यों ने ऋद्धिवाले उदात्त का धन से ही रूढ़ि कर लिया है। पुर-ग्राम धन्य, पुन्यमय तथा शोभायमान है। यहाँ समुच्चय-अलंकार हुआ। प्रथम दो पदों में विशेष वर्णन, द्वितीय दो में सामान्य और तृतीय दो में फिर विशेष है, सो यहाँ विकस्वर-अलंकार हुआ। कुल अलंकारों में अप्रस्तुत प्रशंसा मुख्य है, क्योंकि प्रस्तुत राम की सीधी बड़ाई न करके कवि ने मार्गस्थ ग्रामों आदि का यश गाया है, जिससे राम-यश निकलता है।

इन छंदों में यद्यपि लाक्षणिक पद आए हैं, तथापि वाचक पात्र है, और उसी का सर्वत्र प्राधान्य है। यहाँ अर्थव्यक्त प्रधान गुण है, परंतु समता, समाधि, सुकुमारता, उदारता, प्रसाद और कांति भी हैं। सो इन दो छंदों में साहित्य के १० गुणों में से श्लेष, माधुर्य और ओज छोड़कर सभी वर्तमान हैं। इतने गुणों का एक इतने छोटे स्थान पर मिलना प्रायः असंभव है। इनमें भारती और सात्वती वृत्तियाँ हैं। दोषों में यहाँ भूरि-शब्द पर ध्यान जाता है, जो भाग और भूमि दोनों की ओर जा सकने से संदिग्ध हुआ जाता है, परंतु वह भी भाग का प्राबल्य से विशेषण होता है, सो दोषोद्धार हो जाता है। वर्णन नागर है, क्योंकि पद-रज पड़ने से प्रतिस्थान ऐसा हो जाता है कि उससे अम-रावती भी शरमाती है। यहाँ अद्भुत रस का समावेश है। इसके आलंबन राम-चरण एवं मार्गस्थ पुर-ग्राम हैं, और स्थायी यह आश्चर्य है कि मार्गस्थ पुर-ग्रामों के महत्त्व को नाग तथा सुर-नगर सिहाते हैं, एवं अमरावती उनकी समता नहीं कर पाती। उद्दीपन यहाँ राम-गमन का समय है। राम-चरण का चलना, भूमि द्वारा राम-पद का स्पर्श होना, तथा अपना भूरि भाग माना जाना संचारी है। 'केहि सुकृती केहि घरी बसाए?' 'धन्य पुन्यमय परम सुहाए' और 'तहँ-समान अमरावति नाहीं' अनुभाव हैं। चलने में उग्रता संचारी है, जो शृंगार-रस में वर्जित है, किंतु इतर रसों में नहीं। अतः अद्भुत-रसपूर्ण है। यह रस प्रच्छन्न है।

सब बातों के ऊपर यहाँ रामचंद्र का महत्त्व और कवि की उनमें प्रगाढ़

भक्ति मुख्य है, सो तात्पर्याख्यावृत्ति सर्वप्रधान है। कुल बातों पर ध्यान देने से प्रकट है कि यह उत्तम काव्य है।

बिहारी-कृत छंद

अरी खरी सटपट परी बिधु आधे मग हेरि,
संग लगे मधुपन लई भागन गली अँधेरि।

यह दोहा छंद है, जिसमें २४ मात्राएँ होती हैं, और प्रथम यति तेरहवीं मात्रा पर रहती है। यहाँ परकीया कृष्णाभिसारिका नायिका है। वह काले वस्त्रालंकारों से विभूषित निश्चित स्थान को पर-पति से मिलने जाती थी कि अर्द्धमग में चंद्रोदय हो गया, जिससे वह घबड़ाई। अरी खरी सटपट परी एवं सटपट में वृत्यानुप्रास है। ये ही दो अंतिम पद परकीयात्व-प्रदर्शक हैं। भौंरों के छाए हुए होने से भाग्य-वश गली अँधियारी हो गई, जिससे आन हेतु मिलकर कार्य सुगम हुआ, सो समाधि-अलंकार आया। भौंरों के साथ होने से प्रकट हुआ कि नायिका पद्मिनी है, उसके तन से कमल की सुगंध आती है। छंद में प्रथम प्रहर्षण भी है। पहले नायिका अँधियारे में चली थी, पर बीच में उजियाला हुआ, किंतु भ्रमरों से अंधकार फिर हो गया, सो पूर्वरूप-अलंकार निकला। चंद्रोदय के प्रतिबंधक होने पर भी कार्य सिद्ध हुआ, सो तृतीय विभावना है, और चांद्र दोष द्वारा दोष न लगने से अवज्ञालंकार आया। चंद्र-ज्योति का गुण परकीयावाले अभिसार के कारण दोष हुआ, सो प्रथम व्याघात हुआ। इन सब अलंकारों में समाधि मुख्य है। भौंरे प्रथमतः पीछे आ रहे थे कि इतने में उजियाले से नायिका सटपटाकर ठहरी। इस विलंब से भौंरे आगे बढ़ आए, और अंधकार फिर हो गया। रात में भौंरों का उड़ना काल-विरुद्ध दूषण है, किंतु कविजन इसका वर्णन करते हैं, सो यह दोष नहीं है। माघ, कादंबरी एवं मतिराम में ऐसे ही वर्णन हैं। चंद्रोदय होने पर भी इच्छा-सिद्धि से नायिका मुदिता भी हुई।

इस दोहे में वाचक चमत्कार होते हुये भी व्यंग्य प्रधान है, क्योंकि इसके प्रायः सभी भाव व्यंग्य से निकलते हैं। छंद में समाधि अलंकार में पूर्वरूप का व्यंग्य हुआ है। यहाँ ओज-गुण प्रधान है, किंतु गौण रूप से अर्थव्यक्ति और

कांति भी हैं। इसमें आरभटी वृत्ति है। नायिका नागरी है। रात्रि को कुंजादिक का गमन ग्रामीणता-प्रदर्शक है, परंतु काम-प्राबल्य नहीं है, और नायिका पद्मिनी है, सो नागरत्व प्रधान रहा। परकीया नायिका होने से पात्र व्यंजक है। शृंगार-रस में यहाँ नायिका और नायक आलंबन हैं। यद्यपि नायक का प्रकट कथन नहीं है, तथापि वह माना जायगा, क्योंकि बिना उसकी इच्छा के अभिसारिकात्व प्राय: नहीं होता। भ्रमर और अंधकार उद्दीपन हैं। सटपटाना संचारी तथा मधुपों का गली अँधेरी कर लेना अनुभाव है। एतावता यहाँ पूर्ण प्रकाश शृंगार-रस है।

व्यंग्य कविता का जीव कहलाता है, सो यह रचना उत्कृष्ट है।

लेखराज-कृत छंद

करि अंजन मंजन गंजन को मृग कंजन खंजन औ झखियाँ,
पलकोट की ओट बचायकै चोट अगोट सबै सुख में रखियाँ।
लेखराज कहै अभिलाख लखाय कै लाखन पूरे किए सखियाँ,
तेई हाय बिहाय हमैं जरि जाय ऐ जी को जवाल भई अँखियाँ।

यह दुर्मिला सवैया है, जिसमें आठ सगण होते हैं। इसमें वृत्यानुप्रास का विशेष ब्रज है। प्रथम पद में चार उपमानों की निंदा से चतुर्थ प्रतीप हुआ है। 'पलकोट की ओट बचाय कै चोट' में समाभेद रूपक है। अभिलाख चित्त करता है न कि आँखें, सो यहाँ रूढ़ि-लक्षणा आती है। आँखों के लिये सब कुछ किया, पर उन्होंने छोड़ दिया, सो प्रथम लेशालंकार हुआ। गुण से गुण नहीं हुआ, सो प्रथम अवज्ञा भी हुई। नेत्र हितकारी हैं, उनके अहितकर वर्णन से प्रथम व्याघात-अलंकार है। यहाँ शुद्ध परकीया नायिका का पूर्वानुराग सबल रूप से है, जिससे व्यंजक पात्र एवं अर्थांतरसंक्रमित वाच्य ध्वनि है। प्रथम पद में मुग्धा ज्ञातयौवना एवं रूपगर्विता का प्राधान्य है, द्वितीय में मध्या और तृतीय में प्रौढ़ा का। कुल छंद में प्रौढ़ा की सबलता है। प्रथम तीन पदों में से इसी प्रकार एक-एक में स्वकीया, परकीया तथा गणिका नायिकाएँ हैं, परंतु छंद-भर में नागर परकीया का प्राधान्य है। गुणों में यहाँ माधुर्य की मुख्यता है,

परंतु समता और अर्थव्यक्त भी है। छंद में-कैशिकी वृत्ति है। रसों की यहाँ अच्छी बहार है। देवजी कहते हैं—

"बाहर भीतर भाव ज्यों रसनि करत सचार,
त्यों ही रस भावन सहित संचारी सिंगार।
यह सूक्ष्म रीति जानत रसिक, जिनके अनुभव सब रसन।"

यहाँ प्रथम पद में वीर-रस का संचार है, एव द्वितीय में भ्यानक तथा तृतीय में अद्भुत का। ये दोनो शृंगार के पोषक हैं। गौण रूप में नायक के दर्शन को यहाँ स्थायी भाव मानना होगा। पूर्वानुराग उसी दर्शन का फल है। आलंबन नायिका है, और प्रच्छन्न रूप से नायक भी। उद्दीपन का कथन यहाँ अंजन, मंजन द्वारा हुआ है। अभिलाषों का लखाना तथा पूरा करना अनुभाव है, और पलकोट की ओट चोट बचाना व्रीड़ासंचारी दिखाता है। चतुर्थ पद से उद्वेग निकलता है, जो वियोग शृंगार की एक दशा है। दोषों में यहाँ एक-दो स्थानों में लघु की जगह गुरु अक्षर आये हैं, परतु पिंगलाचार्यों ने इसे दोष नहीं माना है, और ऐसे अवसरों पर मृदु उच्चारण करके गुरु से लघु का प्रयोजन ले लिया है। कुछ मिलाकर यहाँ उत्तम काव्य है। यह प्रकाश शृंगार-रस का उदाहरण है।

सम्मिलित प्रभावादि

किसी पूरे वर्णन में सम्मिलित प्रभाव, शील-गुण आदि का विवरण यहाँ गोस्वामी तुलसीदास-कृत राजा भानुप्रताप की कथा के सहारे किया जाता है। पाठक महाशय उस वर्णन को पढ़कर इस कथन के देखने से विशेष आनंद पा सकते हैं। इसमें उपर्युक्त गुण-दोष न दिखलाकर हम वर्णन एव सम्मिलित प्रभाव-सबंधी कथन करेंगे।

प्रतापभानु तथा अरिमर्दन ऐसे नाम हैं, जैसे क्षत्रियों के होने चाहिए। सचिव का नाम धर्मरुचि भी अच्छा कहा गया है। वर्णन बहुत छोटा है, इससे कवि ने उपांगों को छोड़कर कथा के मुख्यांगों ही पर ध्यान रक्खा है। इसी से राजा सत्यकेतु का ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर हरि-सेवा-हित वन जाना तो कहा गया है, परंतु यह नहीं कि पूर्व-प्रथानुसार ऐसा हुआ, अथवा राजा

ने अवस्था के उतरने, भक्ति-प्रचुरता, सांसारिक अनित्यता आदि के भावों को पुष्ट मानकर ऐसा किया। इसी प्रकार सेना, युद्धों आदि का विशेष वर्णन न करके कवि ने राजा द्वारा विश्वविजय-मात्र कह दिया।

राजा के सुराज्य का कवि ने कुछ विशेष कथन किया। कवि को राजा के साथ सहृदयता का रखना कई उचित कारणों से अभीष्ट था, सो ब्राह्मणों के साथ गुप्त परामर्श द्वारा उनके वश करने के लिये जो आगे थोड़ा-सा अपराध किया जायगा, उसे राजा के अन्य गुणों के आगे तुच्छ दिखाने के विचार से उसके गुणों का कुछ सविस्तार कथन प्रथम से कर दिया।

वर्णन-वृद्धि रोकने को ही कवि ने विंध्याचल या उसके जगल का वर्णन नहीं बढ़ाया, परतु वराह का वर्णन कथा के मुख्यांशों में है, सो उसका कथन कुछ बढ़ाकर किया गया। फिर भी कवि ने उसके दाँतों, रंग एवं गुरुता को छोड़ अन्य बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया, और इतने छोटे-से वर्णन में वराहों के कई स्वाभाविक गुण थोड़े-से शब्दों में बड़ी सुंदरता-पूर्वक कह दिए। बनैले का घुरघुराना, कान उठाए घोड़े को देखना, एव उससे बचने को ज़ोर से भागना खूब दिखाया गया है। जिस घने वन में हाथी-घोड़े का निर्वाह कठिनता से हो सकता है, उसमें विपुल क्लेश सहन करते हुए भी राजा का बनैले का पीछा न छोड़ना उसके धैर्य को दिखलाता है आगे प्रकट रूप से भी कवि ने उसका कथन किया है। इसी धैर्य के कारण कपटी मुनि और कालकेतु वराह ने राजा को भूख, प्यास, श्रम आदि द्वारा खूब थका लिया, जिससे वह मुनि को जान न सकें। उसने देखते-ही-देखते बिना कुछ कहे राजा को तालाब दिखाकर बाधित किया, जिससे आगे की कार्यवाही बढ़े, और कृतज्ञता-वश राजा को उस पर संदेह का विचार भी न हो। कपटी को किसी प्रकार राजा से बातचीत करनी थी, सो उसके नगर की दूरी बहुत बढ़ाकर उसने बताई, तथा रात के घोर भाव एवं वन की गंभीरता का कथन किया, जिससे राजा रात को वहीं रहने का संकल्प करे।

बड़े कविगण जगन्मान्य सत्य सिद्धांतों का कथन करके कथा में उनके उदाहरण प्राय दिखला देते हैं। इसीलिये कवि ने कहा है—

"तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाइ,
आपु न आवइ ताहि पहँ, ताहि तहाँ लेइ जाइ॥"

, इस कथा का सारांश यही दोहा है। इससे राजा पर आनेवाली आपदा का भी दिग्दर्शन करा दिया गया। "बैरी पुनि छत्री पुनि राजा, छल-बल कीन्ह चहइ निज काजा।" में भी यही उपर्युक्त भाव है।

कपटी का कहना कि अब मेरा नाम भिखारी है, प्रकट करता है कि वह अपना पूर्वकालिक गौरव व्यंजित करता था, परन्तु राजा ने स्वभावतः उस गौरव पर विचार न करके उसके वर्तमान ऋषि-पन पर विशेष ध्यान दिया, जिससे उसने भी यह जानकर कि राजा आर्ष भाव से ही सहज में ठगा जा सकता है, अपने आदिम महत्व की वार्ता को बिलकुल उड़ा दिया, और अपने को एकतनु कहकर अपनी उत्पत्ति आदि सृष्टि के साथ बतलाई, तथा आगे चलकर यहाँ तक कहा कि "आजु लगे अरु जब ते भयऊँ, काहू के गृह-ग्राम न गयऊ।" यदि राजा चतुर होता, तो इन कथनों का अंतर समझकर उसकी धूर्तता को ताड़ जाता, क्योंकि यदि वह कभी किसी के गृह-ग्राम में गया ही नहीं, तो "अब भिखारी, निर्धन, रहित-निकेत" कैसे हो गया ? फिर भिखारी के लिये औरों के यहाँ जाना आवश्यक है। गोस्वामीजी ने जान-बूझकर ये फेर डाल दिए हैं, जिससे राजा की मूर्खता प्रकट हो। उन्होंने कह दिया कि "तुलसी देखि सुबेखु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर"। उन्होंने यह भी व्यंजित किया कि चतुर पुरुष विचार करके धोखेबाज़ों की वार्तों का पूर्वापर-विरोध जान सकता है। एक ओर कपटी मुनि यह भी कहता जाता था कि उसने अब तक अपना हाल किसी को भी नहीं बतलाया, और दूसरी ओर थोड़ी-सी मुलाकात से राजा को सब हाल बतलाता जाता था। इसके उसने दो कारण दिए, एक तो यह कि उसे कभी कोई मनुष्य मिला ही नहीं, और दूसरे राजा शुचि, सुमति और उसका प्रीति-भाजन था, सो वह अपने शुद्ध चरित्र-कथन पर बाधित हुआ। यदि वह किसी को भी नहीं मिला था, तो उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि की कहानी उसने कैसे जानी ? यदि योग-बल से जानी हो, तो भी किसी को कभी किसी मनुष्य का न मिलना बिलकुल अनर्गलवाद है। फिर भी राजा ने मूर्खता-वश इन वार्तों पर विश्वास कर लिया। इसी प्रकार थोड़े ही से कथोपकथन एवं मुनि-वेष से से कपटी पर पहले ही से पूरा अनुराग दिखलाया, जो बिना पूर्ण परिचय के

अप्रयुक्त था। इतनी शीघ्रता से उसे राजा को शुचि, सुमति जानना तथा प्रीति-भाजन मानना भी संदेह से खाली न थे। किसी को एकाएकी आदि सृष्टि के समय उत्पन्न मान लेना मूर्खता की पराकाष्ठा है, परन्तु राजा ने थोड़ी-सी तप-महिमा सुनकर उसे भी मान लिया। उसे समझना चाहिए था कि उसका पहचानना किसी के लिये कठिन न था, क्योंकि उसके राजा होने से लाखों मनुष्य उसे जानते थे। फिर भी उसने कपटी मुनि की परीक्षा लेने में अपना नाम-मात्र पूछना बस समझा। कपटी ने नाम भी एकाएकी न बतलाकर, पूरे निश्चय के साथ भूमिका बाँधकर पिता के नाम-सहित राजा का नाम कहा। फिर भी उसे समझ पड़ा कि राजा शायद कुछ और पूछ बैठे और पोल खुल जाय, अत उसने उसे सोचने और प्रश्न करने का अवसर ही न देकर तुरंत वरदान माँगने का लालच दे दिया, और राजा ने मूर्खता-वश मान भी लिया।

वरदान देने के पीछे से प्रभाव-प्रदर्शन के उपाय छोड़कर कपटी ने कार्य-साधन की ओर ध्यान दिया, और वरदान में एक त्रुटि लगा दी, जिसे दूर करने के लिये भविष्य में प्रयत्न करना पड़े और इस प्रकार प्रयोजन बने। उसे यह भी संदेह था कि यदि यह किसी से ये बातें कह देगा, तो वह इसे इसकी प्रचण्ड मूर्खता पर सचेत कर देगा। इसीलिये मरण का द्वितीय कारण कथा का प्रकट करना इस धूर्तराज ने बता दिया। इसके पीछे ब्राह्मणों के वश करने के विषय में स्वयं कुछ न कह कर इसने राजा को ही वह प्रबंध बाँधने को छोड़ दिया। वह जानता ही था कि राजा उससे उसकी विधि अवश्य पूछेगा। इसीलिये अपनी ओर से एकाएकी बहुत कुछ कहकर उसने संदेह का कारण उपस्थित नहीं किया।

राजा के पूछने पर उसने यह युक्ति भी अपने अधीन बताई, परंतु अपना प्रभाव स्थिर रखने को यह भी कहा कि वह राजा के यहाँ नहीं जा सकता। फिर भी इस भय से कि प्रभाव-महत्व के कारण शायद राजा उसे घर ले जाने का अनुरोध ही न करे, कपटी ने यह भी कह दिया कि "जौ न जाउँ तब होय अकाजू, बना आइ असमंजस आजू।" इस पर राजा ने हठ किया, और वह तुरंत मान गया। किसी नए मनुष्य के एकाएक भोजन बनाने से औरों को संदेह उठ सकता

था, इसी से उसने राजपुरोहित के वेष में ऐसा करना उचित समझा, और तीन दिन में वहाँ का सब हाल जान लेने के विचार से इतना समय अपने हाथ में रक्खा। कपटी को स्वयं आश्रम ही में रहना था, अत. उसने कह दिया कि मैं पुरोहित को अपने रूप में यहीं रक्खूँगा।

अब कपटी का पूरा प्रबध ठीक हो गया, सो अधिक वार्तालाप में किसी प्रश्नोत्तर द्वारा संभवत· संदेह उठ पड़ने का भय समझकर उसने राजा को तुरत सोने की आज्ञा दे दी, तथा काल केतु की माया 'के सहारे स्वप्रभाव-वर्द्धन के विचार से राजा को सोते ही नगर पहुँचाने का वचन दिया, और उसे पूरा भी कर दिखाया।

शूकर का कालकेतु निशिचर के स्वरूप में एकाएक आने से पाठक पर नाटक के समान भारी प्रभाव पड़ता है। "स्रमित भूप निद्रा अति आई; सो किमि सोव सोच अधिकाई।" में स्वभाव-वर्णन की अच्छी बहार है। कालकेतु के कार्यों में कर्म-शूरता खूब देख पड़ती है।

कपटी ने स्वयं राजा के परोसने का इसीलिये प्रबंध बाँधा था कि उसी पर पूरा दोप समझ पड़े। उसने समझा था कि साल-भर में कभी-न-कभी विप्र-मांस का हाल खुल ही जायगा। उसके भाग्यवश ऐसा पहले ही दिन हो गया। राजा ने शूकर का पीछा करने में धैर्य दिखलाया था, परंतु आकाश-वाणी सुनकर, बुद्धिशून्यता से घबराकर शाप के प्रथम वह कुछ भी न कह सका। वह शूरता के कर्मों में धैर्यवान् था, परतु बुद्धि में बालकों के समान अजान था। शापोद्धार के विषय में भी उसने ब्राह्मणों से कुछ विनती न की, और उन्होंने भी प्रकट में तो उसे निर्दोप कह दिया, किंतु उसकी वास्तविक कुटिलता पर विचार कर शाप-तीक्ष्णता को कुछ भी न घटाया।

कालकेतु एवं कपटी राजा ने एक वर्ष भी न ठहरकर अपने सहायकों-सहित राजनगर घेरकर भानुप्रताप का सर्वनाश कर डाला। कवि ने इस वर्णन के पीछे विप्र तथा भावी माहात्म्य-विषयक-निम्न-लिखित छंद कथा के सार-स्वरूप कहे—

"सत्यकेतु-कुल कोउ नहिं बाँचा, विप्र-साप किमि होइ असाँचा।
भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ विधाता वाम,
धूरि मेरु-सम, जनक जम, ताहि व्याल-सम दाम।"

ये छंद इस कथा के अंतिम भाग में बहुत ही उपयुक्त हैं। दोहे से कवि ने प्रकट किया कि ब्राह्मण हानिकारक नहीं होते, परतु राजा के लिये विधि वाम होने से वे ही नाशकारी हो गए, जैसे पिता तक यम-तुल्य हो सकता है।

इस कथा के राजा, कपटी मुनि और कालकेतु प्रधान पात्र हैं। राजा वीर, धैर्यवान्, धर्मी, परतु मूर्ख था, और कुसगति से कुटिल तथा स्वार्थी भी हो सकता था। उसने ब्राह्मणों के साथ छल किया, जिसका फल उसे पूरा मिला। कालकेतु पूरा मायावी तथा कार्यकुशल था, परंतु कपटी मुनि की भाँति बुद्धि-वैभव दिखलाकर कार्य-साधन के प्रबध नहीं कर सकता था। इसलिये उसने इस धूर्त की सहायता ली। ये दोनों मनुष्य वदला लेने में खूब सन्नद्ध थे। कपटी मुनि बड़ा ही चतुर एवं प्रबधकर्ता था। पहले उसने राजा को भुलाया, और फिर अन्य राजाओं को पत्र लिखकर युद्ध का प्रबंध किया। इसने अपने को आदि सृष्टि में उत्पन्न कहकर बड़ी ही सदेह-पूर्ण दशा में डाला, परतु ऐसा कहने के पूर्व यह समझ चुका था कि राजा पूरा मूर्ख है, और पूर्णतया इसके वश में है। कपटी मुनि और कालकेतु चाहते, तो सोते में राजा को वहीं समाप्त कर देते, पर वे उसका सकुटुंब नाश करना चाहते थे, सो केवल उसे मारना उन्होंने काफ़ी न समझा। कवि ने इस कथा द्वारा शायद यह भी दिखाया कि ब्राह्मणों ने क्रोध-वश थोड़े-से अपराध पर राजा के सपरिवार नाश करने में अनौचित्य प्रकट किया, जिससे समय पर रावण द्वारा उन्हें दु.ख हुआ। इस कथा में गोस्वामीजी ने छल-वार्ता कराने में अच्छी सफलता दिखलाई, और राजा की मूर्खता प्रकट करने को कुछ ऐसे भी कथन करा दिए, जिनसे बुद्धिमान् मनुष्य को संदेह होना उचित था। यदि युद्ध में कालकेतु तथा कपटी मुनि की गोस्वामीजी दुर्दशा दिखला देते, तो पाठकों को अधिक प्रसन्नता होती, परंतु संक्षिप्त वर्णन के कारण वह ऐसा न कर सके।

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होगा कि हमने कवियों की साहित्य-गरिमा कैसे विचारों से स्थिर की है। प्रत्येक लेखक के विषय में ऐसे-ही-ऐसे विस्तृत कथन कहने से ग्रथ का आकार वहुत अधिक वढ जाता, वरन् यों कहना चाहिए कि इतिहास-ग्रथ में ऐसे कथनों को स्थान मिल ही नहीं सकता। ऐसे ही विचारों

से हमने प्रत्येक स्थान पर कारण लिखे विना कवियों को श्रेणी-बद्ध किया और उनकी रचनाओं पर अनुमति प्रकट की है।

काव्य-रीति

इस ग्रंथ-भर में साहित्य का विषय कहा गया है, सो उचित जान पड़ता है कि उसका भी सूक्ष्म कथन यहाँ कर दिया जाय। विस्तार-पूर्वक वर्णन से इस विषय पर एक भारी ग्रंथ वन सकता है परंतु यहाँ दिग्दर्शन-मात्र का प्रयोजन है। भाषा-साहित्य का आधार संस्कृत-काव्य है, और हमारी रीति-प्रणाली विशेषतया उसी से निकली है। भाषा के आचार्यों ने बहुत करके मम्मट के मत पर अनुगमन किया है, यद्यपि संस्कृत के अन्य आचार्य बिलकुल छोड़ नहीं दिए गए हैं। हमारे आचार्यों ने संस्कृत का आधार मानकर भी बहुत स्थानों पर अपने पृथक नियम बनाए हैं। हिंदी और संस्कृत दो पृथक् भाषाएँ हैं, सो ऐसी विभिन्नताओं का होना स्वाभाविक भी है। प्रत्येक आचार्य ने पुरानी रीतियों पर चलते हुए बहुत-सी बातों में नई प्रणालियाँ स्थिर की हैं। हमारे यहाँ इतने आचार्य हो गए हैं कि हिंदीवालों को संस्कृत-रीति-ग्रंथ पढ़ने की अब कोई आवश्यकता नहीं रही है। इन्हीं आचार्यों के आधार पर यहाँ कथन किया जायगा।

पदार्थ-निर्णय

सबसे पहले पाठक को पदार्थ-निर्णय पर ध्यान देना चाहिए। पद वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक होते हैं तथा जिन शक्तियों से ये जाने जाते हैं, उन्हें अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहते हैं। अभिधा से सीधा-सादा अर्थ लिया जाता है, और लक्षणा में मुख्यार्थ न बनने से वह तट से ले लिया जाता है। जैसे लाठी चलती है, के कहने से उसके चलानेवाले का बोध होता है। ये कई प्रकार की होती हैं। व्यंजना में सीधा अर्थ छोड़कर और ही अर्थ लिया जाता है। जैसे 'दुशालों के पाँवड़े पड़े हैं', कहने से अहंकार या अमीरी व्यंजित होती है। व्यंजना अभिधामूलक, लक्षणामूलक और व्यंग्यमूलक होती है, और वचन, क्रिया, स्वर तथा चेष्टा से प्रकट होती है। यहाँ तक शब्दों से मुख्य प्रयोजन रहा, परंतु आगे चलकर ध्वनि-भेद में वाक्यों से संबंध है। किसी वाक्य से कुछ शब्दार्थ निकलता है, और उस शब्दार्थ से कुछ पृथक् भाव भी कहीं-कहीं

प्रकट होता है। यही पृथक् भाव दिखाने में ध्वनि-भेद काम आता है। यदि कहा जाय कि "आपके चरण की रज से मैं पवित्र हो गया", तो यहाँ प्रकट में तो रज का यश-गान है, परतु वास्तव में आपका माहात्म्य कहा गया है। यहाँ माहात्म्य ध्वनिभेद से प्रकट होता है। ध्वनि अगूढ़ और गूढ़ होती है। अगूढ़ ध्वनि वह है, जो साधारण लोगों की समझ में आ जाय, परतु गूढ़ ध्वनि को केवल साहित्यवेत्ता एव प्रवीण पुरुष ही समझ सकते हैं। अत्यत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि, अर्थांतरसक्रमित-ध्वनि, आदि १८ प्रकार की ध्वनियाँ होती हैं। इसके आगे भी तात्पर्य प्रधान है। यदि आपने मुझसे कहीं जाने को कहा, और मैंने सीधा-सादा इनकार न करके जाने में बहुत-सी आपत्तियाँ बताकर कथन किया कि आपकी जैसी मर्ज़ी, तो सब बातों का तात्पर्य यह निकला कि मैं जाना नहीं चाहता। किसी प्रबध के साराश को तात्पर्य कहते हैं।

पिंगल

पदार्थ-निर्णय के पीछे पिंगल पर बिचार करना चाहिए। इसमें मेरु, मर्कटी, पताका, नष्ट, उद्दिष्ट और प्रस्तार में सिवा कौतुक के और कुछ नहीं है। छंद दो प्रकार के होते हैं—एक मात्रावृत्त और दूसरे वर्णवृत्त। मात्रावाले छदों में वर्णों का विचार नहीं होता, और वर्णवाले छदों में मात्रा का नहीं। फिर भी छद की गति सदैव ठीक रहनी चाहिए। सवैया आदि की भाँति कुछ छद ऐसे भी होते है, जिनमें मात्रा तथा वर्ण दोनो का विचार होता है। वर्ण गुरु और लघु होते हैं। 'काम' में 'का' गुरु एव 'म' लघु है। इसी प्रकार अजन एव बौद्ध में भी पहले ही अक्षर गुरु है। जहाँ छंद बिगड़ने लगता है, वहाँ गुरु को लघु करके भी मृदु उच्चारण द्वारा पढ़ लेते हैं, परतु लघु अक्षर गुरु का काम कभी नहीं दे सकता। उपर्युक्त तीन प्रधान उपविभागों में एक-एक में बहुत-से छद है, यहाँ तक कि कुल छदों की सख्या सैकड़ों पर पहुँची है, और फिर भी पिंगलों में कहे हुए नियमों से हज़ारों नए छद बनाए जा सकते है। छंदों के चरणों में भी ठहरने के लिये कुछ गिने हुए वर्णों के पीछे रुकावट होती है, जिसे यति कहते है। जब एक चरण के शब्द का वर्ण

दूसरे चरण में चला जाता है, तब छंद में यतिभंग-दूषण लगता है। छंद के खंडित हो जाने से छंदोभंग-दूषण आता है।

गणागण

गणागण-विचार भी इसी से मिलता हुआ है। इसमें कहीं छंद के प्रथम तीन और कहीं प्रथम छ अक्षर लेकर उन पर देवताओं के प्रभाव और फलों का विचार होता है। इसका कुछ कथन मनीराम- संबंधी लेख में है। इसी प्रकार दग्धाक्षर का विचार है।

"प फ व भ ट ठ ढ ण म ख ड य झ र व ल थ सत्रह अङ्क,
कवित आदि में देहु जनि करत राज सों रंक।"

गणागण-विचार एवं दग्धाक्षर को हम वखेड़ा-मात्र समझते हैं। इनमें कोई सार पदार्थ नहीं समझ पड़ता।

गुण

साहित्य-गुण-कथन में आचार्यों का कुछ मतभेद है, जो विशेषतया केवल गुण-गणना-संबंधी है। श्रीपति ने गुणों की रस-अंगी धर्म कहकर दस शब्द-गुण तथा आठ अर्थ-गुण माने हैं। यथा—

शब्द-गुण = उदारता, प्रसाद, उदात्त, समता, शांति, समाधि, उक्ति-प्रमोद, माधुर्य, सुकुमारता और संक्षिप्त।

अर्थ-गुण = भव्यकल्प, पर्यायोक्ति, सुधर्मिता, सुशब्दता, अर्थ व्यक्त, श्लेष, प्रसन्नता और ओज।

इन्होंने इन सब गुणों के पृथक्-पृथक् लक्षण दिये हैं। देवजी ने शब्द एवं अर्थ को मिलाकर केवल दस गुण माने हैं—यथा, अर्थश्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्त, समाधि, कांति, ओज और उदारता।

हम इन्हीं को ग्राह्य मानते हैं, और मोटे प्रकार से तो केवल ओज, माधुर्य और प्रसाद ही प्रधान गुण माने गए हैं। कोई आचार्य इनकी संख्या अपनी रुचि के अनुसार और भी बढ़ा सकता है। यद्यपि स्वभावोक्ति एक अलंकार है, तथापि उसकी गणना गुणों में भी होनी चाहिए।

दोष

आचार्यों ने बहुत प्रकार के दोष माने हैं, और भिन्न-भिन्न आचार्यों में उनकी सख्याओं के विषय में बड़ा अतर है। दोप शब्द, अर्थ, वाक्य एवं प्रबध-सबधी हो सकते हैं। केशवदास ने थोड़े ही दोष कहे हैं, परतु श्रीपति ने इनका अच्छा विस्तार किया है। दास ने भी दोषों को उत्कृष्ट वर्णन किया है। कवियों ने यहाँ तक कहा है—"ऐसो कबित न जगत में, जामें दूषन नाहिं", परतु इसे अत्युक्ति समझना चाहिए।

भाव

भाव-भेद, रस-भेद एव अलंकार काव्य के मुख्याग है।

हमारे आचार्यों ने स्थायी, विभाव, अनुभाव, सात्त्विक (तन-सचारी), सचारी (मन-सचारी) और हाव-नामक भाव के छ भेद माने हैं। कोई-कोई हाव को मुख्य भेदों में नहीं मानते। स्थायी भाव बीजाकुर-समान रस का कारण होता है। विभाव के आलबन और उद्दीपन-नामक दो भेद हैं। "रस उपजै आलबि जेहि सो आलंबन होय, रसहि जगावै दीप ज्यों उद्दीपन कहि सोय।" आलबन में नायक-नायिका का वर्णन आता है, और उद्दीपन में आभूषण, चदन, पट्ऋतु, वन, नदी, पहाड़, लता, कजादि का। अनुभाव में क्रियाएँ अथवा दशाएँ हैं, जिनसे रस का अनुभव होता है। स्तभ, स्वेद, रोमांच, वेपथु, स्वर-भग, वैवर्ण्य, आँसू और प्रलय-नामक आठ सात्त्विक भाव हैं। कोई-कोई जृंभा को नवाँ सात्त्विक मानते हैं। निर्वेद, ग्लानि, शका आदि ३३ सचारी भाव हैं। हाव का लक्षण यह है—"होहि सँजोग सिंगार मैं दपति के तन आय, चेष्टा जे बहु भाँति की ते कहिए दस हाय।" नायक के पति, उपपति और बैसिक-नामक तीन प्रधान भेद हैं। इनके भेदातर बहुत हैं। पीठमर्द, विट, चेटक और विदूषक नायक सखा अथवा नर्म सचिव कहलाते हैं। नायिका के भेदांतर जाति, कर्म, अवस्था, मान, दशा, काल और गुण के अनुसार किये गए हैं, परंतु देवजी ने उन्हें वंश, अंश, जाति, कर्म, देश, काल, गुण, वय, सत्त्व और प्रकृति के अनुसार विभक्त किया है। इनके अतिरिक्त नागर, ग्रामीण, ज्येष्ठा, कनिष्ठा और सखी के भी कथन आए हैं। स्वकीया नायिका के यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम

कुल, भूषण और विभव-नामक आठ अंग हो सकते हैं। इन आठों अंगोंवाली नायिका को अष्टांगवती कहते हैं। परकीया में कुल को छोड़कर शेष सात अंग हो सकते है, परंतु गणिका में कुल, विभव, प्रेम और शील का अभाव है। इसी से कई आचार्य इसे वर्णन-योग्य नहीं समझते। उपर्युक्त सातो भेदों के अनुसार सूक्ष्मतया नायिका-भेद यहाँ लिखा जाता है—

(१) जाति = पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी।

(२) कर्म = स्वकीया, परकीया और सामान्या। ज्येष्ठा-कनिष्ठा का कथन स्वकीया के अंतर्गत होता है।

(३) अवस्था = मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा।

(४) मान = धीरा, धीराधीरा और अधीरा।

(५) दशा = अन्य-सुरति-दुःखिता, मानवती और गर्विता।

(६) काल = प्रोषितपतिका, कलहांतरिता, खंडिता, अभिसारिका, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, प्रवत्स्यत्पतिका और आगतपतिका।

(७) गुण = उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

उपर्युक्त भेदों के भेदांतर बहुत अधिक हैं। इसी को नायिका-भेद कहते हैं।

रस

रस की उत्पत्ति भावों से है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। "जो बिभाव, अनुभाव अरु बिभिचारिन करि होय; थिति की पूरन बासना, सुकबि कहत रस सोय।" रस दो प्रकार का माना गया है, अर्थात् लौकिक और अलौकिक। अलौकिक रस स्वाप्निक, मानोरथ तथा औपनायक- नामक तीन उपविभागों में बँटा है। लौकिक रस नौ प्रकार का होता है, अर्थात् शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत। शांत-रस नाटक में नहीं कहा जाता है। हरएक रस प्रच्छन्न या प्रकाश होता है। शृंगार दो प्रकार का है संयोग और वियोग। संयोग-शृंगार में दस हावों का भी कथन होता है। वियोग-शृंगार में पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुणात्मक-नामक

चार भेदांतर हैं। पूर्वानुराग में अभिलाष, चिंता, सुमिरन, गुन-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण-नामक दस दशाएँ होती हैं। कवि लोग मरण के स्थान पर प्राय मूर्च्छा-मात्र का वर्णन कर देते हैं। मान लघु, मध्यम या गुरु होता है। "सहजै हाँसी-खेल में बिनै-बचन सुनि कान, पायँ परे प्रिय के मिटै लघु मध्यम, गुरु मान।" प्रवास दूर या समीप का होता है, और करुणात्मक वियोग के दो उपभेद हैं, जिन्हें करुणातम एव करुणा कहते हैं। प्रथम में रति और शोक दोनो रहते हैं, परतु करुणा में केवल शोक रह जाता है।

नौ रसों में कुछ मुख्य हैं, और शेष उनके संगी।

मुख्य रस	उनके संगी रस
शृंगार	हास्य, भयानक
वीर	रौद्र, करुणा
शांत	अद्भुत, बीभत्स

शृंगारी कवियों ने वीर और शांत को भी शृंगार के संगी मान-कर उसे रसराज कहा है।

अब कुछ अन्य रसों के भेदांतरों का भी दिग्दर्शन यहाँ कराए देते हैं।

हास्य = उत्तम, मध्यम, अधम।

करुणा = सुख करुणा, लघु करुणा, अति करुणा, महाकरुणा। करुणा-रस का प्रादुर्भाव इष्ट-हानि, अनिष्ट-श्रवण, शोक एवं आशा के छूटने से होता है।

बीभत्स = तन-संकोच, मन-संकोच।

वीर = युद्ध, दया, दान।

निम्न-लिखित रस एक दूसरे के मित्र या शत्रु हैं—

मित्र	शत्रु
शृंगार का हास्य	शृंगार का बीभत्स
रौद्र का करुण	वीर का भयानक
वीर का अद्भुत	रौद्र का अद्भुत
बीभत्स का भयानक	करुणा का हास्य

अद्भुत-शांत

मोह, हर्ष, आवेग मति, जड़ता, विस्मय जानि ,

वृत्ति

रसों का यह सूक्ष्म वर्णन यहीं समाप्त होता है । रसों एवं गुणों को मिलाकर कवियों ने कैशिकी, आरभटी, भारती और सात्वती नामक चार वृत्तियों का कथन किया है ।

पात्र

पात्र-विचार भी रसों एवं भावों के विषय से मिलता-जुलता है । पात्र वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक होते हैं। इनके आधार मुख्यतया इस प्रकार हैं—

वाचक पात्र के आधार—शुद्धस्वभावा स्वकीया, अनुकूल पति, सखी विद्याशीला गुराइनि, नर्म सचिव पीठमर्द, गुरुजन धाय, कुल धर्म का उपदेश ।

लाक्षणिक पात्र के आधार—गर्वस्वभावा स्वकीया, दक्षिण पति, धृष्टा सखी, विट नर्म सचिव, दूती मालिनि, नायनि, उपदेश प्रिय वश करने के उपाय ।

व्यंजक पात्र के आधार—शुद्ध परकीया, नायक शठ व धृष्ट, नर्म सचिव, विट एवं विदूषक, दूती नीच पुरजन उपदेश-निंद्य कर्म ।

अलंकार

अब अलंकारों का वर्णन शेष रहा । अलंकार शब्द एवं अर्थ-संबंधी होते हैं । शब्दालंकारों में अनुप्रास के अंतर्गत वीप्सा यमकादि आते हैं । ये गणना में थोड़े हैं । चित्र-काव्य इसी के अंतर्गत है, जिसमें शब्द-वैचित्र्य की प्रधानता है । भाव-शिथिलता के कारण आचार्यों ने इसे प्रशंसनीय नहीं माना है। अर्थालंकारों में १०१ मुख्य हैं, जिनके भेदांतर अनेक हैं । देवजी ने ३९ ही अलंकार मुख्य माने हैं, और उनमें से भी उपमा और स्वभाव को विशेषतया प्रधान रक्खा है । अलंकारों में उपमा, अनन्वय, उप-मेयोपमा, प्रतीत, रूपक और परिमाण उपमा से पूरा संबंध रखते हैं । इनके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, निदर्शना, व्यतिरेक, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रस्तु-

ताकुर और ललित भी उपमा के ही समान हैं। और भी अपह्नुति, अतिशयोक्ति, निदर्शना, उक्ति, आक्षेप, विभावना, असंगति, विशेष, प्रहर्षण और उल्लास प्रधान अलकार है। रसवदादिक सात अलकार ऐसे हैं, जो रस-भेद में भी गिने जा सकते हैं। साधारण कवि अलकारों के लाने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं, पर तो भी उनकी रचना में एकआध अलकार कठिनता से आता है। उधर उत्कृष्ट कवि साधारण वर्णन करते चले जाते हैं, परन्तु वे ऐसे शब्द एवं भाव लाते हैं, जिनमें आप-से-आप अलंकारादि-संबंधी उत्तमताए बहुतायत से आ जाती हैं।

काव्यांग

आचार्यों ने रसों को काव्य-फल का रस माना है। एक महाशय ने कविता के विषय में कहा है—

> व्यंग्य जीव ताको कहत शब्द अर्थ है देह,
> गुन गुन, भूषन भूषनै, दूषन दूषन एह।

इस मत में व्यंग्य को जीव मानना सर्वसम्मत नहीं है। यदि वाक्य को देह कहकर कवि अर्थ को मस्तिष्क और रस को जीव बतलाता, तो उसके कथन में शायद सर्वसम्मति की मात्रा बढ़ जाती।

साहित्य-प्रणाली का यह अत्यंत सूक्ष्मवर्णन यहीं समाप्त होता है। हमें शोक है कि स्थानाभाव से हम इसका कुछ भी विस्तार नहीं कर सके। आशा है, यह वर्णन सहृदय पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करने को काफी होगा। रीति-ग्रंथों के अवलोकन से इसका पूरा स्वाद मिल सकता है। यहाँ इतना और कह देना चाहिए कि हमारे यहाँ का रीति-विभाग बहुत ही पूर्ण है, और संस्कृत को छोड़ अन्य भाषाओं में इसका जोड़ मिलना कठिन है।

वर्तमान शैली

इस रीति-वर्णन से साधारण पाठक को भ्रम पड़ सकता है कि क्या हमारे यहाँ साहित्य-रीति में स्वाभाविक वर्णन, प्रकृति-निरीक्षण, चरित्र-चित्रण आदि पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सकता है? ऐसा विचार उठना न चाहिए। उपर्युक्त रीति-कथन में कई स्थानों पर ऐसे वर्णनों का आदर किया गया है। देवजी ने अलकारों में उपमा और स्वभाव को मुख्य माना है। स्वभावोक्ति में

इन बातों की ही गुरुता है। इसी प्रकार समता, सुधमिता और प्रसन्नता-नामक गुणों में सुप्रबंध का अच्छा चमत्कार रहता है। सुप्रबंध में स्वभाव-वर्णन, प्रकृति-निरीक्षण, चरित्र-चित्रण आदि भली भाँति आते हैं। सुप्रबंध का मुख्य तात्पर्य यही है कि जिस विषय का वर्णन लिया जाय, उससे संबंध रखने वाली सभी बातों का पूरा और सांगोपांग यथोचित कथन हो। यदि गुलाब को उठाया जाय, तो उसके वृक्ष, पत्ती, काँटे, डालियाँ, फूल, फूल की पत्तियाँ उनकी सुगंध, रूप, रंग, पुष्प-रस, अर्क, इत्र, भ्रमर, कली का प्रातःकाल चिटक-कर फूटना, इत्यादि सभी बातों का कथन हो। यदि कोई मनुष्य नापदान तक के वर्णन में सुप्रबंध को स्थिर रक्खेगा, तो उसकी रचना सराहनीय होगी। हमारे यहाँ बहुत-से कवियों ने प्राकृतिक वर्णन अवश्य नहीं किए, परंतु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि हमारी साहित्य-रीति में ही इसका अभाव अथवा अनादर है

भाषा-संबंधी विचार

हिंदी-ग्रंथों की भाषा कैसी होनी चाहिए, यह विषय भी विचारणीय है। कतिपय संस्कृत के विशेष प्रेमी विद्वानों का मत है कि हिंदी में कम-से-कम गद्य-लेखन-शैली प्राय पूर्णतया संस्कृत व्याकरण से नियम-बद्ध होनी चाहिए। वे महाशय बाल की खाल निकालते हुए छोटी-छोटी बातों पर साधारण हिंदी-लेखकों की रचनाओं में मनमानी अशुद्धियाँ निकालने लगते है। ऐसे महानुभाव यह बात प्रायः बिलकुल भूल जाते हैं कि संस्कृत और हिंदी दो अलग-अलग भाषाएँ हैं। हिंदी का ढाँचा चाहे संस्कृत से भले ही बना हो, पर उसकी चाल-ढाल संस्कृत से विभिन्नता रखती है। यदि उन विद्वानों को संस्कृत का ऐसा प्रगाढ़ मोह है, तो उन्हें हिंदी को अलग छोड़ उसी भाषा में लिखना-पढ़ना चाहिए। हमने इस विषय पर बहुत दिनों तक भली भाँति पूर्ण विचार करके निश्चय किया है कि हिंदी को संस्कृत-व्याकरण के फेर में डालने से लाभ अति स्वल्प हो सकता है, पर हानि ऐसी प्रबल और असह्य होगी, जिसका वार-पार नहीं। लाभ केवल इतना ही प्रतीत होता है कि हिंदी संस्कृत हो जायगी, अर्थात् उसका संस्कार होकर वह ऐसी नियम-बद्ध और स्थिर हो जायगी कि

मनमानी-घरजानी की बात हटकर उसका एक नियमित रूप निश्चित हो जायगा, और लेखक के इच्छानुसार उसमें हेर-फेर न हो सकेंगे। पर स्मरण रहे कि यह बात अन्य प्रकार से भी संपादित हो सकती है, क्योंकि किसी भी व्याकरण के निश्चित हो जाने पर उक्त गड़बड़ी मिट सकती है। हिंदी एक जन-समुदाय की सरल भाषा है, और उसे दुर्गम एवं जटिल बना देने का एकमात्र परिणाम यही होगा कि पाँच-सात वर्षों के उत्कट परिश्रम बिना किसी को अपनी मातृ-भाषा का भी बोध न हो सकेगा। यह तो स्पष्ट ही है कि साधारण जन-समुदाय में एकदम विद्यानुराग जाग्रत् नहीं हो सकता, अतः अगत्या अपढ़ और कुपढ़ एवं साधारण पढ़े-लिखे लोगों की भाषा कोई और ही हो जायगी। स्मरण रहे कि हमारे यहाँ साधारण 'त' 'म' कर लेनेवालों तक की संख्या सैकड़ा पीछे दस-ग्यारह से अधिक नहीं है, और यदि स्त्रियों को भी जोड़ लें, तो यह लज्जास्पद-पड़ता प्रायः इसका भी आधा ही रह जाता है। ऐसी कुदशा में सिवा इसके और हो ही क्या सकता है कि थोड़े ही दिनों में बेचारी हिंदी भी संस्कृत की भाँति मृत भाषाओं (Dead-Languages) में परिगणित होकर शांत हो जाय, और कोई दूसरी गँवारी नष्ट-भ्रष्ट भाषा उसकी स्थानापन्न बन बैठे। इसका प्रयोजन कोई यह न समझ ले कि हम संस्कृत के मृत भाषा होने से प्रसन्न हैं, अथवा हमें उसे इस विशेषण से स्मरण करने में शोक नहीं होता, पर जो बात सत्य और अकाट्य है, उससे इनकार करना भी व्यर्थ ही प्रतीत होता है। क्या ही अच्छा हो, यदि संस्कृत-भाषा की गणना प्रचलित जीवित भाषाओं में हो जाय, पर बुद्धिमान् मनुष्य का काम यह है कि वर्तमान और होनहार दशा पर ध्यान देता हुआ इस प्रकार चले कि आगे को कोई बुराई न होने पावे। हमारी तुच्छ बुद्धि में यह आता है कि यदि संस्कृत किसी समय में जन-समुदाय की भाषा रही होगी, तो उसका चलना इसी कारण सर्व-साधारण से उठ गया होगा कि उसका व्याकरण परिपूर्ण और संपन्न होने के कारण अति क्लिष्ट और दुर्ज्ञेय है। अतः हमारे विचार से हम लोगों का यह पवित्र कर्तव्य है कि हिंदी को उस दशा में जा पड़ने से बचाया जाय। यह अभीष्ट कैसे सिद्ध हो सकता है, इसका ब्योरेवार वर्णन हम नीचे करते हैं।

लिपि-प्रणाली

(१) लिपि-प्रणाली में कड़ाई न होनी चाहिए। कोई आवश्यकता नहीं है कि हम हिंदी-गद्य में भी शब्दों के शुद्ध संस्कृत-रूप ही व्यवहृत करें। यदि कोई संस्कृत लिखता हो, तो बात और है, पर हिंदी में वैसा क्यों किया जाय? क्या संस्कृत और हिंदी में कोई भेद ही नहीं है? फिर संस्कृत-शब्दों के रोज़ाना बोलचाल में प्रचलित रूप हिंदी में क्यों न लिखे जायँ, और एक ही शब्द को कई तरह लिखने में कौन-सी हानि हुई जाती है? हमीं लोग सदा फारसी लिपि पर यह दोष ठीक ही आरोपित किया करते हैं कि उसके एक ही ध्वन्यात्मक अनेक अक्षरों की गड़बड़ी के कारण उसमें शुद्ध लिखने में बाधा पड़ा करती है और बालकों को यदि ठीक हिंदी लिख-पढ़ सकने के लिये दो वर्ष अलम् हैं, तो उर्दू में उन्हें पाँच-छः वर्ष से कम नहीं लगते (यथा "द्वै वर्ष ही में लेहिं बालक शुद्ध लिखि-पढ़ि याहि, पर अन्य लिपि के ज्ञान-हित षट वर्ष हू बस नाहिं")। ऐसी दशा में हिंदी-भाषा और नागरी-लिपि को भी वैसी ही जटिल और दुर्बोध बना देने में हमें कोई भी लाभ प्रतीत नहीं होता। अत. हम हिंदी-हितार्थ यह आवश्यक समझते हैं कि एक ही शब्द नीचे-लिखे हुए अथवा ऐसे ही चाहे जिस रूप में लिखा जाय—

नायिका—नायका, नाइका।

शतसई—सतसई, शतसैय्या, शतसैया, सतसैया, सतसइया।

सूर्य्य—सूर्य, सूर्ज, सूरज।

सकता—सक्ता।

अङ्ग—अंग।

कीर्ति—कीर्ति, कीरति।

विचार—बिचार।

कैकेयी—कैकेई, केकई, केकयी।

वेष—भेष, वेश, बेश, भेस, भेख।

माहात्म्य—महात्म, महातम, माहात्म, माहात्म्य।

ईर्ष्या—ईर्ष्षा, ईर्षा, इर्खा, इर्शा, इरखा।

क्षत्रिय—छत्री, छत्री।

धर्म्म—धर्म, धरम।

रसमयी—रसमई।

में—में।

मण्डन—मन्डन, मडन, इत्यादि-इत्यादि।

इन अनेक रूपों पर कोई उत्कट संस्कृतज्ञ महाशय चाहे जितनी नाक-भौं चढ़ावें, पर हिंदी में इन सबका बेधड़क व्यवहार होता होना चाहिए। कोई आवश्यकता नहीं कि इनमें से कोई एक स्थिर रूप अटल मान लिया जाय। सच पूछिए, तो हिंदी में शब्दों के शुद्ध रूप वे है, जिनका साधारण पठित जन-समुदाय में व्यवहार होता हो, यथा लालटेन, इस्टेशन, बिहार, अलोप, असास, अ जन, सिकत्तर, सोहै इत्यादि। इनके स्थानों पर यदि कोई लैनूटर्न, स्टेशन, विहार, लोप, आसायश, एन्जिन, सेक्रेटरी और शोभै लिखे, तो रियायत करके हम इन प्रयोगों को मान अवश्य लेंगे, पर इन्हें बेजा कहने में कोई संकोच नहीं हो सकता। इनमें कई शब्द विशेषतया विचारणीय है। आप चाहे जितना कहें, पर 'बिहार' को साधारण जन-समुदाय 'कभी विहार' न कहेगा। हिंदी में ब का प्रयोग प्रचुरता से होता है, पर संस्कृत में प्राय व को छोड़ ब कम देखने में आता है। जहाँ हिंदी में 'व' का प्रयोग प्रचलित हो, वहाँ उसी का व्यवहार होना चाहिए (यथा विहारी, विकास, वल इत्यादि)। हिंदी में शुद्ध संस्कृत-शब्दों के प्रयोगों पर ज़ोर देना वैसा ही समझा जायगा, जैसे कोई अँगरेज़ी में लैटिन शब्द लिखने का आग्रह करे। क्या 'जान मिलटन' को अँगरेज़ लोग 'जोनस मिल्टोनस' लिखना पसंद करेंगे? हमें हिंदी में अनेकानेक लेखकों की आवश्यकता है, पर बहुतेरे अँगरेज़ी पढ़े विद्वान् संस्कृत-व्याकरण के पूर्णज्ञ नहीं होते। अनेक केवल हिंदी जाननेवाले लोग भी भाषा की अच्छी सेवा किया करते है। यदि इन सब महाशयों को तिरस्कृत कर हिंदी-सेवा से विमुख कर दिया जाय, तो दस-पाँच पुराने पचगड़बाज़ों को छोड़ शायद किसी में भी हिंदी लिखने की पात्रता न समझी जायगी। यदि १५ वर्ष तक सिद्धांत-कौमुदी की फक्किका और महाभाष्य रटे बिना कोई मनुष्य हिंदी का लेखक नहीं हो सकता, तो उसकी उन्नति के लिये

शायद एकदम हताश होना पड़ेगा। दूसरी शताब्दी संवत पूर्व में शब्दों के एकाधिक रूपों पर महर्षि पतंजलि ने घोर आक्षेप किया, किंतु संसार ने शुद्धता के आगे व्यापकता का मान करके एकाधिक रूपों को न छोड़ा, जिससे प्राकृत के स्थान पर अपभ्रंश भाषा चलने लगी। उसी का वर्तमान रूप हिंदी है। इसे पहले भाषा कहते थे। कालिदास की विक्रमोर्वशी में कहीं-कहीं इसका आभास है। छठी शताब्दी के बाणभट्ट के समय भी प्राकृत के साथ देश में भाषा चलती थी। यही तत्कालीन हिंदी मानी गई है। अतएव शब्दों के एकाधिक रूपों का यह पचड़ा परम प्राचीन है।

शब्दों के नए रूप

(२) इतना ही नहीं, वरन् शब्दों के नूतन रूप बना लेने में भी हम कुछ भी हानि नहीं समझते। बँगला के प्रसिद्ध लेखक बंकिमचंद्र चटर्जी ने कहीं 'सौजन्य' के ठौर 'सौजन्यता' शब्द व्यवहृत किया था, जिस पर किसी संस्कृतज्ञ महात्माजी ने उन पर घोर आक्रमण किया। बंकिम बाबू ने केवल इतना कहकर झगड़ा मेट दिया कि "मैं तो 'सौजन्यता' लिखता हूँ, जब आप कोई ग्रंथ निर्माण करिएगा, तब उनमें आप सौजन्य ही लिखिएगा। सर्व-साधारण इस शुद्ध रूप पर मोहित होकर कदाचित् आप ही का ग्रंथ पढ़ेंगे।" पर वहाँ ग्रंथ बनावे कौन? वहाँ तो दूसरों की कीर्ति बढ़ती देख हृदय में शूल हुआ चाहे, और विना उनकी निंदा किए कब रहा जाय! बस, ऐसे महापुरुषों को पर-निंदा से काम। प्राय ऐसा ही हाल बँगला-कवि-कुल-मुकुट मधुसूदनदत्त के विषय में 'गायिका' और 'गायकी' पर हुआ था। द्वेषी लोग चामत्कारिक लेखकों पर यों ही व्यर्थ के आक्रमण करते आए हैं। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि हिंदी के परम प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ कवियों तक ने बेधड़क ऐसे-ऐसे शब्द लिखे हैं, जो संस्कृत-व्याकरण से नितांत अशुद्ध ठहरते हैं, पर वे महात्मा जानते थे कि संस्कृत एक भाषा है, और हिंदी दूसरी। संस्कृत के प्रकांड पंडित श्रीगोस्वामी हरिवंशहितजी ने हिंदी-कविता करने में सदा ही ध्यान रक्खा कि उनकी रचनाओं में ऐसे शब्द न आने पावें, जिनका व्यवहार हिंदी में न होता हो। महात्मा सेनापतिजी ने 'कविताई' शब्द का प्रयोग किया है---"सेनापति कवि

ताकी कबिताई बिलसति है।" यह बंकिम की 'सौजन्यता' के ही समान है। और की जाने दीजिए, श्रीस्वामी हरिदासजी 'भर्तृहरि' को अपनी कविता में 'भरथरी' कहते भी नहीं सकुचे। सारांश यह कि बात-बात में संस्कृत की बारीकियों को हिंदी में ला घसीटना ठीक नहीं है। हम स्वीकार करते हैं कि ऐसी दशा में हमारी भाषा में कुछ 'अनस्थिरता' अवश्य रहेगी, पर हमें उसी की ज़रूरत है। हम विशेष स्थिरता चाहते ही नहीं। कुछ अस्थिरता हमें हिंदी के लिए आवश्यक प्रतीत होती है, क्योंकि नूतन विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा का दिनोंदिन विकास होना ही ठीक है।

संधि

(३) संधि के झगड़ों से भी हिंदी को पाक रखना ही उचित है। हमारा मतलब यह है कि शब्दों को चाहे एक में मिलाकर लिखा जाय, चाहे अलग-अलग, और उनके किसी अक्षर में संस्कृत-व्याकरण के नियमानुसार चाहे परिवर्तन किया जाय या नहीं। यथा यज्ञोपवीत या यज्ञ उपवीत, श्रीमत् शंकराचार्य या श्रीमच्छंकराचार्य, वृहत, अंश या वृहदंश जगत् मोहन या जगन्मोहन, जगत् आधार या जगदाधार इत्यादि। इन दो-दो रूपों में से हिंदी में कोई भी लिखा जा सकता है।

विभक्ति-प्रत्यय

(४) विभक्ति-प्रत्यय का विवाद कुछ दिनों से हिंदी में छिड़ पड़ा है। अधिकांश लोगों का मत यही है कि हिंदी में विभक्ति-प्रत्यय होते ही नहीं, वरन् उनके ठौर ने, को, से (अर्थात् के द्वारा) के लिये, से (जुदाई का चिह्न), का (की, के), में (पै, पर), इत्यादि कारकों (Postpositions) से काम चलाया जाता है, पर कुछ विद्वान् अब तक यही झगड़ते जाते हैं कि ये कारक विभक्ति-प्रत्यय-मात्र हैं, और इन्हें अपने मुख्य शब्द (संज्ञा अथवा सर्वनाम) में मिलाकर लिखना चाहिए, न कि स्वच्छंद शब्दों की भाँति अलग करके। यथा "राम ने रावण को मारा", इसे उक्त विद्वज्जन यों लिखेंगे कि "रामने रावणको मारा", अर्थात् 'ने' और 'को' को वे महाशय 'राम' और 'रावण' के साथ मिलाकर लिखेंगे, न कि अलग करके। पंडितवर गोविंदनारायण मिश्र

ने इस विषय पर 'विभक्ति-विचार'-नामक एक छोटी-सी पुस्तक लिख डाली है, जिसमें उन्होंने बड़ी विद्वत्ता के साथ सिद्ध किया है कि ने, से, के, में इत्यादि शब्द संस्कृत और प्राकृत के विभक्ति-प्रत्ययों से ही निकले हैं। परंतु यह मान लेने पर भी कोई कैसे कह सकता है कि ये कारक शब्द उक्त प्रत्ययों की भाँति अपने मुख्य शब्द (संज्ञा या सर्वनाम) के साथ ही सटाकर लिखे जायँ ? संस्कृत में शब्दांश होते हुए भी वे हिंदी में पृथक् शब्द होने का गौरव प्राप्त कर सकते थे, और कर भी चुके हैं। हिंदी का रूप और ढंग संस्कृत से भिन्न है, और उसमें इन झगड़ों को स्थान देने से एक अनावश्यक कठिनाई उपस्थित करने के सिवा कोई भी लाभ नहीं। "राम ही का भाई", "कृष्ण ही ने सुना", "मुझी को दो", "तुम्हीं से कहा", इत्यादि व्यवहारों से स्पष्ट विदित होता है कि हिंदी में कारक-शब्द संज्ञा और सर्वनाम से अलग ही लिखे जाने चाहिए, नहीं तो उनके बीच एक तीसरा शब्द (प्रत्यय) ही क्योंकर आ जाता ? इन प्रयोगों को अपवाद (Exceptions) कहना ठीक नहीं, क्योंकि हिंदी में अब तक उनका शब्दांश माने जाने का नियम स्थिर ही नहीं हुआ है। फिर कोई शब्द या वाक्य उद्धृत करने में उसे उलटे कामाओं (Inverted Cmmas) में बंद करने की रीति हिंदी में भी प्रचलित हो गई है, अतः कारकों को मूल-शब्द के साथ लिखने में जहाँ कोई मूल-शब्द के उद्धृत करने की आवश्यकता होगी, वहाँ कारक को भी उलटे कामाओं में वृथा ही बंद करना पड़ेगा। यथा "राम ने रावण को मारा", इस वाक्य में 'ने' और 'को' को 'राम' और 'रावण' के साथ मिलाकर लिखने की आवश्यकता नहीं। इस उदाहरण में यदि कारकों को मूल-शब्दों में मिलाकर लिखें, तो जिन दो-दो शब्दों को छोटे टाइप में छापा है, उन्हें एक-साथ उलटे कामाओं में बंद करके "को को" और "रावण के" लिखना पड़ेगा, जो उपहासास्पद है, क्योंकि इस "को को" में पहला 'को' उद्धृत किए हुए शब्द में से आता है, और दूसरा हम अपनी ओर से जोड़ रहे हैं। इतना ही नहीं, वरन् अंतिम "को को" जो यहाँ उद्धृत किया गया है, उसके साथ "में" भी उलटे कामाओं में रखना पड़ेगा, अर्थात् कोई कारक-शब्द जै बार उद्धृत करना पड़ेगा, प्रायः उतने ही अन्य कारक-शब्द उसके

साथ उलटे कामाओं में घुसते चले जायगे ! इसमें तो पूरी वही कहावत ठहरेगी कि "आधा पाँव मेरा, आधा मेरी बधिया का" । ऐसी दशा में कारक-शब्दों को अलग ही लिखना उचित प्रतीत होता है, क्योंकि प्रयोजन केवल मूल-शब्द को उद्धृत करने का है, न कि कारक को । फिर कोप में कारकों के कारण प्रत्येक शब्द विविध कारकों के साथ अलग-अलग लिखकर उसका अर्थ देना पड़ेगा, क्योंकि रामने, रामको आदि यदि एक-ही-एक शब्द है, तो एक दूसरे से भिन्न भी है ।

लिंग-भेद

(५) हिंदी में सबसे बड़ा झगड़ा लिंग-भेद का है । प्राय. अन्य सभी भाषाओं में नपुंसकलिंग एवं त्रिलिंग भी हुआ करते है, पर हिंदी में निर्जीव पदार्थ भी पुंलिंग अथवा स्त्रीलिंग ही के अ तर्गत माने गए हैं । अत· प्रत्येक ऐसे पदार्थ को इन दो में से किसी एक में मान लेना होता है । इसके कोई भी स्थिर नियम नहीं है, केवल बोलचाल और मुहाविरे के अनुसार इस पर कारवाई की जाती है । यही कारण है कि अगरेजों एव अन्य विदेशियों को हिंदी सिखाने में सबसे अधिक उलझन लिंग-भेद में ही पडती है, और प्रायः आजन्म उन्हें इस बाधा से छुटकारा नहीं मिलता । इतना ही नहीं, वरन् हमारे यहाँ के वे समालोचक, जो ईर्पा-द्वेप-वश आलोच्य लेख एवं लेखक का खंडन करना ही अपना कर्तव्य समझते है, हिंदी में प्रसिद्ध लेखकों तक की ऐसी ही 'भूलें' खोज निकालने के लिये बड़े उत्सुक रहा करते हैं । वे इतना तक नहीं विचारते कि यदि हमारे नामी लेखकगण भी इस लिंग-भेद को नहीं समझ सकते, तो इसमें किसका दोप है । वास्तव में ये 'भूलें' केवल समालोचकों के मस्तिष्क में चक्कर खाया करती है, अथच और कहीं इनका अस्तित्व ही नहीं । यह देखने के लिये कि ऐसी 'भूलें' हमारे-जैसे अल्पज्ञ ही किया करते है, या भाषा के मर्मज्ञ लेखकों के विषय में भी यह कहा जा सकता है, हमने 'सरस्वती' पत्रिका के प्रथम भाग के पृष्ठों को उलट-पलटकर देखा, तो एक, दो, तीन की बात नहीं, वरन् एकदम सभी लेखकों के लेखों में वैसे प्रयोग पाए गए । कुछ उदाहरण हम नीचे देते है—

(१) अतुल पैतृक सपत्ति के नाशकारी (पृष्ठ ४ कालम १) बा० राधाकृष्णदास ।
(२) अर्जुन मिश्र ने भावदीय-नामक टीका बनाई (पृ० २५ का० २) पं० किशोरीलाल गोस्वामी ।
(३) इसकी प्रस्तुत प्रणाली आश्चर्यजनक है (पृ० २८ का० १) बा० श्यामसुदरदास बी० ए० ।
(४) सरस सरसी (पृ० २० का० १) बा० कार्त्तिकप्रसाद खत्री ।
(५) कुतुब मीनार.. बनी थी (पृ० ९८ का० २) बा० काशीप्रसाद जायसवाल ।
(६) तीव्र बुद्धि (पृ० १८८ का० २) बा० दुर्गाप्रसाद बी० ए० ।
(७) शोचनीय अवस्था (पृ० १९३ का० १) पं० जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी ।
(८) निम्न-लिखित चिट्ठी (पृ० १९७ का० १) बा० केशवप्रसादसिंह ।
(९) ऐसी नाथ सुलभ नहिं वानी (पृ० २१६ का० २) ला० सीताराम बी० ए० ।
(१०) इनकी मृत्यु काशी में हुई (पृ० २४९ का० २) बा० मनोहरलाल खत्री ।
(११) दुखमय मुक्ति (पृ० २१५ का० १) सेठ कन्हैयालाल ।
(१२) बंगालियों की भाषा हिंदी से भी हीन, मलीन और रोगग्रस्त थ (पृ० ३९९ का० २) प्रकाशक ।
(१३) सुमन चाहि उपमा यह चित पर चटक चढ़ी है । (पृ० १२२ का० २) बा० जगन्नाथदास बी० ए० ।
(१४) अब रहे पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, जिनके इस साल की सरस्वतीवा लेख हमने इस कारण नहीं देखे कि उनकी बेकन-विचार-रत्नावली कुछ ही पृष्ठों में ऐसे तीन प्रयोग हमें पहले ही मिल चुके थे । यथा—

जिनकी विवेचक शक्ति ठीक नहीं है (पृष्ठ १८) ।

डर मृत्यु विषयक वार्ता सुनकर बढ़ जाता है (पृष्ठ १८) ।

उसमें अच्छी प्रकार प्रवेश नहीं होता (पृ० १४) ।

बस, हमें छोड़ केवल इतने लेखकों ने सरस्वती के प्रथम भाग में लेख दिए थे, और सभी ने इस प्रकार की भाषा लिखी है, जिसमें लिंग-विषयक 'भूलें' स्थापित की जा सकती है, जैसा हमने ऊपर के उदाहरणों में, छोटे टाइप में छाप कर, दिखला दिया है। श्रम करने से ऐसे ही प्रयोग सैकड़ों अच्छे लेखकों में दिखलाए जा सकते हैं। प्राचीन कवियों में भी ऐसे उदाहरण बहुतायत से मिलते हैं। वास्तव में ये अशुद्धियाँ नहीं है, और ऐसे प्रयोगों को अशुद्ध स्थापित करके हमें हिंदी को बिना प्रयोजन ही दुर्गम न बना देना चाहिए। हमारा तो यह मत है कि जहाँ तक कोई नपुंसक लिंगवाला प्रयोग स्पष्ट और निर्विवाद रूप से अशुद्ध न ठहर जाय, वहाँ तक उसमें लिंग-भेद-विषयक 'अशुद्धियाँ' स्थापित न करनी चाहिए, क्योंकि वास्तव में निर्जीव पदार्थ न पुंलिंग है और न स्त्रीलिंग। उसे किसी एक में धींगाधींगी ही से मान लिया जाता है। पृथक्-पृथक् प्रांतों में वही शब्द पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग होता है अतएव चलन की प्रधानता रह जाती है।

लिंग-भेद का झगड़ा हिंदी में यहाँ तक बढ़ गया है कि संज्ञा और सर्वनाम के अतिरिक्त क्रिया, विशेषण और क्रिया-विशेषणों तक में उसकी सत्ता हो गई है। संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया पर उसका अधिकार निर्विवाद ही है, पर विशेषण एवं क्रिया-विशेषणों का भी लोग पिंड छोड़ना नहीं चाहते। इन पर अभी लिंग-भेद का हर ठौर पूर्ण साम्राज्य नहीं जमने पाया है, पर शोक का विषय है कि बाल की खाल निकालने वाले लेखकों एवं समालोचकों का झुकाव स्पष्ट रूप से इसी ओर है कि ये भी बचने न पावें। हमारी समझ में इन अनावश्यक बारीकियों को हिंदी में स्थिर कर देना एवं उनका नए सिरे से संचार करना बड़ा ही हानिकारक है, और विज्ञ पुरुषों को इसका विरोध करना ही परम धर्म समझना चाहिए। अभी तक प्रचलित ढंग यह है कि अच्छा, अच्छी, बड़ा, बड़ी आदि ठेठ हिंदी के विशेषणों में लिंग-भेद माना जाता है, परंतु संस्कृत-शब्दवाले विशेषणों में ऐसा नहीं किया जाता। 'उनकी भाषा बड़ी मधुर और सरल है' कोई मधुरा और सरला नहीं कहता। यही ढंग स्थिर रहना चाहिए।

हिंदी की स्वतन्त्रता

इन सब बातों के अतिरिक्त इस मामले में एक भारी सिद्धांत का प्रश्न उठता है, अर्थात् हिंदी कोई 'स्वतंत्र भाषा है या नहीं ? जो लोग बात-बात में संस्कृत के नियमों का सहारा हिंदी लिखने में भी ढूँढते है, वे हमारी समझ में, हिंदी के अस्तित्व से भी इनकार करनेवालों में है, और उन्हें हम हिंदी का प्रचंड शत्रु समझते हैं। उनका हिंदी से अति शीघ्र संबंध छूट जाना ही हमारी देश-भाषा के लिए मंगलकारी है। प्रत्येक भाषा के लिये स्वतंत्रता एक परमावश्यक गुण है। प्राचीन काल में प्राकृत संस्कृत-भाषा की परवा न करके अज्जउत्त (आर्यपुत्र), नियोअ (नियोग), विअ (इव), पत्त (पत्र), संकप्प (संकल्प), पदाण (प्रदान) आदि अपने ही रूपों में शब्दों का प्रयोग करती रही। धीरे-धीरे पंडितों ने उसे भी दुर्गम व्याकरण के अटल नियमों से जकड़ दिया, जिसका फल यह हुआ कि थोड़े दिनों में वह लुप्त हो गई, और धीरे-धीरे हिंदी ने उसका स्थान लिया। अभी तक हिंदी में कोई परम दृढ़ व्याकरण नहीं स्थिर हुआ, इसी से वह दिनोंदिन उन्नति करती चली जाती है। जिस समय उसका भी परम कठिन व्याकरण बन जायगा, तब वह भी मृत भाषाओं में परिगणित होने के लिये दौड़ने लगेगी, और देश में कोई दूसरी ही सुगम भाषा चल पड़ेगी। व्याकरण भाषा का अनुगामी होता है, न कि भाषा व्याकरण की। हमारी समझ में प्रत्येक भाषा के व्याकरण को यथासाध्य अत्यंत सरल एवं सुगम होना चाहिए। यदि कोई व्याकरण ऐसा बने कि पुराने भारी लेखकों की भी रचनाएँ उसके नियमानुसार अशुद्ध ठहरें, तो वह व्याकरण ही निंद्य होगा, और उसके बराबर भाषा का दूसरा शत्रु खोजना कठिन होगा, क्योंकि वह अपनी स्वामिनी भाषा के ही मूलोच्छेदन में प्रवृत्त रहेगा। संस्कृत-भाषा के शास्त्रार्थ मुख्य विषय को छोड़कर प्राय. "अशुद्धश्चिं वक्तव्यम्" पर ही समाप्त होते हैं। हमारे यहाँ कुछ लेखकों में भी इन्हीं बातों की ओर रुचि बढ़ती हुई देख पड़ती है, जो सर्वथा तिरस्करणीय है। प्राचीन समय के महात्मा गोरखनाथ आदि संस्कृत के पूर्ण पंडित थे। उन्होंने अनेक संस्कृत के ग्रंथ लिखने पर भी भाषा गद्य तक में शब्दों के संस्कृत-संबंधी रूपों

का तिरस्कार किया। गोरखनाथ का रचना काल बहुत प्राचीन था। इनका एक ऐसा वाक्य ग्रंथ में उद्धृत है, जिसमें जग्य, अस्नान, छन, सर्व, पुजि चुकी और पितरन-शब्दों का इन्हीं रूपों में व्यवहार हुआ है, न कि संस्कृत के रूपों में। यही दशा महात्मा विट्ठलनाथ एवं गोकुलनाथ की रचनाओं में है पद्य में भी सब लेखक बेधड़क ऐसे ही शब्द रखते चले आए हैं। हमारे यहाँ अब गद्य-काल में हिंदी पर संस्कृत का प्रचंड आक्रमण हो रहा है देखना यह है कि बेचारी हिंदी कहाँ तक अपना रूप स्थिर रखने तथा प्राण बचाने में समर्थ होती है? आजकल कितने ही लेखकों का मत है कि पद्य में तो हिंदी में प्रचलित शब्दों के रूपों का लिखना उचित है, परंतु गद्य में शुद्ध संस्कृत-शब्द ही लिखने चाहिए। यह मत गोरखनाथ, विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, नाभादास, बनारसीदास आदि प्राचीन कवियों के गद्य-लेखों के नितांत प्रतिकूल है। कोई कारण नहीं कि पद्य में तो हिंदी-शब्दों का प्रयोग हो, परंतु गद्य में उनका स्थान एक दूसरी भाषा के शब्द ले लें। हिंदी के स्वत्व पर संस्कृतादि भाषाओं का ऐसा अधिकार जमना घोर अन्याय है।

स० १९७० में, मिश्रबंधु-विनोद के प्रकाशित होने के पीछे, लोगों का ध्यान इस विषय पर कुछ आकृष्ट हुआ, जिससे कई ग्रंथ इसी विषय पर बने। उनका कुछ कथन यहाँ किया जाता है। ऐसे सात-आठ ग्रंथ बन चुके हैं।

(१) हिंदी-साहित्य का इतिहास, पंडित रामचंद्र शुक्लकृत। प्रथमावृत्ति, पृष्ठ-संख्या ६८४। समय सं० १९८६।

(२) हिंदी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, सूर्यकांत शास्त्रीकृत। पृष्ठ-संख्या ५३३। इस ग्रंथ में मुख्य कवियों की लंबी, विशेषतया तुलनात्मिका आलोचनाएँ हैं, और शेष के साधारण छोटे-छोटे कथन। ग्रंथ का समय सं० १९८७ है।

(३) हिंदी-भाषा और साहित्य, राय बहादुर बाबू श्यामसुंदरदासकृत। पृष्ठ-संख्या ५१६। समय स० १९८७। इस ग्रंथ में दो भाग हैं। पहले भाग में छ अध्यायों द्वारा हिंदी-भाषा का विश्लेषण है, और दूसरे में दस अध्यायों द्वारा साहित्यिक विकास का। इसमें एक स्थान पर इतिहास नहीं है, वरन् विविध

विषयों को लेकर लेखक ने उनका साद्यंत ऐतिहासिक वर्णन किया है। साहित्य से इतर कलाओं के भी विस्तृत कथन हैं।

(४) हिंदी की गद्य-शैली का विकास, पंडित जगन्नाथप्रसाद शर्मा एम्० ए०-कृत। समय सं० १९८७, पृष्ठ-संख्या २०० से ऊपर इसमें लेखक ने कई गद्य-लेखकों की भाषा के विषय में अच्छी छान-बीन की है।

(५) हिंदी-साहित्य का इतिहास, पंडित रामशंकर शुक्ल एम्० ए० 'रसाल' कृत। पृष्ठ-संख्या ७७०। समय सं० १९८७। इस ग्रंथ में लेखक ने सयत विचारों द्वारा अच्छा वर्णन किया है, तथा हिंदी-साहित्य से मिले हुए धार्मिक, शौर्य-संबंधी आदि अनेक विषयों पर भी सार-गर्भित कथन किए हैं।

(६) हिंदी-भाषा और साहित्य का विकास, पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय-कृत। पृष्ठ-संख्या ७१९, समय सं० १९८८। जैसा इसका नाम प्रकट करता है, ग्रंथ में ऐतिहासिक विकास के संबंध में भाषा का विशेष कथन है।

(७) हिंदी-गद्य-मीमांसा, पं० रमाकांत त्रिपाठी एम्० ए०,-कृत। पृष्ठ-संख्या ४४२, समय सं० १९८३, द्वितीयावृत्ति सं० १९८८। इस ग्रंथ में भी कितने ही नवीन और प्राचीन लेखकों के गद्य पर विचार किया गया है।

(८) श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा-कृत हिंदी-साहित्य का इतिहास। प्राय. ३०० पृष्ठों में। थोड़े ही दिन हुए छपा। अभी देखने में नहीं आया है।

अब भूमिका को अधिक न बढ़ाकर यह ग्रंथ पाठकों के चरणों में सादर प्रेषित करके हम आशा करते हैं कि वे इसे अपनाएँ रहेंगे, और सदैव की भाँति अपनी अमूल्य सम्मतियों से हमें कृतार्थ करते रहेंगे।

लखनऊ
सं० १९९३

विनीत
मिश्रबंधु

आदि-प्रकरण

प्रारंभिक एवं पूर्व माध्यमिक हिंदी

पहला अध्याय

हिंदी की उत्पत्ति और काव्य-लक्षण

वैदिक समय से सं० ७०० तक

हिंदी उस भाषा का नाम है, जो विशेषतया युक्तप्रांत, बिहार बुँदेलखंड, बघेलखंड, छत्तीसगढ़ आदि में बोली जाती है, और सामान्यतया बंगाल को छोड़ समस्त उत्तरी और मध्य-भारत की मातृभाषा है। मोटे प्रकार से इसे भाषा भी कहते थे। इसकी उत्पत्ति के विषय में दो मत हैं, एक तो यह कि यह संस्कृत की पुत्री है, और द्वितीय यह कि इसकी उत्पत्ति प्राकृत से है, अथवा यों कहें कि अपभ्रंश प्राकृत ही बदलते-बदलते अब हिंदी हो गई है। अधिकतर लोगों का विचार इसी द्वितीय मत पर जमता है। भारतीय लिंग्विस्टिक सरवे में डॉ० ग्रियर्सन ने इस विषय पर बहुत श्रम किया है। यह निश्चयात्मक समझ पड़ता है कि हिंदी की बहुत अधिक क्रियाएँ प्राकृत से ही निकलती हैं, परंतु कुछ संस्कृत, फ़ारसी आदि से भी निकलती हुई जान पड़ती हैं। शेष शब्दों को हिंदी ने संस्कृत, प्राकृत, फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी आदि भाषाओं से पाया है, और अब भी पाती जाती है।

हिंदी की उत्पत्ति कहने के पूर्व यह उचित समझ पड़ता है कि अत्यंत सूक्ष्मता के साथ भारतीय रंगमंच का कुछ कथन कर दिया जाय। इस विषय

पर भारतीय इतिहास, हिंदी-साहित्य का इतिहास पर प्रभाव तथा सुमनोंजलि-नामक ग्रंथों में कुछ विशेष विवरण हो चुका है, इसलिये यहाँ बहुत सूक्ष्मता से कहा जाता है। ऋग्वेद का निर्माण-काल १६०० संवत् पूर्व से प्राय ९०० सं० पू० तक कहा गया है। ब्राह्मण-काल इसके पीछे प्राय. ५०० सं० पू० तक, सूत्र-काल २०० सं० तक तथा पौराणिक समय प्राय ८०० संवत् पर्यंत। ऋग्वेद चाक्षुष मन्वंतर से प्रारंभ हुआ, अतएव स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस तथा रैवत मन्वंतर से वैदिक समय के पूर्व के हैं। इन मन्वंतरों में ४५ पीढ़ियों ने राज्य किया, जिनमें उत्तानपाद प्रियव्रत, ध्रुव, वेन, भरत, पृथु, ऋषभदेव आदि महापुरुष थे। इन पाँचों अवैदिक मन्वंतरों का भोग-काल प्राय ७५० वर्ष है। इसमें से स्वायंभुव मन्वंतर प्राय. ४५० वर्षों का समझ पड़ता है, तथा शेष चारो मिलकर प्राय. तीन सौ वर्षों के। वैवस्वत मन्वंतर प्राय. १९०० सं० पू० से अब तक चल रहा है। इन कथनों में कुछ मतभेद भी है। आजकल वैदिक समयारंभ बहुधा यदि माना जाता है। वेद पूर्ववाले समय में पुराणों के अनुसार विचार बहुत कुछ बढ़ चुके थे, किंतु पंडित लोग इस कथन को समय-विरुद्ध मानते हैं। आजकल यह माना जाता है कि अवैदिक समय में शिश्न-पूजन के अतिरिक्त जड़ पूजन था, जिसमें गिरि, तरु, नदी आदि का पूजन आ जाता है। वैदिक समय में तेंतीस मुख्य देवताओं से प्रार्थनाएँ हैं, तथा सैकड़ों अन्य देवी-देवता हैं। परमेश्वर का विचार भी ऋग्वेद में अच्छा है। ब्राह्मण-काल में यज्ञों पर प्रधानता रही, तथा औपनिषद् ज्ञान-वृद्धि से परमेश्वर का विचार दर्शनशास्त्र से मिलकर परमोच्च हुआ। सूत्रकाल में गृह्य, धर्म तथा और श्रौत सूत्रों के सहारे सामाजिक विचारों तथा कर्तव्यों की नियमबद्धता सामने आई।

सूत्र-काल में ही बौद्ध तथा जैन-मतों के मानसिक आक्रमणों से वैदिक मत कट-सा गया, और पौराणिक मत-स्थापना की नींव पड़ी। इस नवीन मत ने वैदिक मत को बिना निंद्य ठहराए ही उसके कुछ सिद्धांत मान लिए, तथा नवीन विचारों के अनुसार नए सिद्धांत उनमें परम प्रचुरता से जोड़ दिए। सीदियन (तुरुक-शक) हूण, यवन, प्रमार, गुर्जर आदि-आदि अनेकानेक जातियाँ पौरा-

णिक काल में आ-आकर समाज में मिलती गईं तथा प्राचीन अनार्यों का भी उसमें स्थान ठीक हो गया। ये सब नई-पुरानी जातियाँ मिलकर एक पूरी हिंदू-जाति बनी।

इन लोगों में धार्मिक विचारों पर युद्ध तो हुए नहीं, किंतु इनके तथा बौद्धों एवं जैनों के अंत में हिंदू हो जाने के कारण तर्क बहुतायत से चलता रहा। फल यह हुआ कि वैदिक मत विकसित होकर पौराणिक हो गया। पहले रुद्र (शिव) की महत्ता रही, फिर विष्णु की और तब त्रिदेव की। विष्णु के साथ अवतारों का भी मान बढ़ा, तथा तीर्थों, नदियों, तालाबों, मूर्तियों आदि की मान-वृद्धि होकर पूरा पौराणिक मत संगठित हुआ। इस संगठन में केवल ब्राह्मणों का हाथ न था, वरन् सभी नई-पुरानी जातियों तथा सिद्धांतों के लोक द्वारा गृहीत अंश सम्मिलित थे। गोस्वामीजी ने कहा ही है कि 'ध्यान प्रथम युग, मख युग दूजे, द्वापर परितोषत हरि पूजे।' और कलि के लिये उन्होंने नाम की प्रधानता कही है। हिंदू-मत के अंतिम संगठन में व्यासों, शंकर तथा रामानुज की प्रधानता है। बहुतेरे महाशय एक ही व्यास मानते हैं, किंतु स्वयं विष्णुपुराण में कई व्यास कहे गए हैं, तथा पुराणों के प्रचंड पार्थक्य से ऐसा समझ भी पड़ता है। पुराणों का अंतिम रूप गुप्त काल में स्थिर हुआ, किंतु उनके कुछ थोड़े-से भाग इससे भी पीछे जुड़े हैं।

हिंदी की उत्पत्ति जानने के लिये इसके पूर्ववाली भाषाओं का भी कुछ वर्णन आवश्यक है। आदिम आर्य लोग तिब्बत, उत्तरी ध्रुव, दक्षिणी रूस, मध्य-एशिया में से चाहे जहाँ से आए हों, पर पहलेपहल वे खोकंद और बदख्शाँ में पहुँचे। वहाँ से कुछ लोग फारस की ओर जमे, और शेष आर्यावर्त को चले आए। फारसवाले आर्यों की भाषा के परजिक और मीडिक-नामक दो भेद हुए। परजिक-भाषा बढ़ते-बढ़ते पहलवी होकर समय पर फ़ारसी हो गई। मीडिक-भाषा मीडिया अर्थात् पश्चिमी फारस में बोली जाती थी। पारसियों का प्रसिद्ध धर्म-ग्रंथ 'अवस्ता' इसी भाषा में लिखा है। पार्जिटर महाशय का मत है कि आर्य उत्तर-पश्चिम से न आकर उत्तरी हिमाचल के मार्ग द्वारा इलावृत से आए। प्रचीन मत यह है कि खोकंद आदि से चलते-चलते सैकड़ों वर्षों में आर्य

लोग पंजाब पहुँचे। उस समय तक उनका भाषा की रूप मीडिक अर्थात् आसुरी भाषा से बदलकर पुरानी संस्कृत हो गया था। इसी में ऋग्वेद की पुरानी ऋचाएँ लिखी गईं, और इसी कारण ऋग्वेद के प्राचीनतम भागों की भाषा अवस्ता की भाषा से कुछ-कुछ मिलती है। इस प्रकार द्राविड़ भाषाओं को छोड़कर भारत की समस्त भाषाएँ इंडो-योरपियन से प्रसूत होकर उसी वर्ग की हैं। पंजाब में आने से आर्यों की पुरानी संस्कृत यहाँ के आदिम निवासियों की भाषा से, जिसे पहली प्रकृत कह सकते हैं, मिलने लगी। यह गड़बड़ देखकर आर्यों ने अपनी भाषा का संस्कार करके उसे व्याकरण द्वारा नियम-बद्ध कर दिया। इस प्रकार पहले पुरानी और फिर वर्तमान संस्कृत का जन्म हुआ। यह भाषा वेदवाली आसुरी भाषा से बहुत कुछ पृथक् है। आर्यों ने अपनी भाषा को शुद्ध एवं पृथक् रखने के लिये उसे नियम-बद्ध तो कर दिया, पर संसार का स्वाभाविक प्रवाह किसी के भी रोके नहीं रुकता। आर्यों ने पुरानी प्रकृत को संस्कृत में नहीं घुसने दिया, पर समय पाकर आर्यों और अनार्यों में संपर्क की विशेष वृद्धि से स्वयं वैदिक भाषा पुरानी प्राकृत में घुसने लगी, और इस प्रकार पुरानी प्राकृत बढ़ते-बढ़ते मध्यवर्तिनी प्राकृत हो गई। आदिम पाली, मूल-पाली, पहली प्राकृत आदि क्या हैं, इसमें पंडितों का कुछ मतभेद है विधुशेखर शास्त्री का कथन है—"आर्यगण की वेद-भाषा और अनार्यगण की साधारण भाषा में एक प्रकार का सम्मिश्रण होने से बहुत-से अनार्य शब्द वर्तमान कथ्य वेद-भाषा के साथ मिश्रित हो गए। इस सम्मिश्रण-जात भाषा का नाम ही प्राकृत है।"

(पालि-प्रकाश-प्रवेश)

प्राकृत-भाषा वैदिक से निकट है, संस्कृत से नहीं। दूसरा सिद्धांत मागधी की आदि कल्पोन्नत मूल भाषा, आदि भाषा या स्वाभाविक भाषा मानता है। जिंद और वैदिक संस्कृत का इतना अंतर नहीं है, जितना वैदिक भाषा का संस्कृत से है। पालिप्रकाशकार का कथन है कि पाली-भाषा का ही दूसरा नाम मागधी है। कथ्य वेद- भाषा के साथ अनार्य भाषा के मिश्रण को वे मूल-प्राकृत कहते हैं। प्राकृत-लक्षणकार चंड ने आर्ष प्राकृत को, वररुचि ने महाराष्ट्री को, पयोगसिद्धिकार कात्यायन ने मागधी का और जैनों

ने अर्ध-मागधी को 'मूल-प्राकृत या आदि प्राकृत माना है। मिस्टर वर्न डफ कहते हैं कि गाथा विशुद्ध संस्कृत और पालि की मध्यवर्ती है। पालिप्रकाशकार का मत है कि गाथा की रचनाएँ अपभ्रंश काल के लगभग हुई हैं। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी प्राचीन प्रमाणों पर विचार किया है। आपका मत है कि वैदिक भाषा की प्रकृति मागधी अथवा पाली से मिलती है। आर्ष अथवा मूल-प्राकृत का अन्यतम रूप आप पाली को मानते हैं। आर्ष प्राकृत में उल्लेख्य योग्य कोई साहित्य नहीं। यदि इसी को गाथा मान लें, तो कुछ साहित्य मिलता ही है। प्राकृत-भाषा का पहला व्याकरण पाली में कात्यायनकृत है, तथा संस्कृत के आदर्श पर चलता है। पाली अधिकतर संस्कृतानुवर्तिनी है। इसी को बौद्ध मागधी भी कहते हैं। अशोक के शिलालेख इसी में हैं। मागधी बौद्ध-मागधी तथा प्राकृत-मागधी के रूपों में है। अंतिम का मूल शौरसेनी है, तथा महाराष्ट्री के शब्द भी उसमें पाए जाते हैं। इसी को अर्द्ध-मागधी भी कह देते हैं। डॉक्टर सुनीति-कुमार चटर्जी का मत है कि पाली मथुरा-प्रांत की भाषा है, जो शौरसेनी का पूर्व रूप थी। इसी को सिंहलवालों ने भूल से मागधी कहा। इसी में बुद्धदेव के उपदेश थे। उपाध्यायजी पाली को पहली तथा मागधी को दूसरी प्राकृत मानते हैं। अर्ध मागधी दूसरी प्राकृत थी, जो काशी में चलती थी। जैनों के ग्रंथ इसी में हैं। पाली में बौद्धों के अधिकतर धर्म-ग्रंथ लिखे गए। संस्कृत कठिन होने के कारण सर्व-साधारण की भाषा न रही, और स्वयं आर्य भी प्राकृत बोलने लगे। इस प्रकार संस्कृत केवल पुस्तकों की भाषा रह गई और सर्व-साधारण में उसका व्यवहार न रहा। अतः बोलचाल की भाषाओं में उसकी गणना उठ गई। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-ही-वैसे दूसरी प्राकृतों का भी विकास होता गया, और समय पाकर मागधी, शौरसेनी महाराष्ट्री आदि उसके कई विभाग हो गए। महाराष्ट्री से भारतीय राष्ट्र का प्रयोजन था अथच दक्षिणीय प्रांत का भी। यह भाषा गाने में अच्छी थी। इन्हीं अंतिम भाषाओं को अब प्राकृत कहते हैं। प्राकृत के इन रूपों के भी विकास समय के साथ होते गए। ब्रजभाषा पश्चिमी विभागोंवाली शौरसेनी प्राकृत

की संस्कृत से प्रभावित रूपातर है, और पूर्वी-भाषा मागधी की। अवधी-भाषा शौरसेनी और मागधी के मिश्रण से बनी है ।

प्राकृत के मुख्य भेद चार थे—अर्थात् महाराष्ट्री, मागधी, अर्द्ध-मागधी और शौरसेनी। इनमें शौरसेनी अंतरगा कहलाती थी, मागधी और महाराष्ट्री बहिरंगा तथा अर्द्ध-मागधी मध्यवर्तिनी। मागधी और अर्द्धमागधी को क्रम से पूर्वी प्राच्या तथा पश्चिमी-प्राच्या भी कहते थे। इन सबमें महाराष्ट्री की मुख्यता थी। व्याकरण इसी का सुपुष्ट था, और साहित्य भी इसमें अधिक बना। मागधी महाराष्ट्री से मिलती थी, तथा शौरसेनी संस्कृत से। उस काल ब्रज-मंडल को मध्य-देश कहते थे। वहीं साहित्यिक सस्कृत का विशेष उदय हुआ। अर्द्ध-मागधी की अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढी शाखाएँ हैं। अब भी यहाँ की बोलियाँ बहुत कुछ मिलती हैं। वररुचि ने प्राकृत के महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी तथा शौरसेनी-नामक भेद कहे हैं, तथा विक्रमीय बारहवीं शताब्दी के अपभ्रंश-प्राकृत-व्याकरणकार हेमचंद्र ने इन भेदों के नाम अर्द्ध-मागधी, चूलिका पैशाची तथा अपभ्रंश भी बतलाए हैं। चूलिका, पैशाची भूतभाषा भी कहलाती थी। विक्रमीय दशवीं शताब्दी के राज-शेखर देशानुसार भाषाओं के कथन में बंगाल को सस्कृत में स्थित मानते है, तथा मध्यदेश को सर्व-भाषाओं में स्थित कहते है। प्राचीन भाषाओं का कथन बाबू श्यामसुदरदास ने हिंदी-भाषा और साहित्य में कुछ विशेष किया है, तथा पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी। प्राकृत-लक्षणकार चद चार प्राकृत मानते है, अर्थात् प्राकृत, अपभ्रश, पैशाचिकी और मागधी। प्राकृत लक्षण के टीकाकार षट् भाषा मानते हुए चार में सस्कृत और शौरसेनी भी जोड़ते है। अपभ्रंश में साहित्य अधिकता से है। यही भाषा बढ़-कर समय पर हिंदी हो गई। हिंदी को पडितों ने पूर्वी, माध्यमिक और पश्चिमी नामक तीन प्रधान भागों में विभाजित किया है। इनका कुछ-कुछ सपर्क गुजराती आदि भाषाओं से भी है। हिंदी के मुख्य उपविभागों में मैथिली, मगही, भुजपुरी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, उर्दू, राजपूतानी, ब्रज-भाषा, कन्नौजी, बुदेली बाँगरू, दक्षिणी, खड़ी बोली आदि भाषाएं है।

इन उपर्युक्त विकासों में एकाएकी कोई भी नहीं हुआ, वरन् प्रत्येक विकास

शताब्दियों में धीरे-धीरे होता रहा। एक देश की भाषा ग्राम-ग्राम प्रति बदलती हुई अधिक दूर चलकर बिलकुल दूसरी भाषा में परिवर्तित हो जाती है, परंतु किन्हीं मिले हुए ग्रामों में भारी हेर फेर नहीं जान पड़ता। अवधी-भाषा बंगाली से नितांत पृथक् है, पर यह पार्थक्य धीरे-धीरे ग्राम-ग्राम प्रति बढ़ते-बढ़ते हुआ है, और यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक स्थान में अवधी-भाषा समाप्त होती है, और मैथिल का प्रारंभ होता है, अथवा मैथिल भाषा समाप्त होकर बंगाली चलती है। ठीक यही दशा समयानुसार भाषाओं के हेर-फेर की है। अतः ठीक ठीक यह नहीं कहा जा सकता कि हिंदी का उत्पत्ति-काल क्या है? सातवीं शताब्दी में बाण के समय तक इसका अस्तित्व मिलता है।

महर्षि पतंजलि संवत् पूर्व दूसरी शताब्दी में थे। व्याकरण के प्रसिद्ध मुनित्रय में तीसरे आप ही हैं। आपके समय में एक-ही एक शब्द के जो अनेक रूप थे, उनका निरादर करके आप उन्हें अपभ्रंश, अपशब्द, म्लेच्छ शब्द आदि कहते थे, तो भी बिगड़े हुए रूप चलते ही रहे। यहाँ तक कि समय पर लोगों में अपभ्रंश भाषा ही चलने लगी, क्योंकि लोग मातृभाषा चाहते थे, पंडित-भाषा नहीं। पंडितों ने अनंतप्राय नियम बनाकर भाषा को अलंकृत अवश्य किया था, और थोड़े शब्दों द्वारा बड़े भाव व्यक्त करने की पात्रता उसमें थी, तो भी उसके सीखने को जितना परिश्रम आवश्यक था, वह समाज का ध्यान इतर लाभकारी विषयों से खींचकर मानों समय नष्ट करता था। देश में विद्या का प्रचार भी इतना न था कि ऐसे अनंतप्राय नियम सर्व-साधारण को ज्ञात हो जाते। अतएव जिन शब्दों का महर्षि पतंजलि ने अपभ्रंश कहकर अपमान किया, उन्हीं को पकड़कर देश ने नई भाषा ही बना डाली, जिसे पंडित लोग अपभ्रंश कहने लगे, जैसा ऊपर आया है। हिंदी इसी अपभ्रंश का वर्तमान रूप है। यह अपभ्रंश भाषा कब चली, सो कौन कह सकता है, किंतु छठी शताब्दी में यह साहित्यिक भाषा थी। कालिदास-कृत विक्रमोर्वशी में एकाध स्थान पर इसकी छाया है। अब संवत् ८०० से १२०० तक के कई कवियों के उदाहरण प्राप्त हैं। वे विकसित अपभ्रंश या आदिम हिंदी के उदाहरण हैं, क्योंकि विकसित अपभ्रंश ही आदिम हिंदी है। बारहवीं शताब्दी में हेमचन्द्र

ने अपभ्रंश का व्याकरण रचा, जिसमें कई हिंदी-दोहे उदाहरणों में दिए हुए हैं। उपर्युक्त कारणों से हिंदी का प्रचार सं० ७०० से पूर्व माना जा सकता है, क्योंकि सं० ८०० से कवियों की रचनाओं के उदाहरण ही प्राप्त हैं। कोई भाषा लोक में सैकड़ों वर्ष चलकर ही साहित्यिक होती है। भारतीय इतिहास पर हिंदी के प्रभाववाले ग्रंथ में भी इस विषय पर हमने प्रकाश डाला है। अपभ्रंश का आदिम रूप प्राकृत से मिलता था, और अंतिम हिंदी से। जैसा ऊपर कहा गया है, सम्राट् हर्ष के राजकवि बाणभट्ट (सातवीं शताब्दी संवत्) की रचना में पाया गया है कि देश में प्राकृत के अतिरिक्त भाषा भी चलती थी। समझा गया है कि भाषा शब्द से बाण का हिंदी से प्रयोजन होगा। यही पुराने-से-पुराना हिंदी का समय अब तक पाया गया है। सं० ८०० के एक हिंदी-कवि की रचना का उदाहरण भी प्राप्त है। साहित्य में प्रयुक्त होने के पूर्व कोई भाषा देश में सौ-दो सौ वर्ष चल ही लेती है। इस विचार से भी हिंदी का उत्पत्ति-काल सातवीं शताब्दी में जाता है। हिंदी के कई अन्य ऐतिहासिक लेखक हम लोगों के इस प्राचीनता-पूर्ण कथन से मतभेद दिखलाकर हिंदी-साहित्य का उत्पत्ति काल दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी मानते थे। इधर की छान-बीन ने हमारे ही मत का समर्थन किया है।

हिंदी-साहित्य का विषय उठाने के पूर्व यह उचित समझ पड़ता है कि काव्य-लक्षण का निश्चय कर लिया जाय। इस विषय में बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने साहित्य-रत्नाकर-नामक ग्रंथ रचकर बड़ा उपकार किया था। इस ग्रंथ में कई लक्षणों पर विचार किया गया है, जिनमें से एवं अन्यत्र प्राप्त प्रधान-प्रधान का हम यहाँ कथन करते हैं—

(१) तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि (काव्यप्रकाश) काव्य वह है, जिसके शब्द और अर्थ अदोष तथा गुण-संपन्न हों, चाहे उनमें कहीं-कहीं अलंकार भी न हो।

(२) अद्‌भुत वाक्यहि ते जहाँ उपजत अद्‌भुत अर्थ,
लोकोत्तर रचना रुचिर सो कहि काव्य समर्थ।
(साहित्यपरिचय)

(३) रस-युत व्यंग्य-प्रधान जहँ शब्द-अर्थ शुचि होय ,
उक्ति-युक्त भूषण-सहित काव्य कहावै सोय ।
(साहित्यपरिचय)

(४) वाक्यं रसात्मकं काव्यम् । (साहित्यदर्पण)

(५) रमणीयार्थप्रतिपादक शब्दः काव्यम् । (जगन्नाथ पंडितराज)

(६) होय वाक्य रमणीय जो काव्य कहावै सोय । (रत्नाकर)

(७) जग ते अद्भुत सुख सदन शब्दरु अर्थ कवित्त ,
यह लक्षण मैंने कियो समुझि ग्रंथ बहु चित्त ।
(कुलपति मिश्र)

(८) लोकोत्तरानन्ददाता प्रबन्धः काव्यनामभाक् ।
(अंबिकादत्त व्यास)

(९) वाक्य अरथ वा एकहू जहाँ होय रमनीय ,
शिरमौरहु शशिभाल मत काव्य तौन कथनीय ।
(हम लोग)

विचार

इन लक्षणों पर विचार करने के पूर्व पाठक को समझ रखना चाहिए कि किसी पदार्थ के लक्षण में यह आवश्यक है कि उसमें से कुछ छूट न रहे, और न कोई बहिरंग विचार उसमें आ सके। इन्हीं अवगुणों को अव्याप्ति और अति-व्याप्ति दूषण कहते हैं। लक्षण को वर्ण्य वस्तु का ठीक रूप दिखाना चाहिए, ज़रा भी बिगड़ा हुआ नहीं। अब हम प्रत्येक लक्षण को उठाकर उसके विषय में अपना मत प्रकट करेंगे।

(१) तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि ।

इस लक्षणानुसार काव्य का निर्दोष होना आवश्यक है, अर्थात् इस मत से सदोष रचना काव्य नहीं है। उधर प्रसिद्ध आचार्य कुलपति मिश्र ने कहा है कि "ऐसो कवित न जगत में जामें दूषण नाहिं।" यदि इस कथन को अत्युक्ति मान लें, तो भी प्रति सैकड़े ९५ छंदों में कोई-न-कोई दोष दिखलाया जा सकता है। अतः इस लक्षण के मानने से साहित्य-शरीर बहुत ही संकुचित हो जायगा।

काव्य-दोषों की मनुष्य-देह के काने, लँगड़ेपन आदि से समानता कर सकते हैं, वरन् साधारण दोषों को साधारण रोगों के समान समझ सकते हैं। संसार में ऐसा शरीर खोजना बहुत करके असभव है, जिसमें किसी प्रकार का कोई भी रोग न हो। अत यदि सरुज देह को देह ही न मानें, तो ससार में प्राय. कोई शरीर ही न रह जायगा। ऐसी दशा में यही कहना पड़ेगा कि ऐसा माननेवाले का मत अशुद्ध है। ससार में रोग-हीन देह प्राय अलभ्य पदार्थ है, परतु रोग के कारण शरीरों को शरीर ही न मानना नितात भ्रममूलक है। बहुत करके ठीक यही दशा सदोष रचनाओं की है।

(२) अद्भुत बाक्यहि ते जहाँ उपजत अद्भुत अर्थ,
लोकोत्तर रचना रुचिर सो कहि काव्य समर्थ।

जान पड़ता है, इस लक्षणकार ने उत्कृष्ट काव्य का कथन किया है, न कि काव्य का, क्योंकि यह कहता है कि इस लक्षण-युक्त काव्य को समर्थ काव्य कहना चाहिए। समर्थ शब्द से उत्कृष्टता की झलक आती है। काव्य-लक्षण के लिए अद्भुत वाक्य एवं अर्थ का होना आवश्यक नहीं। प्रसाद, सुकुमारता एवं अर्थव्यक्त साहित्य के परमोज्ज्वल गुण हैं। प्रसाद-गुण के लिये प्रसन्नता, सुदर शब्दार्थ तथा प्रसिद्ध शब्दों की आवश्यकता है, सुकुमारता के लिये कोमल पद, मृदु अर्थ, सरस वचन तथा ललित रचना की और अर्थव्यक्त में भारी सरलता एव सदेह-हीन अर्थ की। ये गुण गोस्वामी तुलसीदास की रचना में बहुतायत से पाए जाते है, परतु इनमें कोई अद्भुतता नहीं है। एतावता इस गुण का होना न साधारण काव्य के लिये आवश्यक है, न उत्कृष्ट काव्य के लिये।

(३) रस-युत व्यंग्य-प्रधान जहँ शब्द-अर्थ सुचि होय,
उक्ति-युक्त भूषण-सहित काव्य कहावै सोय।

इस लक्षणकार ने रस, व्यग्य एव अलकार को काव्य के लिये आवश्यक माना है, जो बात ठीक नहीं है। इसने ऐसे अनुपयोगी शब्दों का भी प्रयोग किया है, जो ठीक भ्रम-हीन अर्थों का बोध नहीं कराते। 'जहँ' शब्द से ठीक ज्ञान नहीं होता कि कहाँ ऐसा होना चाहिए? जहँ से एक वाक्य का बोध हो सकता है, एक पृष्ठ का एव एक पुस्तक का भी। अत यह नहीं कहा जा सकता

कि कितना बड़ा वर्णन यह लक्षणकार काव्य मानता है। शुचि शब्द भी शुक्ल गुण-युक्त, शुद्ध, शुद्धांत करण, निरपराधी आदि कई अर्थों का बोधक है। यदि शब्द विशेष्य के लिये इसका शुद्ध अर्थ मान लें, तो भी ठीक अर्थ समझ में नहीं आता। भाषा में सैकड़ों बिगड़े हुए शब्द अन्य भाषाओं से आए हैं। भाषाओं के विकास में शब्द सदैव रूप बदला करते हैं। तब किस रूप को शुद्ध मान सकते हैं ? यदि वर्तमान समय के प्रचलित रूपों को शुद्ध मानें, तो भी आपत्ति शात नहीं होती। कविजन श्रुति-कटु बचाने एवं अनेकानेक अन्य कारणों से सैकड़ों विकृत रूपधारी शब्दों का प्रयोग करते हैं। बिहारी की रचना में ऐसे कितने ही शब्द मिलेंगे, परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि जिन छंदों में ऐसे शब्द आए हैं, वे सब काव्य नहीं हैं। बहुत-से ऐसे अच्छे छंद हैं, जिनमें कोई रस नहीं निकलता। उन्हें काव्य न मानना अनुचित है। व्यंग्य का प्राधान्य साहित्य के लिये आवश्यक नहीं है। प्रसिद्ध कवि देवजी कहते हैं—

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन,
अधम व्यंजना रस विरस, उलटी कहत नवीन।

इससे प्रकट है कि प्राचीन मत में सव्यंग्य काव्य अधम समझा जाता था, परंतु देव-काल में भी व्यंग्य-हीन कथन काव्य अवश्य माना जाता था, क्योंकि लक्षणा-युक्त काव्य मध्यम श्रेणी का था। स्वाभाविक उत्कृष्ट साहित्य भी प्राय अभिधामूलक होता है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, अलंकार काव्य के लिये आवश्यक नहीं है। बहुतेरे उत्कृष्ट छंदों में भी अलंकार नहीं होते। सुतरां इस लक्षण का कोई भी गुण यथार्थ नहीं है।

(४) वाक्य रसात्मक काव्यम्

इसमें काव्य के लिये रस ही न केवल प्रधान, वरन् आवश्यक समझा गया है। रस काव्योत्कर्ष के लिये आवश्यक है, परंतु पंडितों का मत है कि रस-हीन रचना भी कविता कही जा सकती है। चित्र-काव्य में बहुधा रस का पूर्ण अभाव होता है। इसी प्रकार बहुत-से अलंकार-युक्त चामत्कारिक छंदों में कोई दृढ़ रस नहीं होता। क्लिष्ट कल्पना से उनमें कोई रस स्थापित करना अयुक्त है। फिर सर्वत्र इस प्रकार भी प्रत्येक अच्छी रचना तक में पूर्ण रस की कौन कहे, खंडित

रस भी नहीं स्थापित किया जा सकेगा। ऐसी दशा में रस काव्य के लिये आवश्यक नहीं कहा जा सकता, वरन् उपयोगी-मात्र है।

(५) रमणीयार्थप्रतिपादक. शब्दः काव्यम्

यह लक्षण अनावश्यक बातों को छोड़कर पहलेपहल केवल रमणीयता को काव्य के लिये आवश्यक मानता है। यही गुण वास्तव में ठीक भी है। कोई भी रचना रमणीय होने से काव्य हो जायगी, चाहे उसमें कोई अन्य खास गुण हो या न हो। रमणीय उसे कहते हैं, जो अपने में चित्त के लगाने की सामर्थ्य रखता हो। ऐसे पदार्थ से चित्त को प्रसन्नता अवश्य होगी, परंतु काव्य के लिये केवल एक मनुष्य की रमणीयता अलम् नहीं। वह ऐसा होना चाहिए, जिसमें विज्ञ पुरुषों का चित्त रममाण हो। यही गुण इस लक्षणकार ने रक्खा है, क्योंकि यह केवल रमणीयता ढूँढ़ता है, जिससे किसी खास मनुष्य ही का प्रयोजन नहीं है, वरन् विज्ञ पुरुषों का भी मतलब निकलेगा। यदि किसी मनुष्य से कहा जाय कि उसने एक लक्ष रुपए पाए, तो उसे यह वाक्य रमणीय होगा। परंतु औरों को नहीं। एतावता इसे रमणीय नहीं कह सकते। इसीलिये रमणीय का अर्थ लोकोत्तरानददायक होगा, जिसमें प्राय. सभी विज्ञ पुरुषों का आनंद उसमें आ जाय। परंतु पंडितराज का यह लक्षण परम चामत्कारिक होने पर भी कुछ अशुद्धता लिए हुए है। आपने शब्द को काव्य माना है, किंतु विना पूरा वाक्य हुए कोई शब्द नहीं हो सकता। विना पूरा वाक्य सुने किसी को पूरे भाव का बोध ही नहीं हो सकता, फिर उसमें अलौकिक आनंद कहाँ से आवेगा? दूसरा गड़बड़ यह है कि पंडितराज के मतानुसार काव्य केवल रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द से हो सकता है, अन्यथा नहीं, परंतु चित्र-काव्य में बहुत-सी ऐसी रचनाएँ हैं, जो केवल शब्द-चमत्कार से रमणीय हैं, यद्यपि उनमें कोई अर्थ-चमत्कार नहीं। इन्हें काव्य के लक्षण से नहीं छोड़ा जा सकता, यद्यपि यह मान्य है कि इनमें उत्कृष्ट काव्य का अभाव है। इन कारणों से पंडितराज का लक्षण पूर्णतया शुद्ध नहीं है।

(६) होय वाक्य रमणीय जो काव्य कहावै सोय।

वाक्य उस शब्द-समुदाय को कहते हैं, जिसमें कर्ता और क्रिया अवश्य हों,

और जो कोई पूरा भाव प्रकट करने में समर्थ हो । इसमें शब्द-समुदाय और अर्थ दोनो होते हैं परंतु भाषा के आचार्यों ने शब्द-समुदाय के गुण-दोषों को वाक्य के गुण-दोष माना है, और वाक्यार्थ के गुण-दोषों को पृथक् कहा है। यही विचार युक्ति-युक्त भी समझ पड़ता है। वाक्य-रमणीयता से सहसा शब्द-चमत्कार ही की ओर ध्यान जाता है, न कि वाक्यार्थ-रमणीयता की ओर। इसी कारण वाक्य-रमणीयता कहने से अर्थ-रमणीयता की अव्याप्ति हो जाती है।

(७) जग ते अद्भुत सदन शब्दरु अर्थ कवित्त

इस लक्षण में शब्दों का प्रयोग बहुत उपयुक्त नहीं है। पहले तो इसमें वाक्य न लिखकर कवि ने शब्द लिखा है, जो अनुचित है, क्योंकि शब्द से वाक्य का पूरा होना नहीं पाया जाता। फिर इसमें यह साफ नहीं है कि काव्य के लिये शब्द तथा अर्थ दोनो को रमणीयता आवश्यक है, अथवा एक की भी रमणीयता से वाक्य काव्य हो सकता है।

(८) लोकोत्तरानन्ददाता प्रबन्ध: काव्यनामभाक्

इस लक्षण में शब्द-रमणीयता, शब्दार्थ-रमणीयता एवं इन दोनो की रमणीयतावाला कोई भी अर्थ बहुत ठीक प्रकट नहीं होता। फिर प्रबंध शब्द के कई अर्थ हैं। प्रकर्षेण बध्यते इति प्रबन्धः। इस हिसाब से सेना का नियम से सचालन, बाजे का नियमानुसार बजना आदि सब काव्य हो जायँगे। यह लक्षण बिलकुल ठीक नहीं है।

(९) वाक्य अरथ वा एकहू जहाँ होय रमनीय।

उपर्युक्त लक्षणों पर विचार से यह स्पष्ट विदित है कि काव्य के लिये वाक्य में शब्द-रमणीयता या अर्थ-रमणीयता या शब्दार्थ-रमणीयता का होना आवश्यक है। इनमें किसी के होने से वाक्य काव्य होगा, और जितनी विशेष रमणीयता होगी, उतना ही वह उत्कृष्ट होगा। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर हमने दोहा के स्वरूप में काव्य-लक्षण सं० १९५७ में लिख दिया था। इसमें यह न सोचना चाहिए कि हम औरों के लक्षणों को अशुद्ध ठहराकर अपना शुद्ध बताते हैं। हमने औरों ही के सहारे से शुद्ध लक्षण सोचकर लिख

भर दिया है। काव्य के शुद्ध लक्षण निर्माण के पथ-प्रदर्शन का महत्त्व जगन्नाथ पंडितराज को प्राप्त है।

इन लक्षणों से प्रकट है कि काव्य गद्य और पद्य दोनो में हो सकता है। गद्य, पद्य और सगीत में छोड़कर मुख्य भेद इतना ही है कि गद्य में भावों की अपेक्षा विचारों का बाहुल्य रहता है। पद्य में ये दोनो प्राय समभाव से होते है, और संगीत में विचारों की विशेष ऊनता होती है।

दूसरा अध्याय

पूर्व प्रारंभिक हिंदी

(स० ७०० से १३४७ तक)

(१) चद पूर्व की हिंदी

(स० ७००-१२००)

हम गत अध्याय में हिंदी की उत्पत्ति सं० ७०० के पूर्व देख आए है। उस काल यह देश में प्राकृत के साथ बोली-भर जाती थी। इसके गद्य का कोई प्राचीनतम उदाहरण अभी तक नहीं मिला है। शिवसिंहसरोज में टाड के आधार पर लिखा है कि भोजराज के पूर्व-पुरुष राजा मान सं० ७७० में अवंती में अच्छे सस्कृत-वेत्ता थे। उनके यहाँ (१) पुढ अथवा पुष्य वदीजन ने दोहों में एक अलंकार-ग्रंथ बनाया। आज सिवा नाम के पुंढ की कोई रचना नहीं मिलती। आजकल २४ नाथ कवियों का विवरण तृपिटकाचार्य राहुल साकृतायन-नामक लेखक महाशय ने, १९८९ की गंगा पत्रिका में, निकाला है, जिसके आधार पर उनके कथन यहाँ किए जाते हैं। इनमें से बहुतेरे आठवीं, नवीं, दसवीं आदि परम प्राचीन शताब्दियों के हिंदी-कवि कहे गए हैं। उनके ग्रंथ बहुधा वजौर में कहे जाते है। कवियों की प्राचीनता बहुत महत्ता-युक्त है, और दृढ आधारों पर अवलवित जान पड़ती है।

सांकृतायन महाशय की खोजें कितनी महत्ता-पूर्ण हैं, सो प्रकट ही है। इन महाशय को हमने पत्र लिखा था। उसके उत्तर में जो पत्र उन्होंने हमें लिखा है, उसकी नकल नीचे दी जाती है, जिससे समय जानने में बहुत सहायता मिलेगी।

राहुल सांकृतायन का पत्र

लूहिपा महाराज धर्मपाल (७६९-८०९) के कायस्थ थे, यह सस्क्य कंबुं की पोथी ज (अर्थात् सप्तम) के पृष्ठ २४३ क में साफ़ लिखा है। । वहीं यह भी लिखा है कि शवरपा घूमते हुए वारेंद्र में महाराज धर्मपाल के महल में भिक्षा के लिये गए थे, वहीं मुलाकात हुई। यह सस्क्य क्वंबुं तिब्बत में सस्क्य मठ के पाँच अधिपतियों (1091-1279 A D.) की ग्रंथावली है। यही चीं मगोल जातीय चीन-सम्राटों के गुरु हुए। च, छ, ज नंबर की पोथियाँ तीसरे महाराज कीर्तिध्वज (जन्म ११७१, मृत्यु १२१५) की कृतियाँ हैं। इन्हीं लोगों ने अधिकांश सिद्धों की वाणियों का अनुवाद कराया था।

उक्त ग्रंथ और रिन्—पो—छेइ—ग्युड्ह्—खुड्स—ल्त—वइ गतम् पृष्ठ ६६, तथा चतुराशीतिसिद्धप्रवृत्ति, स्तन्—ग्युर ८६।१ (स्नर—यड् छापे) के पृष्ठ ३६ में भी, दारिकपा और डेंगिपा का (जो पहले ओडीसा के राजा और मंत्री थे) लूहिपा का शिष्य होना वर्णित है।

महाराज देवपाल (८०९-४९ ई०) के समय में इन सिद्ध कवियों के होने का उल्लेख है—

त्रिरूप (३)	चतुराशीतिसिद्धप्रवत्ति—स्तन-गुर-८६।१	P.	४०
गोरक्ष (१९)	” ”	१० ख	४९
कण्हपा (१७) गुरु जालंधरपा	,,	२० ख	तक
भूसुक (४१)	” ”	३६ ख	
घटापा (७२)	” ”	४३ ख	

लूहिपा और शवरपा का समकालीन होना तथा उनका धर्मपाल के समय होना असंदिग्ध है। इसके लिये भोट-भाषा के कितने ही ग्रंथों से प्रमाण दिया

जा सकता है। पर मैंने सस्क्य वर्य वुस से प्रमाण उद्धृत किया है, जो बहुत ही प्रामाणिक ग्रथ-सग्रह है।

यदि उपयोगी समझें, तो वश-वृक्ष को छाप देंगे, किंतु प्रूफ में बहुत ही सावधानी रखनी होगी ‡।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर दिनेशचद्र सेन ने 'वग-साहित्य-परिचय' ग्रथ लिखा है, जो करीब १९१४ ई० को छपा है। उसमें गोपीचंद भरथरी पर लिखी पुरानी गीतों का सग्रह भी है। प्रोफेसर महाशय ने पृष्ठ २८ पर लिखा है—"लक्ष्मणदास-कृत हिंदी गाने वगीय रानार गुरु जलधर योगी, ताहार (राजा की) माता मैनावती, तदीय (राजमाता के) गुरु गोरखनाथ प्रभृति वगीय गीतोल्लिखित चरित्रवर्गेर प्राय समस्तेर उल्लेख आछे।"

गीत में से—पृष्ठ ४१—

हरि-गुण-गान मयना गाइवार लागिल।
उत्तर दक्षिणे चिता आरोपिल। .....
साक्षात् गोरखनाथ आसिया खड़ा रहल।

पृष्ठ ८५ में—

सूर चद्र बोलि करि वंगदेशे राय। ताराचद्र नामे हेला ताहार तनय।
इहार नंदन शुन ब्रह्मा चद्रराय। गोपीचद्र नामे हेलाई हारो कुमारो।
विष्णुचद्र नामे पुत्र इहला ताहारो। विष्णुचंद नंदन इहला रूपचद।
ततहु उत्पत्ति होए गोविंद-ए-चद्र।

पृष्ठ १०२ में—

योगसिध्या हाडिपा कालूपा गोर्ख मीन, सत सिद्धा अवतार गुरुवास हीन।
पाटिका नगर राजा गोविंदचंद्र भूप। जलदरी हाडिपा हइल हाडि रूप।

हाडीपा जलंधरपा ही हैं। कालूपा ४ कण्हपा (१७) है।

आपका

सांकृत्य-सगोत्र राहुल

नाम—(२) सरहपा (सिद्ध न० ६)।

‡ यह वश-वृक्ष कहीं गायब हो गया और वड़ा भी था सो हमने इसे नहीं छापा।

समय—८०० के लगभग।

ग्रंथ—(१) क-ख दोहा, (२) क-ख दोहा टिप्पण, (३) कायकोष-अमृतवज्रगीति, (४) चित्तकोष-अजवज्रगीति, (५) डाकिनीवज्र-गुह्य गीति, (६) दोहा-कोष-उपदेश-गीति, (७) दोहा-कोष-गीति, (८) दोहा-कोष-गीति, तत्त्वोपदेश-शिखर, (९) दोहा-कोष-गीतिका, भावना-दृष्टि-चर्याफल, (१०) दोहा-कोष, वसंत-तिलक, (११) दोहा कोष-चर्यागीति, (१२) दोहा कोष-महामुद्रो-पदेश, (१३) द्वादशोपदेश-गाथा, (१४) महामुद्रोपदेश वज-गुह्य गीति, (१५) वाक्-कोष-रुचिरस्वरवज्-गीति, (१६) सरह-गीतिका।

तंजूर के तंत्रखंड से पता चलता है कि इनके उपर्युक्त काव्य-ग्रंथ मगही से भोटिया में अनुवादित हुए।

विवरण—इनके दूसरे नाम राहुलभद्र और सरोजभद्र भी हैं। राज्ञी नगर के रहनेवाले ब्राह्मण थे। भिक्षु होकर नालंद-विद्यालय में रहने लगे। सबरपाद इनके प्रधान शिष्य थे। कोई तान्त्रिक नागार्जुन भी इनके शिष्य थे। बंगाल-नरेश धर्मपाल का समय सं० ८२६ से ८६६ तक था। उनके लेखक लूहिपा शबरपा के शिष्य थे, जिन शबरपा के गुरु हमारे कवि सरहपा थे।

उदाहरण—

जहँ मन, पवन न सचरइ, रवि-शशि नाह प्रवेश।
तहि वट चित्त विस्राम करु, सरहे कहिअ उवेश।
पडिअ सअल सत्थ वृक्खाणइ, देहहि बुद्ध वसत न जाणइ।
अमणागमण णतेन विखंडिअ, तोवि णिलज्ज भनइ हँउ पडिअ।
जो भवु सो निवा (व्वा ?) ण खलु, भवु न मण्णहु पण्ण,
एकसभावे निरहिअ निर्मलमइ पडिवण्ण।
घोरें धोरें चदमणि जिमि उज्जोअ करेइ,
परममहासुह एखुकणे, दुरिआ अशेष हरेइ।
जीवंतह जो नउ जरइ, सो अजरामर होइ,
गुरु उपएसें विमलमइ, सो पर धण्णा कोइ।

इनके कुछ गीति पद्य—

राग देशाख

नाद न विंदु न रवि शशि-मंडल, चिअराअ सहावे मूकल। ध्रु०
उजु रे उजु, छाड़ि मा लेहुरे बंक, निअहि बोहिमा जाहुरे लंक। ध्रु०
हाथेर काङ्कण मा लोउ दापण, अपणे अपा बुझतु निअ-मण। ध्रु०
पार-उआरें सोइ गजिइ, दुज्जण सांगे अवसरि जाइ। ध्रु०
वाम दाहिण जो खाल विखला, सरह भणइ बप उजुवाट भाइला ध्रु०

राग भैरवी

काअ णावडि खंटिमण केडुआल, सद्गुरु वअणे धर पतवाल। ध्रु०
चीअ थिर करि धहुरे नाही, अन उपाए पारण जाइ। ध्रु०
नौवाही (नौवाआ) नौका टागुअ गुणे, मेलि मेल सहजे जाउण आणें। ध्रु०
वाट अभअ खाण्टवि वलआ, भव-उलोलें सअवि बोलिआ। ध्रु०
कूल लइ खरे सोंते उजाअ, सरह भणइ ग (अ) णें पसाएँ। ध्रु०

म० म० प० हरप्रसाद शास्त्री ने सरह-नामक एक हिंदी कवि दशवीं शताब्दी ईसवी के निकट बौद्धों की योगमार्गी सहजिया-संप्रदाय में माना है। उनका उदाहरण यों है—

जहि मन-पवन न सचरइ, रवि-ससि नाहिं पवेस।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहें कहिय उवेस।

भाषा तथा समय-पार्थक्य से ये अन्य सरह कवि जान पड़ते हैं।

नाम—(३) शबरपा (मिश्र ५)।

समय—सं० ८२५ के लगभग।

ग्रंथ—(१) चित्तगुह्यगंभीरार्थगीति, (२) महामुद्रावज्र-गीति, (३) शून्यता दृष्टि, (४) षडंग योग, (५) सहजशंबर-स्वधिष्ठान, (६) सहजो-पदेश स्वाधिष्ठान।

विवरण—ये उपर्युक्त सरहपाद के शिष्य तथा गौड़ेश्वर महाराज धर्मपाल के लेखक लूइपा के गुरु थे। संभव है, उपर्युक्त ग्रंथों में कुछ संस्कृत या पाली के भी हों। धर्मपाल का समय सं० ८२६ से ८६६ तक है। एक शबरपा ई०

दसवीं शताब्दी में भी हुए हैं। वह मैत्रीपा या अवधूतीपा के गुरु थे। उनकी भी पुस्तकें, संभव है' शवरपा की पुस्तकों में शामिल हों। ये ग्रंथ तंजूर के तंत्रखंड में हैं।

उदाहरण—

ऊँचा-ऊँचा पावत तहिँ वसइ सबरीवाली,
मोरंगि पीच्छ परहिण सवरी गिवत गंजरी।
उमत सवरो पागल शवरो माकर गुली गुहाड,
तोहोरि णिश्र घरिणी णामे सहज सुंदरी।
णाणा तरुवर मोलिल रे गश्रणत लागेली डाली,
एकेली सवरी ए वण हिंडइकर्ण कुंडल वज्रधारी।
तिश्र घाउ खाट पडिला सवरो महा सेज छाइली,
सवरो भुजंग णइरामणि दारी पेह्मराति पाहाइली। ध्रु०
हिय ताँबोला महासुहे कापूर खाइ,
सून निरामणि कंठेल श्रा महासुहे राति पोहाइ। ध्रु०
गुरुवाक् पुंज श्रा विंध णिश्र मण बाणे,
एके शर-सधाने विंधह-विंधह परम णिवाणे। ध्रु०
उमत सवरो गेरुश्रा रोपे, गिरवर-सिहर सधि पस्सते सवरो लोड़िव कइले।

राग रामक्री

गश्रणत गश्रणत तइला वाड़ही हेंचे कुराडी,
कठे नैरामणि वालि जागंते उपाडी। ध्रु०
छाड छाड़ माश्रा मोहा विष में दुंदोली,
महासुहे विलसति शवरो लइश्रा सुणमे हेली। ध्रु०
हेरिए मेरि तइला वाडी. खसमे समतुला,
षुकडए सरे कपास फटिला। ध्रु०
तइला, वाडिर पासेर जोहणा।वाड़ी ताएला,
फिटेलि श्रधारी रे श्राकाश फुलिश्रा। ध्रु०
कुंगुरि ना पाकेला रे शवरा शवरिक मातेला,

अणुदिण शबरो किंपिन चेवइ महासुहेँ भेला । ध्रु०
चारिवासे भाइलारेँ दिश्रौँ चचाली,
तहि तोलि शबरो डकएला कांदश सगुण शिश्राली । ध्रु०
मारिल भव-मत्तारे दह-दिहे दिध लिवली,
हे रसे सबरो निरेवण भइला फिटिलि षबराली । ध्रु०

नाम—(४) आर्यदेव या कर्णरीपा (सिद्ध १८)।

समय—स० ८४० के लगभग ।

ग्रथ—निर्विकल्प-प्रकरण । इनके कुल २६ ग्रथ हैं, जो तंजूर में प्रस्तुत हैं, जिनमें हिंदी का केवल यही ग्रथ है ।

विवरण—यह महाशय सरहपाद के शिष्य वज्रयानी सिद्धनागार्जुन के चेले थे । भिक्षु होकर यह नालद बिहार में रहे ।

उदाहरण —

राग पटमंजरी

जहि मण इंदिश्र (प) वण हो णठा,
ण जाणमि अपा कँहि गइ पइठा । ध्रु०
अकट करुणा डमरुलि बाजअ, आजदेव णिरासे राजइ । ध्रु०
चांदरे चांदकांति जिम पतिभासअ, चिअ विकरणे तहि टलि पइसइ । ध्रु०
छाड़िअ भय घिण लो आचार, चाहंते चाहंते शुण विआर ।
आज देवँ सअल विहरिउ, भय घिण दुर णिवारिउ । ध्रु०

नाम—(५) लूहिपाद (सिद्ध १७) ।

समय—स० ८४५ के लगभग ।

ग्रथ—(१) अभिसमय-विभग, (२) तत्त्व स्वभाव दोहा-कोष, (३) बुद्धोदय, (४) भगवद्भिसमय, (५) लूहिपादगीतिका । ये ग्रथ तंजूर-तंत्रखंड में हैं ।

विवरण—यह महाराज धर्मपाल के समय (८२६-८६६ स०) में लेखक थे । शवरपाद के शिष्य हुए । ८४ सिद्धों में इनका नाम प्रथम गिना जाता है । इनके शिष्यों में सिद्ध दारिकपा और डेंगीपा कहे जाते हैं ।

उदाहरण—

राग पटमंजरी १

काआ तरुवर पंच विडाल, चंचल चीए पइठो काल।
दिट करिअ महासुह परिमाण, लुइ भणइ गुरु पूच्छिअ जाण। ध्रु०
सअल स (मा) हिअ काहि करिअइ, सुख दुखेतें निचित मरिआइ। ध्रु०
एड़िएउ छांदक बांध करणक पाटेर आस, सुनु पाख भिति लाहुरे पास। ध्रु०
भणइ लुइ आम्हे साणे दिठा, धमण चमण वेणि पांडि बइण। ध्रु०

राग पटमंजरी २९

भाव न होइ अभाव ण जाइ, आइस सबोहें को पतिआइ। ध्रु०
लूइ भणइ बट दुलक्ख विणाणा, तिअ धाए विलसइ उह लागे ण। ध्रु०
जाहेर वान-चिह्न-रुव ण जाणी, सो कइसे आगम वेएँ वखाणी। ध्रु०
काहेरे किष भणिमइ दिवि पिरिच्छा, उदक चाँद जिमि साचन मिच्छा। ध्रु०
लुइ भणइ भाइव कीस्, जालइ अच्छमता हेर उह ण दिस्। ध्रु०

नाम—(६) वीणापा (सिद्ध) समय—८५० के लगभग।
ग्रंथ—वज्रडाकिनी निष्पन्नक्रम।

विवरण—गौड़ देश के क्षत्रिय-वंश में इनका जन्म हुआ। इनके गुरु का नाम भद्रपा (सिद्ध २४) था। पीछे से आप कण्हपा के शिष्य हुए। कण्हपा के सहारे इनका समय ज्ञात हुआ है।

उदाहरण—

राग पटमंजरी १७

सुज लाउ ससि लागेलि तांती, अणहा दांडी वाकि कि अत अवधूती। ध्रु०
वाजइ अलो सहि हरु अवीणा, सुन तांति धनि विलसइ रुणा। ध्रु०
आलिकालि वेणि सारि सुणेआ, गअवर समरस सांधि गुणिआ। ध्रु०
जवे करह करहक लेपि चिउ, वतिश तांति धनि स एल विआपिउ। ध्रु०
नाचंति वाजिल गांति देवी, बुद्ध नाटक विसमा होइ। ध्रु०

नाम—(७) कुक्कुरिपा (सिद्ध ३४)।

समय—सं० ८६० के लगभग।

ग्रंथ—(१) तत्त्व-सुख-भावनानुसारियोगभावनोपदेश, (२) स्रव-परिच्छेदन।

विवरण—कपिलवस्तु के ब्राह्मण थे। ये चरपटीपा के शिष्य थे, और मनिपा इनके गुरुभाई थे। इनके उपर्युक्त दो ग्रंथ हिंदी में हैं। वे तंजूर के पुस्तकालय में प्रस्तुत कहे जाते हैं।

उदाहरण—

राग गवड़ा २

दुलिदुहिपिटा धरण न जाइ, रुखरे तेंतलि कुंभीरे खाअ।

आँगन धरपण सुन भो बिआती, कानेट चौरि निल अधराती। ध्रु०

सुसुरा निद गेल बहुडी जागअ, कानेट चोरे निलका गई मागअ। ध्रु०

दिवसइ बहुड़ी काढ़इ डरे भाअ, राति भइले कामरु जाअ। ध्रु०

अइसन चर्या कुक्कुरी-पाएँ गाइड, कोड़ि मझें एकुड़ि अहिं समाइड़। ध्रु०

राग पटमंजरी २०

निम्न-लिखित पद गायकवाड़-ओरियंटल सीरीज़, बड़ौदा, की पुस्तक साधनमाला से लिया गया है—

हाँउ निवासी खमण भतारे, मोहोर विगोआ कहण न जाइ। ध्रु०

फेटलिउ गो माए अंत उड़ि चाहि, जा एथु बाहाम सो एथु नाहि। ध्रु०

पहिल बिआण मोर वासन पूड़, नाड़ि विआरंते सेव वापूड़ा। ध्रु०

जाण जौवण मोर भइलेसि पूरा, मूल नखलि बाप संघारा। ध्रु०

भाणथि कुक्कुरीपाए भव थिरा, जो एथु बूझएँ सो एथु वीरा। ध्रु०

हले सहि बिअ सिअ कमल पवीहिड वज्जें,

अलललल हो महासुहेण आरोहिउ नृत्ये।

रवि किरणेण पफुल्लिअ कमलु महासुहेण,

(अल०) आरोहिउ नृत्यें।

नाम—(८) गडारपाद (सिद्ध ५५)।

समय—८६० के लगभग।

विवरण—यह कर्मकार-कुल में पैदा हुए। सिद्ध लीलापा (२) के शिष्य थे। इनके शिष्य धर्मपाद थे, जिनके शिष्य हालिपाद (५०) कहे जाते हैं। तंजूर में इनका कोई ग्रंथ नहीं मिला है। चर्यागीति में इनकी निम्न-लिखित गीति मिलती है—

तअड्डा चापि जोइनि दे अंकवाली, कमल कुलिश घाँट करहुँ विआली। ध्रु०
जोइनि तइ बिनु खनहिं न जीवमि, तो मुह चुंबी कमल-रस पीवमि। ध्रु०
खेंपहु जोइन लेप न जाय, मणि कुले कहिआ ओड़ि आणे समाअ। ध्रु०
सासु घरें वालि कोंचा ताल, चाँद-सुज वेणी पखा फाल। ध्रु०
भणइ गुडरी अम्हे कुंदुरे वीरा, नर अनारी मझे उभिल चीरा। ध्रु०

नाम—(९) विरूपा (सिद्ध ३)।

समय—८६० के लगभग।

ग्रंथ—(१) अमृत-सिद्ध, (२) दोहा-कोष, (३) दोहा-कोष-गीति कर्मचडालिका, (४) मार्गफलान्वितावादक, (५) विरूपगीतिका, (६) विरूवअगीतिका, (७) विरूपपदचतुरशीति, (८) सुनिष्प्रपचतत्वोपदेश।

विवरण—पूर्व देश में इनका जन्म हुआ। नालंद-विहार में शिक्षा पाई। सिद्ध नागबोधि के शिष्य थे। इनके ग्रंथ तंजूर में सुरक्षित हैं।

उदाहरण—

राग गवड़ा ३

एक से शुंडिनि दुइ घरे सांधअ, चीअण वाकलअ वरुणी बांधअ। ध्रु०
सहजें थिर करी वारुणी साधे, जे अजरामर होइ दिट कांधे। ध्रु०
दशमि दुआरत चिह्न देखइआ, आइल गराहक अपणे वहिआ। ध्रु०
चउशठि घडिए देट पसारा, पइठेल गराहक नाहिं निसारा। ध्रु०
एक स डुली सरुइ नाल, भणति विरुआ थिर करि चाल। ध्रु०

नाम—(१०) दारिकपा (सिद्ध ७७)। समय—८६५ के लगभग।

ग्रंथ—(१) ओड्डियान-विनिर्गत महागुह्यतत्त्वोपदेश, (२) तथता दृष्टि, (३) सप्तम सिद्धांत।

विवरण—यह उड़ीसा के राजा थे। सिद्ध लूहिपाद के शिष्य होकर राज्य छोड़ तपस्वी हो गए। इनके शिष्य वज्रघटापाद या घंटापा (५२) थे।

उदाहरण—

राग बराडा ३४

सुन करुणारि अभिन वारें का अ-वाक्-चिअ,
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलें। ध्रु०
अलक्ख-लख-चित्ता महासुहे, विलसइ दारिक। ध्रु०
किंतो मंते किंतो वते किंतो रे झाण बखाने,
अपइ ठान महासुह लीणे दुलख परम निवाणे। ध्रु०
दु खें सुखें एकु करिआ भुज्जइ इदीजानी,
स्वपरापर न चेवइ दारिक सअलानुत्तर मानी। ध्रु०
राआ राआ राआरे अवर राअ मोहरा बाधा,
लुइ-पाअ-पए दारिक द्वादशभुअणें लधा। ध्रु०

नाम—(११) डोंभिपा (सिद्ध ४)।

समय—८७० के लगभग।

ग्रंथ—(१) अक्षरद्विकोपदेश, (२) डोंबि-गीतिका, (३) नाडीविंदुद्वारे-योगचर्या।

विवरण—यह महाशय मगध देश-निवासी क्षत्रिय थे। इनके गुरु वीणापा और विरूपा दोनो थे। डोंभिपाद के नाम से तजूर में २१ ग्रंथ मिलते हैं, पर इसी नाम के एक और सिद्ध हो गए हैं, अत ठीक नहीं कहा जा सकता कि कौन ग्रंथ किसका है।

उदाहरण—

राग देशाख १०

नगर बारिहिरें डोंबि तोहोरि कुड़िया,
छइ छोइ याइ सो वाह्म नाडिआ। ध्रु०
आलो डोंबि तोए सम करिबे म सांग,
निघिण काण्ह कापालि जोइ लाग। ध्रु०

एक सो पद्मा चौसट्ठी पाखुड़ी,
तहि चढ़ि नाचअ डोंबी वापुडी। ध्रु०
हाली डोंबी तो पुछमि सदभावे,
अइ् ससि जासि डोंबि काहरि नावें। ध्रु०
तांति विकणअ डोंबी अवर ना चंगता,
तोहोर अंतरे छाडनड एड़ा। ध्रु०
तुलो डोंबी हाउँ कपाली,
तोहोर अंतरे मोए घलिलि होडरि माली। ध्रु०
सरवर भांजीय डोंबी खाअ मोलाण,
मारमि डोंबि लेमि पराण। ध्रु०

धनसी राग १४

गंगा जउना मॉझेरे वहइ नाई,
तहिं बुडिली मातंगी पोइआ लीले पार करेइ। ध्रु०
वाहतु डोंबी वाहलो डोंबी वाटत भइल उछारा,
सद्गुरु पाअ-पए जाइब पुणु जिणउरा। ध्रु०
पाँच केड़ुअल पडंते मांगे पिटत काच्छी वांधी,
गअण दुखोलें सिचहु पाणीन पइसइ साधि। ध्रु०
चंद सूज्ज दुइ चका सिटी संहार पुलिंदा,
वाम-दहिण दुइ माग न खेइ वाहतु छंदा। ध्रु०
कवडी न लेइ बोडी न लेइ सुच्छडे पार करेइ,
जो रथे चड़िला वाहवाण जाइ कुलें कुल बुडई। ध्रु०

भिक्षावृत्ति-नामक पुस्तक में, जो तंजूर में है, इनका यह दोहा मिलता है। निम्न-लिखित पाठ ल्हासा के मुक्त-विहार की हस्त-लिखित प्रति के अनुसार है—

भुज्जइ मअण सहाव र क्मइ सो सइअल,
मोख ओ धम करडिया मारउ काम महाउ;
अच्छउ अक्ख जे पुनइ, सो संसार-विमुक्क,

ब्रह्म महेशर णारायणा, सस्ख असुद्ध सहाव।

नाम—(१२) भूसुक या शांतिदेव सिद्ध ४१)।

समय—स० ८७० के लगभग। ग्रंथ—सहजगीति।

विवरण---नालंद के पास क्षत्रिय-वंश में पैदा हुए थे, और भिक्षु होकर उसी बिहार में रहने लगे। उस समय गौड़ेश्वर देवपाल वहाँ के राजा थे, जिनका समय स० ८६६ तक कहा जाता है। उपर्युक्त ग्रंथ मागधी हिंदी में लिखा हुआ भोटिया-भाषा (लिपि) में मिलता है।

उदाहरण---

राग कामोद २७

अधराति-भर कमल विकसउ,
बतिस जोइणी तसु अंग उह्लसिउ। ध्रु०
चालउअ षषहर मागे अवधूइ,
रअणहु षहजे कहेइ। ध्रु०
चालिअ षषहर गउ णिवाणें, कमलिनी कमल बहइ पणालें। ध्रु०
विरमानंद बिलक्षण सुध; जो एथु बूझइ सो एथु बुध। ध्रु०
भूसुक भणइ मइ बूझिअ मेलें,
सहजानद महासुह लोले। ध्रु०

राग मल्लारी ४६

बाज णाव पाड़ी पँउआ खालें वाहिउ,
अदल बंगालें क्लेश लुड़िव। ध्रु०
आजि भूसुक बंगाली भइली,
णिअ घरणी चंडाली लेली। ध्रु०
डहि जो पंचवाट णइ दिवि सञ्ञा णठा,
णग जाणमि चिअ मोर कहिं गइ पइठा। ध्रु०
सोण तरुअ मोर किंपि ण थाकिउ,
निअ परिवारे महासुहे थाकिउ। ध्रु०
चउकोडि भंडार मोर लइआ सेस,

जीवंते महलें नाहि विशेष। श्र०

नाम—(१३) कण्हपा (सिद्ध १७) या कर्णपा और कृष्णपा भी था।

समय—सं० ८८० के लगभग।

ग्रंथ—कान्हपादगीतिका, महाढुंढनमूल, वसंततिलक, असंबंधदृष्टि, वज्र-गीति और दोहा-कोष मगही भाषा में हैं। इनके अतिरिक्त इनके और भी बहुत-से ग्रंथ संस्कृत या पाली में हैं। ये सब ग्रंथ तंजूर में हैं।

विवरण—इनका जन्म कर्णाटक में हुआ। जाति के ब्राह्मण, महाराज देवपाल के समय में थे, सं० ८६६-९०६ तक जिनके राज्य का समय था। इनके गुरु का नाम सिद्ध जालंधरपाद है। इनको ८४ सिद्धों में बहुत बड़ा पंडित कहते हैं। इनके सात-आठ शिष्य चौरासी सिद्धों में गिने जाते हैं। वे धर्मपा, कंतलिपा, महीपा, उधलिपा और भदेपा थे, तथा कनखला और मेखला दो योगिनियाँ थीं। जवलिपा इनके प्रशिष्य थे।

उदाहरण—

आगम वेअ पुराणे, पंडित मान वहंति ;
पक्क सिरीफल अलिअ जिम बाहेरित भमयति।
अहण गमइ उहण जाइ, वेणि-रहिअ तसु निच्चल पाइ।
भणइ कह्ण मन कहवि न फुटइ, निच्चल पवन घरिणि घर वत्तइ।
एक्कण किज्जइ मंत्र ण तंत, णिअ घरणि लइ केलि करंत।
णिअ घर घरिणी जावण मज्जइ ताव कि पंच वर्ण विहरिज्जइ।
जिमि लोण विलिज्जई पाणिएहि, तिम घरणी लइ चित्त ,
समरस जइ तक्खणे, जइ पुणु ते सम नित्त।

वज्रगीतिका

कोलअ रे ठिअ बोल्ल, मुम्मुणि रे कक्कोल,
घने किपीटह बज्जइ करुणे किअइ णरोला।
तहि पल खज्जइ गाढ़ें, मअ णा पिज्जइ,
हले कलिंजर पणिअइ दुंदुर वज्जिअइ।

चउसम कत्थुरि सिल्हा, कप्पुर लाइअइ,
मालइ घाण-सालि अइ, तहिं भलु खाइअइ।
पेंखण खेट करंत, शुद्धाशुद्ध ण मणिअइ,
निरशु अग चढावि अइ, तहिं जस राव पणिअइ,
मल अजे कुदुरु वापइ, डिंडिम तहिं न बजि अइ।

राग पटमंजरी

नाड़ि शक्ति दिट धरि अखदे, अनहा डमरू बाजए वीर नादे।
काह्न कापाली योगी पइठ अचारे, देह-नअरी बिहरए एकारें। ध्रु०
आलि कालि घटा नेउर चरणे, रवि-शशि-कुंडल किउ आभरणे। ध्रु०
राग-देश-मोह लाइअ छार, परम मोख लवए मुत्तिहार। ध्रु०
मारिअ शासु नणंद घरे शाली, माअ मारिआ कांह्न भइअ कवाली। ध्रु०

राग पटमंजरी

सुण वाह तथता पहारी, मोह भंडार लुइ स अला अहारी। ध्रु०
घुमइ न चेवइ सपरविभागा, सहज निदालु काह्निला लांगा। ध्रु०
चेअण ण चेअन भर निद गेला, सअल सुफल करि सुहे सुतेला। ध्रु०
स्वपणे मइ देखिल तिभुवण सुण, घोरिअ अवणा गमण विहल। ध्रु०
शाथि करिब जालधरि पादे, पाखिण राहअ मोरि पाढिआ चादे। ध्रु०

म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री ने कन्ह-नामक एक हिंदी-कवि दसवीं शताब्दी ईसवी के निकट बौद्धों की योगमार्गी सहजिया सम्प्रदाय में माना है। उनका उदाहरण यों है—

भण इ कण्ह मन कहवि न फुट्टइ। निच्चल पवन घरिणि घर वत्तइ।

बाबू राखालदास बैनर्जी इन्हें चौदहवीं शताब्दी का कहते हैं। यह कवि कण्हपा से पृथक् समझ पड़ते हैं।

नाम—(१४) तांतिपा (सिद्ध १३)।

समय—स० ८८० के लगभग।

ग्रंथ—'चतुर्योगभावना' ग्रंथ तजूर में है।

महाशय उज्जैन के तंतुवाय (कोरी) थे। जालंधरपाद के

शिष्य होकर सिद्ध-सम्प्रदाय में हो गए। कण्हपा भी इनके गुरु थे। उन्हीं से इनके समय का पता लगता है। उपर्युक्त ग्रंथ पुरानी मालवी या मगही में लिखा है। इनका जो उदाहरण नीचे दिया जाता है, वह चर्यागीति का है।

राग पटमंजरी

टालत मोर, घर नाहि पडवेषी, हाड़ी ते भात नाँहि निति आवेशी। ध्रु०
वेंग ससार वढ़हिल जाअ, दुहिल दुधु कि पेटे पमाय,
चलद विआएल गाविआ बाँझे, पिटा दुहिए एतिना साँझे।
जो सो बुधी सो धनि बुधी, जो पो चोर सोइ साधी,
निते-निते पिआला पिहेपम जुझअ, ढेण्णण पाएर गीत विरले बूझअ।

यह पद चर्यागीति में ढेंढनपाद के नाम से है, पर इस नाम का कोई सिद्ध नहीं हुआ। इसीलिये कुछ लोग इसे ततिपाद का मानते हैं।

नाम—(१५) मीनपा (सिद्ध ८)।

समय—स० ८८० के लगभग।

ग्रंथ—'बाह्यांतर बोधिचित्तबधोपदेश' तजूर में है।

विवरण—यह महाशय मछुए थे। इनका जन्म आसाम में हुआ। इनके पुत्र 'मत्स्येंद्रनाथ' थे, जिनके शिष्य प्रसिद्ध महात्मा गोरखनाथ कहे जाते हैं। गोरखनाथजी के समय में मतभेद है। इनका पथ आज भी भारतवर्ष में प्रस्तुत है, जिसके माननेवाले लाखों मनुष्य हैं। मीनपा की रचना का उदाहरण चर्यागीति से दिया जाता है।

उदाहरण—

कहति गुरु परमार्थेर बाट, कर्म कुरंग समाधिक पाट।
कमल विकसिल कहिह णजमरा, कमल मधु पिविधि धोके न भमरा।

चित्तौर के रावल खुमान ने संवत् ८७० से ८९० तक राज्य किया। उनके समय में मुसलमानों का एक भारी धावा भारत पर हुआ। उस समय बहुत-से राजाओं ने खुमान को सहायता दी, और अंत में खुमान ने शत्रुओं को पूर्ण पराजय दी। खुमान ने २४ लड़ाइयों में युद्ध किया। इनका वर्णन (१६) एक दलभट्ट कवि ने खुमान-रासो में किया था, परंतु दुर्भाग्य-वश वर्तमान खुमान-

रासो रामचंद्र से लेकर महाराणा प्रतापसिंह के युद्धों तक का वर्णन है। ये बातें टाड-राजस्थान में लिखी हैं।

चित्तौर में तीन रावल खुमान शासक हुए हैं। पहले का राजत्व-काल सं० ८१० से ८३५ तक था, दूसरे का ८७० से ९०० तक और तीसरे का ९६५ से ९९० तक। बग़दाद के अब्बासिया-वंश का खलीफ़ा अलमामू सं० ८७० से ८९० तक शासक रहा। बग़दाद के ख़लीफ़ा ने सं० ७६९ में सिंध देश पर अधिकार जमाया था। उसी समय से इन लोगों का भारतीय अन्य नरेशों से भी संधि-विग्रह का संबंध चल पड़ा। जब प्राचीन खुमान-रासो ग्रंथ को पीछे के कवियों ने बहुत बढ़ाकर उसमें महाराजा प्रतापसिंह के समय तक का वर्णन कर दिया है, तब जब तक पूरा ग्रंथ ध्यान-पूर्वक न देखा जाय, तब तक यह ज्ञात होना कठिन है कि उसका कितना अंश प्राचीन है, और कितना नवीन। सरोजकार कहते हैं, कोई दलपतिविजय-नामक कवि इस ग्रंथ का लेखक है। इस कथन का क्या आधार है, सो उन्होंने नहीं लिखा। संभव है, यह कवि भी इस ग्रंथ के रचयिताओं में से एक हो। खुमान-रासो में द्वितीय खुमान द्वारा अलमामू की पराजय का वर्णन होगा। चित्तौर, अलाउद्दीन-वाले पद्मिनी के कारण युद्ध तथा कई और पदार्थों का वर्तमान खुमान-रासो अच्छा वर्णन करता है, और राजपूताना, विशेषतया चित्तौर के ऐतिहासिक ज्ञान की इससे अच्छी वृद्धि हुई है।

नाम—(१७)भादेपा (सिद्ध ३२)।

समय—सं० ९०० के लगभग।

ग्रंथ—तंजूर में इनका कोई ग्रंथ नहीं मिला।

विवरण—श्रावस्ता के चित्रकार-कुल में उत्पन्न हुए। सिद्ध कण्हपा के शिष्य थे। उन्हीं से इनके समय का पता लगता है। चर्यागीति से इनकी एक गीति लिखी जाती है—

राग मल्लारी ३५

एत काल हाँउ अच्छिलें स्वमोहें, एवें मइ बुझिल सद्गुरु बोहें। ध्रु०

एवें चिअराअ मकुणठा, गण समुदे टलिआ पइठा। ध्रु०

पेखमि दह दिह सर्वइ शून, चिअ विहुन्ने पाप न पुण्ण। ध्रु०
बाजुले दिल मोहकखु भणिआ, मइ अहारिल गअणत पणिआँ। ध्रु०
भादे भणइ अभागे लइआ, चिअराअ मइ अहार कएला। ध्रु०

नाम—(१८) महीपा (महिल) (सिद्ध ३७)।

समय—सं० ९०० के लगभग।

ग्रंथ—वायुतत्त्व-दोहा-गीतिका।

विवरण—यह महाशय मगध देश के शूद्र थे। इनके गुरु सिद्ध कण्हपा थे। तजूर में इनका ऊपर लिखा ग्रंथ मिला है, जो पुरानी मगही का है। यह महीपा और महीधरपाद एक ही जान पड़ते हैं। चर्यागीति में, जो भिन्न-भिन्न कवियों की रचनाओं का एक संग्रह है, इनकी गीति लिखी जाती है। इनका समय कण्हपा के आधार पर लिखा गया है।

राग भैरवी

तिनिएँ पाटे लागेलि रे अणह कपण घण गाजइ,
तासुनि मार भयंकर रे सअ मंडल सएल भाजइ।
मातेल चीअ गअंदा धावइ निरंतर गअणंत तुसें घोलइ। ध्रु०
पाप-पुण्य वेणि तिड़िअ सिकल मोड़िअ खमाठाण,
गअण टाकलि लागिरे चित्त पइठ णिवाना। ध्रु०
महारस पाने मातेल रे तिहुअन सएल उएखी,
पंच विषय रे नायक रे विपख को वीन देखी। ध्रु०
खर रवि किरण संतापे रे गअणांगण गइ पइठा,
भणति महित्ता महिप्पा मइ एथु बुड़ंते किंपि न दिठा। ध्रु०

नाम—(१९) कंबलपाद (सिद्ध ३०)।

समय—सं० ९१५ के लगभग।

ग्रंथ—(१) असंबंध-दृष्टि, (२) असंबंध-सर्ग-दृष्टि, (३) कंबल-गीतिका।

विवरण—उड़ीसा के राजवंश में इनका जन्म हुआ। भिक्षु होकर त्रिपिटक

के पंडित हुए। इनके गुरु का नाम घटापाद था। सिद्ध राजा इंद्रमूर्ति इनके शिष्य थे। उपर्युक्त ग्रंथ प्राचीन उड़िया या मगही में लिखे हुए हैं।

उदाहरण—

राग देवकी ८

सोने भरिती करुणा नावी, रूपा थोइ महिके ठावी। ध्रु०

वाहतु कामलि गअण उषेसें, गेली जाम बहु उइ काइसें। ध्रु०

खुंटि उपाड़ी मेलिलि काच्छि, वाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि। ध्रु०

मागह चहिले चउदिसि चाहअ,

केडु आल नहि कें कि वाहव के पारअ। ध्रु०

वाम-दाहिण चापा मिलि-मिलि मागा,

वाटत मिलिलि महासुख सगा। ध्रु०

नाम—(२०) जालंधरपाद अथवा आदिनाथ (सिद्ध ४६)।

समय—सं० ९२५ के लगभग।

ग्रंथ—(१) विमुक्त-मजरी गीत, (२) हुंकार-चित्त-विंदु-भावना-क्रम।

विवरण—नगर भोग देश (?) के ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए थे। पीछे घटापाद के शिष्य होकर भिक्षु हो गए। इनके शिष्य गोरखनाथ के गुरु प्रसिद्ध मत्स्येंद्रनाथ, कण्हपा और तंतिपा थे। कण्हपा महाराज देवपाल (सं० ८६६–९०६) के समय में हुए। उन्हीं से इनके समय का पता लगता है।

उदाहरण—

राग निवेद, ताल माठ ७६

अखय निरंजन अरूप अनु, पद्म गगन कमरंजे साधना,

शून्यता विरासित रायश्री चिय देवपान-विंदु समय जो दिता। ध्रु०

नमामि निरालंब निरक्षर, स्वभाव हेतु स्फुरन संप्रापिता,

सरद-चंद्र-समय तेज प्रकासिता जरज-चंद्र-समय व्यापिता। ध्रु०

खडग योगांबर सादिरे चक्रवर्ति मेरु-मंडल भमलिता,

निर्मल हृदयारे चक्रवर्ति, ध्याविते, अहितिसिपंजम्र मय साधना। ध्रु०

आनंद-परमानंद विरमा, चतुरानंद जे संभवा,

परमा विरमा माँझेरे न छाड़िरे महासुखसुगत सम्रद प्रापिता । ध्रु०
हे वज्रकार चक्र श्रीचक्रसवर, अनंत कोटि सिद्ध पारंगता,
श्रीहृत वरियाते पूर्ण गिरि, जालंधरि प्रभु महासुख जातहुँ । ध्रु०

(२१) सवत् ९३३ में देवसन ने श्रावकाचार ग्रथ लिखा । इनका उदाहरण देखिए, जो पुरानी हिंदी का है—

जो जिय सासण भाषिअउ सो महकहि अहु सार ;
जो पाले सह भाउ करि सो तरि पावइ पार ।

इसी प्रकार के दोहे हेमचंद्र के व्याकरण, कुमारपाल प्रतिबोध, प्राकृत पिंगलसूत्र आदि में मिलते हैं । दव्व सहाव पयास (द्रव्य-स्वाभाव-प्रकाश)-नामक देवसेन का दूसरा ग्रथ है, जिसका रूपांतर माइल्ल धवल ने गाथा में किया ।

(२२) दसवीं शताब्दी विक्रमीय में बुद्धिसेन-नामक एक जैन कवि हुए हैं, जिनकी भाषा पर विचार करके प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ने उन्हें इसी समय का हिंदी-कवि माना है ।

उदाहरण—

पुत्ते जाए कवण सुख अवगुण कवण सुएण,
जा बप्पी की मुहडी चपिज्जइ अवरेण ।

नाम—(२३) कंकणपाद (सिद्ध ८६) ।

समय—सं० ९५० के लगभग ।

ग्रथ—चर्यादोहाकोपगीतिका । ग्रंथ तजूर में मिला है ।

विवरण—विष्णुनगर के राजवश में उत्पन्न हुए । कबलपावाले परिवार के सिद्ध थे । चर्यागीति से उदाहरण दिया जाता है । कबलपाद ९१५ के थे । इससे इनका समय ९५० के लगभग समझ पडता है ।

सुने सुन मिलिआ जवें, सअल धाम उइआ तवें । ध्रु०
आच्छु हे चउखण सबोही, माझ निरोह अणु अरु बोही । ध्रु०
निदु-णाद णहिं ए पइठा, अण चाहंते आण विणटा । ध्रु०
जथा आइलेसि तथा जान, माझें थाकी सअल विहाण । ध्रु०

भणई कव्हण कल एल सादें, सर्व विच्छुरिल तवता नादें। ध्रु०

नाम—(२४) तिलोपा (सिद्ध २२)।

समय—सं० ९५५ के लगभग।

ग्रंथ—(१) अंतरबाह्यविषयनिवृत्ति-भावनाक्रम, (२) करुणा-भावनाधिष्ठान, (३) दोहा-कोष, (४) महामुद्रोपदेश।

विवरण—इनका जन्म-स्थान भगुनगर (बिहार ?) था। यह महाशय गुह्यपा के शिष्य तथा कण्हपा इनके दादा-गुरु थे, विक्रमशिला के सिद्ध नारोपा इनके पट्टशिष्य थे। इनके ऊपर-लिखे मगही-भाषा के ग्रंथ तजूर में सुरक्षित हैं।

उदाहरण—

स संवअन वतफल, तिलोपाए भंणति,
जो मण गोअर गोइया, सो परमथे न होंति।

(२५) ईसवी सन् १९१७ (सं० १९७६) की खोज में भुवाल कवि-कृत भगवद्गीता-नामक सं० १००० का रचा हुआ ऐसा ग्रंथ मिला, जिसके उदाहरण भी प्रस्तुत हैं। ग्रंथ कामवन मथुरा के कन्या-पाठशाला में श्रीमान् देवकीनंदन के पास है। कवि युक्त-प्रांत का होने से भाषा में राजपूतानी आदि के शब्द नहीं हैं, जिससे भाषा में कुछ नवीनता का संदेह उठना संभव है, किंतु ग्रंथ में समय साफ़ दिया है। ध्यान-पूर्वक देखने से भाषा कुछ संदिग्ध अवश्य समझ पड़ती है। यह समय बहुत निश्चित नहीं माना गया है। उदाहरण—

संवत कर अब करौं बखाना, सहस्र सो संपूरन जाना।
माघ मास कृष्ण पख भयऊ, दुतिया रबि तृतिया जो भयऊ।
तेहि दिन कथा कीन मन लाई, हरि के नाम गीत चित आई।
सुमिरौं गुरु गोबिंद के पाऊँ, अगम अपार है जाकर नाऊँ।
कहु नाम युत अंतरजामी, भगत-भाव देहु गरुवागामी।

नाम—(२६) नाड़-(नारो) पा (सिद्ध २०)।

समय—सं० १०३० के लगभग।

ग्रंथ—(१) नाडपंडितगीतिका, (२) वज्रगीति।

विवरण—इनके पिता काश्मीर-निवासी ब्राह्मण थे। वह मगध में आए थे,

जहाँ इनका जन्म हुआ। बहुत बड़े विद्वान् होकर सिद्ध तिलोपा के शिष्य हो गए। नालंद-विद्यालय में शिक्षा पाई। विक्रमशिला में पूर्व द्वार के महापंडित हुए। इनका देहावसान सं० १०९६ में होना कहा जाता है। उदाहरण-स्वरूप इनकी कोई रचना नहीं मिलती। चर्यागीति में ताडकपाद के नाम से एक पद मिलता है, पर इस नाम के कोई सिद्ध नहीं हुए। संभवतः यही ताडकपाद नाडकपाद है। वह गीति नीचे दी जाती है—

अपणे नाहिं मो काहेरि शंका, ता महामुदेरी टूटि गेलि कंथा। ध्रु०
अनुभव सहज मा भोलरे जोई, चोकोट्टि विमुका जइसो तइसो होई। ध्रु०
जइसने अछिले स तइछन अच्छ, सहज पिथक जोइ भाँति माहो वास। ध्रु०
बाँड कुरु सतारे जाणी, वाकपथातीत कोहि वखाणी। ध्रु०
भणइ ताडक एथु नाहि अवकाश, जो बुझइ ता गलें गलपास। ध्रु०

नाम—(२७) सरह—नंबर दो में देखिये।

नाम—(२८) कन्ह—नंबर तेरह में देखिये।

नाम—(२९) जयानंत (जयनंदी) पाद (सिद्ध ५८)।

समय—सं० १०५० के लगभग।

ग्रंथ—तर्कमुद्गरकारिका और मध्यमकावतार टीका तंजूर में है। चर्यागीति में इनकी गीति नीचे लिखी जाती है।

विवरण—यह जाति के ब्राह्मण भागलपुर-नरेश के मंत्री थे। इनके गुरु-शिष्य का पता नहीं लगता, अतः समय का भी ठीक ज्ञान नहीं हो सका है। भाषा आदि से सं० १०५० के लगभग जान पड़ते हैं।

राग शवरी

पेखु सुअणे अदश जइसा, अ तराले मोह तइसा। ध्रु०
मोह-विमुका जइ माणा, तबे तूटइ अवणा गमणा। ध्रु०
नौ दाढइ नौ तिमइ न च्छिजइ, पेख मोअ मोहे बलि-बलि बाझई। ध्रु०
छाअ माआ काअ समाणा, बेणि पाखें सोइ विणा। ध्रु०
चिअ तथता स्वभावे षोहिअ, भणइ जअनंदि फुडण अणण होइ। ध्रु०

नाम—(३०) शांतिपा (रत्नाकर शांति) (सिद्ध १२)

समय—सं० १०७० के लगभग।

ग्रंथ—सुख-दु.खद्वयपरित्यागदृष्टि।

विवरण—यह महाशय मगध के ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए। बहुत बड़े विद्वान् थे। सिद्ध नाड़पाद का इनका संग रहा। कहा जाता है, सिद्धों में इनके बराबर कोई दूसरा पंडित नहीं था। महाराज महीपाल (१०३१-१०८२) के समय में विक्रमशिला, बिहार में पूर्व द्वार के पंडित बने। इनकी आयु १०० वर्ष से अधिक की कही जाती है। भोटका मरवालोचवा इन्ही का शिष्य था, और तिब्बत के सर्वोत्तम कवि और सिद्ध जे-चुन् मि-ला रे-पा (दीक्षा स० ११३३, मृत्यु ११७९) इनके चेले थे। चर्यागीति से इनकी गीति लिखी जाती है—

राग रामकी १५

सअ-सवेअण सहअ विआरें, ते अलक्ख लक्खण न जाइ।
जेजे उजूवाटे गेला अनावाटा भइला सोई। ध्रु०
कुले कुल मा होइ रे मूढ़ा उजूवाटे ससारा,
वालभिण एकुवाकु ण भूलह राजपंथ कटारा। ध्रु०
माआ मोहा समुदारे अंत न बुझसि थाहा,
आगे नाव न भेला दीसअ भांति न पुच्छसि नाहा। ध्रु०
सुनापंतर उह न दिसइभांति न वाससि जांते,
एषा अट महासिद्धि सिज्झए उजूवाट जा अते। ध्रु०
वाम-दाहिण दो वाटाच्छाडा शांति बुलथेउ संकेलिउ,
घाटन गुमा खड़तड़ि नो होइ आखि बुजिअ बाट जाइउ। ध्रु०

राग शीवरी २६

तुला धुणि-धुणि आँसुरे, आँसु, आँसु धुणि-धुणि णिखर सेसु। ध्रु०
तउपे हेरुअ ण पाविअइ, साति भणइ किण सभावि अइ। ध्रु०
तुला धुणि-धुणि सुने अहारिउ, पुन लइआं अपना चटारिउ। ध्रु०
बहल वट दुइमार न दिशअ, शाति भणइ बालाग न पइसअ। ध्रु०
काज न कारण जएहु जअति, सँएँ सँवेअण बोलथि सांति। ध्रु०

सं० १०५७ के लगभग दाक्षिणीय भारत में संन्यासियों का एक संघ खड़ा हुआ। इसमें निर्गुण-निराकार ब्रह्म की प्रधानता थी, और दार्शनिक विवेक-वाद का मान था। ये लोग शांकर अद्वैत एवं माया-वाद के प्रतिकूल थे। इन्हीं महात्माओं में रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निंबार्क और विष्णुस्वामी प्रधान थे। स्वामी रामानुजाचार्य ने उपदेश तो संस्कृत में दिए, किंतु इनका प्रभाव हिंदी पर पड़ा बहुत है। आपका समय सं० १०७३ से ११९३ तक है। आपके विचार से ब्रह्म एवं ईश्वर के अनेक रूपों में नारायण का उपरूप प्रधान है। मूर्ति भी आप आराध्य, उपास्य एवं सेव्य मानते हैं। आत्मा के तीन रूप हैं, बद्ध, मुक्त और नित्य। बद्धात्मा चैतन्य और अचैतन्य होती है। चैतन्यात्मा के लिये भक्ति और ज्ञान प्रधान है। नित्यात्मा परमात्मा है। इसके प्रधान उपरूप तीन हैं, अर्थात् ब्रह्मा (उत्पादक), विष्णु (पोषक) और रुद्र (विनाशक)। यह आत्मा स्वेच्छा से अवतार भी ग्रहण करती है। सूक्ष्मतया यही स्वामीजी का उपदेश है। आप शांकर अद्वैत-वाद को मानते हुए भी उसमें कुछ विशेषता बतलाते हैं। इसी से आपका मत विशिष्टाद्वैत कहलाता है। शंकर शैव थे, और आप वैष्णव। उपर्युक्त महात्माओं के कथन यथासमय होंगे। रामानुजाचार्य दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। आपने वैष्णव-मत वहीं बहुत चलाया। नारायण को प्रधान मानते हुए भी आपने अवतारों को प्राधान्य न दिया, तथा गोपाल-कृष्ण का वर्णन कभी न किया। बौद्ध-मत का पतन जैसे शंकर स्वामी द्वारा हुआ, वैसे ही जैन-मत का रामानुज स्वामी द्वारा। बादरायण व्यास भगवान् के पीछे ये दोनों महात्मा पौराणिक मत के प्राण ही हुए। इस मत के प्राचीन तथा नवीन दोनो प्रकार के सिद्धांतों का इन्होंने तर्क द्वारा सामंजस्य करके इसका सर्वांग-सुंदर रूप निकाला, जिसका हिंदू-संसार में पूरा मान हुआ। ये दोनो हमारे बहुत बड़े धार्मिक नेता हैं।

सुना जाता है, संवत् १०७५ के लगभग जब सुलतान महमूद ने (२१) राजा नंद कालिंजर-नरेश पर आक्रमण किया था, तब राजा ने उसकी प्रशंसा का एक छंद लिखकर भेजा, और सुलतान ने प्रसन्न होकर कालिंजर की चढ़ाई उठा ली, तथा १४ किले और राजा को दिए।

नाम—(३२) जिनवल्लभ सूरि । ग्रंथ—वृद्ध नवकार ।

रचना-काल—११६७ के पूर्व ।

विवरण—स० ११६७ में जैन-श्वेतांबराचार्य श्रीअभयदेव सूरि के पद पर आचार्य हुए, तथा उसी वर्ष इनका देहांत भी हुआ। आप बड़े प्रभावशाली तथा पंडित थे आपने सस्कृत तथा प्राकृत में बहुत ग्रंथ रचे हैं।

उदाहरण—

किं कप्पतरु रे अयाण चिंतउ मण भितरि,
किं चितामणि कामधेनु आराहौ बहु परि।
चित्रावेली काज किसे देसतर लघउ,
रयण रासि कारण कि से सायर उल्लवउ।
चौदह पूरब सार युगे एक नवकार,
सायल काज महियल सरै दुत्तर तरै ससार।
इक्कजीह इण मत्र तणों गुण किता बखाणूं;
नाण हीन छउ मत्थ एह गुण पार न जाणूं।
जिम से त्रंजै नित्य राउ महिमा उदयवंतौ,
तिम मत्रह धुरि एह मंत्र राजा जयवंतौ।
अड सपय नव पय सहित इंगसठ लघु अक्षर;
गुरु अक्षर सत्तेव एह जाणो परमाक्षर।
गुरु जिनवल्लह सूरि भणो सिव सुर के कारण,
नरय तिरिय गइ रोग सोग बहु दुःख निवारण।
जल थल पव्वय वन गहन समरण हुवे इकचित्त,
पच परमेष्टि मत्रहतणी सेवा देज्यो नित्त।

इस रचना के छंदोभग सुगमता-पूर्वक दूर हो सकते हैं, किंतु प्राचीनता के कारण यह लेखकों द्वारा की हुई अशुद्धियों के साथ ही लिखी गई है।

साद का पुत्र (३३) मसऊद भी हिंदी का कवि था। इसका समय संवत् ११८० के लगभग समझना चाहिए।

निंबार्क स्वामी का समय अनिश्चित है, किंतु इतना ज्ञात है कि आप स्वामी

रामानुजाचार्य के कुछ ही पीछे के हैं। आपकी मृत्यु का समय सं० १२१९ कूता जाता है। आप भी दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे, किंतु वृंदावन में बसकर आप-ने स्वमत का प्रचार किया। वेदांत पर आपने अद्वैत और माया-वाद के प्रति-कूल उत्कृष्ट टीका लिखी। कृष्ण-भक्ति के साथ राधावाली भक्ति भी जोड़कर आप ही ने शुद्ध वैष्णव-मत में वाम मार्ग मिलाकर उसे कलुषित किया। रामा-नुजाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित सेवक-सेव्य-भाव की भक्ति में आपने शृंगारात्मिका भक्ति भी जोड़ दी। अपनी भक्ति-पद्धति का बंगाल और विहार में प्रचार करके आप वृंदावन गए। आपका भी एक सम्प्रदाय चलता है। इसमें आगे होनेवाले घनानंद सुकवि हैं। यद्यपि आप हिंदी के कवि न थे, तथापि आपके लेखों का प्रभाव हिंदी-कविता पर पड़ा बहुत है। हिन्दू-मत के पुन स्थापन मे स्वामी रामानुजाचार्य का प्रभाव भारी है, किंतु हिंदी-साहित्य पर निंबार्क स्वामी का अधिक प्रभाव है। राम-संबंधी साहित्य पर रामानंद के द्वारा रामानुजाचार्य का प्रभाव है, तथा शृंगारिक रचना पर निंबार्क स्वामी का। मथुरा में यह राम-काव्य से बहुत अधिक है। स्वयं निंबार्क स्वामी ने कृष्ण के साथ राधाजी का वर्णन तो किया, किंतु राधा की विशेष महत्ता न की। फिर भी पीछे से यह वाम-मार्गीय विचार परिवर्द्धित होकर चैतन्य महाप्रभु तथा रूपसनातन के प्रभाव से वृंदावन की गौड़ीय तथा अन्य संप्रदायों में भी बहुत व्यापक रूप से फैला।

(३४) कुतुबअली ने हिंदी-काव्य में अन्हलपुर के महाराजा सोलंकी सिद्धराज जयसिंह देव को इस विषय का छंदोबद्ध प्रार्थना-पत्र दिया था कि लोगों ने उसकी मसजिद खोद डाली। महाराज ने मसजिद फिर से बनवा दी। इन महाराजा का राजत्व-काल संवत् ११५० से १२०० पर्यंत रहा। अतः यही समय इस कवि का समझना चाहिए।

(३५) सोमेश्वर

आपका पूरा नाम भूलोक मल्ल सोमेश्वर था। आप उत्तरीय चालुक्य-वंशीय थे। आपने वर्तमान निज़ाम-राज्य के अंतर्गत कल्याणी नगर में संवत् ११८४ से लगाकर संवत् ११९६ तक राज्य किया। आप उच्च कोटि के विद्वान् होने के कारण 'सर्वज्ञभूप' कहलाते थे। आपने सं० ११८४ में 'मानसोल्लास'

अर्थात अभिलषितार्थ-चिंतामणि-नामक एक संस्कृत अनुष्टुप्-छंद-युक्त ग्रंथ बनाया। ग्रंथ अपूर्व है। इस ग्रंथ की दो प्रतियाँ डेक्कन-कालेज के हस्त-लिखित ग्रंथ-संग्रहालय में संगृहीत हैं, और एक प्रति तंजौर के सरस्वती-पुस्कालय में भी है। उक्त ग्रंथ में लगभग १२५ विषयों का विवेचन किया गया है, जिनमें समाज, राज, भूगोल, ज्योतिष, किले, सेना, वस्त्र, शास्त्र, मनोरंजन, छंदशास्त्र, संगीत, साहित्य आदि बातों का अनूठा वर्णन है। राग-रागिनियों के वर्णन के संबंध में ग्रंथ-कर्ता ने कई देशी भाषाओं के पद्यों के उदाहरण दिए हैं। महाशय भाले रावजी का कथन है कि इसी स्थान पर मराठी, कनाड़ी, बँगला, लाटी आदि भाषाओं के पद्यों के भी उदाहरण हैं, किंतु ये उदाहरण हमारे देखने में नहीं आए हैं, क्योंकि ग्रंथ हमारा देखा हुआ नहीं है। फिर भी सहर्ष कहना पड़ता है कि सं० ११८४ में हिंदी-भाषा का केवल विकास ही नहीं हुआ था, वरन् ठेठ दक्षिण तक उसका खासा प्रचार भी हो गया था। नीचे लाटी भाषावाले पद्यों के उदाहरण दिये जाते हैं। इस भाषा के ये उदाहरण महाशय भाले रावजी को उनके इतिहास-गुरु पुरातत्त्व-भूषण श्रीयुत राजवाड़ेजी द्वारा प्राप्त हुए हैं। ये उदाहरण हिंदी से कुछ मिलते-जुलते हैं। (देखो 'विनोद' प्रथम भाग, प्राचीन कवि)।

उदाहरण—

(१)

गउरिय नडहं जौर खै जौ, कंस हरखिय कालु सो अम्हण।
दुरि अइय वह रठ कन्हु भराडा बालु—

× × × ×

(२)

नद गोकुल जायौ। कान्हा जोगो बजियो पड़ी हेली रे न येगे। जो त्रिया धारणा भर आविन्यम्हण।

हक्कारिया। कंदऊ भरड़ा सो आम्हण चिंतिया वुध रूपण जो दाणव पुरा वच विणि देव वेद पुरुपेणा।

× × × ×

(३६) साँईदान चारण (सीलगा) बीकानेरवाले ने संवत् ११९१ में संमतसार-नामक ग्रंथ रचा। खोज में इसका नाम सवत्-सार लिखा है।

गुजरात में सोलंकी नरेश सिद्धराज का समय ११५० से ११९९ तक था। आपके समय में हेमचंद ने सिद्ध हेमचंद्र-शब्दानुशासन-नामक एक व्याकरण-ग्रंथ बनाया, जिसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का वर्णन किया। अपभ्रंश के उदाहरणों में हेमचंद ने बहुत-से दोहे उद्धृत किए। इस प्रकार के दोहे उस काल प्रचलित होंगे। इन्होंने स्वयं द्वाश्रय काव्य-नामक ग्रंथ भी बनाया, जिसका कुमारपाल-चरित्र (प्राकृत ग्रंथ) एक अंश था। द्वाश्रय काव्य में भी अपभ्रंश के अंश हैं। मालव-नरेश प्रसिद्ध महाराज भोज के समय (संवत् १०६०) में भी ऐसे दोहे प्रचलित थे। इनके चचा मुंजराज ने भी ऐसे दोहे बनाए हैं। कई चारणादि कवि भी, जो इस काल के बहुत पीछे प्रायः पंद्रहवीं शताब्दी तक हुए, प्राचीन प्रथा का मान करके कुछ-कुछ ऐसी भाषा का प्रयोग करते रहे। इस प्रकार अपभ्रंश का कुछ-कुछ प्रभाव बहुत पीछे तक चलता रहा। जैसे प्राकृत में गाथा का प्रचार था, वैसे ही अपभ्रंश में दूहा (दोहा) का पाया जाता है। अब तक हम सं० १२०० पर्यंत हिंदी-कवियों का वर्णन दे चुके हैं, और अब तत्कालीन भारतीय रंगमंच का कथन उठाते हैं।

हमारे यहाँ प्रचलित धर्म मुख्यतया शैव, शाक्त तथा वैष्णव थे। शैव-मत में दार्शनिक तथा उपासना-संबंधी शाखाएँ थीं। शाक्त-मत बंगाल और आसाम में बहुत प्रचलित था। है इसमें दक्षिणमार्ग भी, किंतु प्रधानता वाममार्ग ही की है। नाथ-संप्रदायवाले हमारे कविगण शाक्त-मत के पोषक समझे जाते हैं। शैव-मत पर बौद्ध-महायान का प्रभाव पड़ा था, और बहुत करके इसी के प्रभाव से हिंदू-मत की वृद्धि तथा बौद्ध-मत का ह्रास हुआ। वैष्णव-मत प्रायः दार्शनिक था, और शैव-मत की प्रतिकूलता को निकला था। यह था तो बहुत ही शुद्ध और सात्त्विक एवं वाममार्ग के प्रतिकूल, किंतु समय पर राधा के रूप में इसमें वाममार्ग का प्रभाव घुस पड़ा। शैव-मत में वाम-मत का प्रभाव इससे भी बहुत अधिक था।

ऋग्वेद में केवल देवताओं तथा ब्रह्म का विचार है, वैष्णव अथवा शैव-मतों का नहीं। यजुर्वेद में रुद्र शिव ईश्वर हैं। यह शैव-ईश्वरता प्राचीन उपनिषदों तक में प्रस्तुत है। पीछे से कई उपनिषदों तथा गीता में विष्णु

भगवान् ईश्वर है। अनतर सगुणवाद की वृद्धि से ब्रह्मा, विष्णु और शिव के एकीकरण से हमारे यहाँ त्रिमूर्ति का भाव पुष्ट हुआ। साथ-ही-साथ अवतार वाद के साथ वैष्णव-मत का प्राधान्य देश में हुआ। इसमें कई धर्मों के तत्वों तथा विचारों का सामंजस्य है। गीता में राम-कृष्ण के भ्राताओं का पूजन नहीं लिखा है। इसे व्यूह-पूजन कहते हैं। यह व्यूह-पूजन बौद्ध-निद्देश ग्रंथ में लिखा है, जो तीसरी-चौथी शताब्दी सं० पूर्व का मान गया है। यदि गीता के समय देश में व्यूह-पूजन चलता होता, तो गीता में भी उसका कथन आता। इससे गीता चौथी शताब्दी स० पूर्व से प्राय सौ वर्ष का ग्रथ ठहरता है। फिर भी वह वैष्णव-ग्रंथ है। अतएव स० पूर्व पाँचवीं शताब्दी से विष्णु-पूजन प्रचलित था। चौथी शताब्दी स० में पश्चिमीय मध्य भारत में कृष्ण के वंश से संबंध रखनेवाले कान्हायन-गोत्री वासुदेव (को ईश्वरावतार मानने-वाला) सम्प्रदाय चलता था। एकांतिक-मत भी चला था, जिसमें नारायण को हरि के रूप में पूजा जाता था। यह मत साता चित्र-शिखंडियों द्वारा रक्षित हुआ और नारद द्वारा किसी श्वेत द्वीप से लाया गया था। थोड़े ही दिनों में ये दोनो वैष्णव-मत मिल गए, तथा नारायण, हरि, वासुदेव, कृष्ण भगवत् आदि का एकीकरण हो गया। दूसरी शताब्दी स० पूर्व में विष्णु भगवान् की उपासना जोर से चली, जिसके प्रभाव से समय पर वासुदेव तथा एकातिक-मत भी इसी में जुड़ गए। मेगास्थेनीज तीसरी शताब्दी स० पूर्व) के समय मथुरा में कृष्ण-पूजन चलता था। ईसा से सौ-दो सौ वर्ष पूर्व का वेसनगर में हिलोडोरा का एक ताम्रपत्र मिला है, जिससे प्रकट है कि उस काल भारतीय ग्रीक लोग भी अपने को भागवत कहकर वासुदेव की पूजा में योग देते थे। यह प्रमाण तत्कालीन वासुदेव-मत के चलन का अच्छा साक्षी है। अमरकोष [पहली शताब्दी] में दामोदर शब्द का प्रयोग है, जिससे पहलेपहल बालकृष्ण के पूजन का विधान देश में पाया जाता है। लगभग पहली-दूसरी शताब्दी संवत् में मथुरा के निकट आभीर (अहीर)-नाम्नी एकविदेशी जाति थी, जो गोपाल-कृष्ण का पूजन करती थी। समय पर कृष्ण के साथ गोपालकृष्णका एकीकरण पूजन में भी हो गया।

वैष्णव-पूजन-विधान उत्तरी भारत अथच युक्तप्रात में प्राय पाँच सौ वी०

सौ० से बराबर चलता आया, किंतु समय पर बौद्ध-मत की वृद्धि से यहाँ इसका प्राधान्य कम हो गया, और बहुतेरे भक्त लोग दक्षिणी भारत को चले गये। वृष्णि-जाति के कुछ लोगों का राज्य मदुरा-प्रांत में, दूसरी शताब्दी में था। इन लोगों में वैष्णव-धर्म का प्रचार था। चौथी-पाँचवीं शताब्दी में कुछ वैष्णव भक्तों ने तामिल-प्रांत में वैष्णव-साहित्य रचा, जो बहुधा गीतात्मक था। इसका केंद्र आडवर हुआ। ये लोग नारायण विष्णु को ईश्वर मानते थे। इसी प्रकार वहाँ शैव-मत का भी बल था, जिसके साथ दार्शनिक ज्ञान भी बढ़ाया गया। इन्हीं महापुरुषों में से प्रसिद्ध महात्मा शंकराचार्य थे, जिन्होंने उत्तर आकर जगत्प्रसिद्ध दार्शनिक शैव-मत, अद्वैत-वाद तथा तार्किक मत का डंका आठवीं शताब्दी में बजाया। इनके प्राय. दो सौ वर्ष पीछे वहाँ तार्किक वैष्णव मत प्रबल पड़ा। इन वैष्णव सन्यासियों में रामानुजाचार्य, निंबार्क-स्वामी, मध्वाचार्य और विष्णुस्वामी प्रधान हुए। इनमें स प्रथम दो का वर्णन इस अध्याय में आ चुका है, और शेष का आगे आवेगा। ये लोग अद्वैत-वाद को अमान्य ठहराकर विशिष्टाद्वैत तथा द्वैत मतों पर चलते थे। इन्होंने शांकर मत की समीक्षा की है। रामानुजाचार्य वासुदेव-कृष्ण, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध को नारायण ही के उप-रूप मानते थे।

बंगाल और बिहार में बौद्ध-धर्म का मुख्य केंद्र था। इसमें दार्शनिकता तथा अवतार वाद की दो प्रधान शाखाएँ थीं। हमारे उपर्युक्त शैव तथा वैष्णव सन्यासियों ने भी अपने तार्किक मतों की दार्शनिकता के साथ अवतार-वाद का भी समर्थन किया। इन्हीं लोगों के धार्मिक आंदोलनों से सारे देश से बौद्ध-मत लुप्तप्राय हो गया, तथा हिंदू-मत का अक्षुण्ण पुन स्थापन हुआ। हमारे पूर्व-चंदीय काल के अंत-पर्यंत इन सब आंदोलनों का प्रभाव देश पर पूर्णतया पड़ चुका था। शंकरस्वामी शैव थे, नाथ-संप्रदायवाले शाक्त तथा रामानुजाचार्य आदि वैष्णव। बंगाल और बिहार में ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दियों में हिंदू तथा बौद्ध, दोनो मतों में तांत्रिक विचारों का प्राधान्य था। इनमें शैव-मत की मुख्यता रहती थी। इनका प्रादुर्भाव बहुत करके आसामी, हिंदुओं के प्रभाव से हुआ। जब ये लोग पूर्णतया हिंदू हो गए, तब इनके पुराने उग्र विचारों का

अवशिष्टांश तांत्रिक विचारों के रूप में हमारे बगाली और विहारी धर्म में घुसा। इसका प्रभाव शैव-मत पर भी बहुत कुछ पड़ा। आदि शक्ति का पूजन गौरी के रूप में हुआ, तथा उपागललिता और ललिता के रूपों में दक्षिण-मार्गीय विशुद्ध शाक्त-मत चला। फिर भी शाक्त-मत में मुख्यता कामुक विचारों की रही। इस सबध में आनदभैरवी, त्रिपुरसुन्दरी और ललिता के पूजन उठे। महाभैरवी उत्पादिका शक्ति हैं, और महाभैरव नाशकारी। त्रिपुरसुन्दरी शिव और शक्ति के मिलने का फल है। शक्ति-पूजकों का मत है कि अपने को स्त्री समझने के विचार की आदत डालनी चाहिए, क्योंकि ईश्वर स्त्री है। सबको स्त्री होने की इच्छा रखनी चाहिए। त्रिपुरसुन्दरी की पूजा तीन प्रकार से होती है। पहली विधि महापद्मवनस्थ शिव की गोद में बैठी हुई देवी का ध्यान करना है। दूसरी विधि चक्र-पूजन है, और तीसरी विशेपांग का पूजन। जब दाक्षिणात्य वैष्णव सन्यासी मगध में धर्मोपदेश करने लगे, तब प्रांतीय विचारों का फल उन पर भी विशेष पड़ा, और राधा के रूप में शक्ति पूजन का मान कार्ष्ण मत में भी बढ़ा। प्राचीन ग्रथों में राधा का नाम भी नहीं है। फिर भी हमारे सन्यासियों ने जनता पर प्रभाव डालने के विचार से अपने सात्त्विक वैष्णव-मत में वाममार्ग जोड़ दिया। महाराष्ट्र-प्रात में राधाकृष्ण का उतना मान नहीं है, जितना रुक्मिणीवल्लभ का। अवध-प्रात में भी दक्षिणमार्गस्थ सीताराम का पूजन है। फिर भी मदरास और मगध के प्रभाव से पश्चिमी युक्तप्रात के वैष्णव-मत में राधाकृष्ण की महत्ता हुई, और उपर्युक्त शाक्त-मत-संबंधी भक्तों के स्त्री-भाव से मिलती-जुलती सखी-सम्प्रदाय की भक्ति सबल पड़ी। संसार में तर्कात्मक विचार केवल पंडितों में सीमित रहते हैं, तथा भावात्मक एव भावनात्मक सर्व-साधारण द्वारा सम्मानित होते है। इसी कारण शाकर अद्वैत-वाद तो पंडितों का मामला रहा, और भावात्मक शैव-मत ज़ोर पकड़ गया, तथा निंबार्कस्वामी का भावनात्मक भक्ति-मार्ग सबल हुआ, और शाक्त-मत का कामुक पथ बढ़ा, किंतु उसका सात्त्विक विभाग वृद्धिंगत न हुआ।

हमारे यहाँ बौद्ध-मत उठा तो भगवान् बुद्ध के साथ पाँचवीं शताब्दी स० पू० में था, किंतु तीसरी शताब्दी स० पू० के पहले गृहस्थों में न आया। इस काल

सम्राट् अशोक ने इसे सर्व-साधारण में फैलाया। इसके हिंदू-समाज में फैलते ही यह तथा हिंदू-मत, दोनो आदान-प्रदान द्वारा विकसित हो चले, यहाँ तक कि समय पर बौद्ध-मत हीनयान से महायान के रूप में आ गया। हम पहली-दूसरी शताब्दी के सम्राट् कनिष्क को महायानीय त्रिपिटक संस्कृत में बनवाते देखते हैं। अशोक के समय से हर्षवर्द्धन तक प्रायः ८०० वर्ष बौद्ध-मत घटता-बढ़ता भारत में सार्वदेशीय धर्म रहा। दक्षिणी भारत और लंका में हीनयान का चलन था, एवं उत्तरी भारत, चीन, जापान, बर्मा आदि में महायान का। हीनयान में सदाचार, चारित्रिक तत्त्व आदि पर ज़ोर था, तथा महायान में दार्शनिकता, कर्मकांडीय उपासना, सगुणोपासना, अवतार-वाद आदि पर। सोचा जाता है, बौद्ध-मत एवं कुशन, हूण, शक आदि के ही प्रभाव से पौराणिक हिंदू-मत में अवतार-वाद, स्वर्ग, नरक, प्रतिमा-पूजन, तीर्थ-यात्रा आदि के भाव वर्द्धित हुए, जैसा आगे अभी आवेगा। बौद्ध-मत के समान जैनों में भी श्वेतांबर तथा दिगंबर मतों की दो शाखाएँ हुईं। इन दोनो में मुख्य सिद्धांत तो एक ही थे, किंतु अमुख्यों में बहुत भेद था। हमारे यहाँ अहिंसा का मान, पशुमेध आदि का त्याग इसी धर्म के प्रभाव से हुआ। जैन-मत ने हमारे शैव तथा शाक्त-मतों की उग्रता भी बहुत कुछ घटाई। बाहर से आई हुई जातियों के हिंदू बनने से इस मत में भद्दापन बहुत बढ़ा। इसी को हटाने तथा उपनिषदों एवं गीता के शुद्ध मतों के पुनःस्थापन के विचार से स्वामी शंकराचार्य ने अद्वैतवाद-मूलक शैव-मत देश में फैलाया। शंकर स्वामी का मान तो देश में बहुत हुआ, किंतु उनका तर्क-वाद धर्म के रूप में व्यापक न हो सका। आठवीं शताब्दी के पीछे नाथ-संप्रदाय काल बढ़ा, जिससे वाम-मार्ग-पूरित शाक्त-मत मगध तथा बंगाल में प्रबल पड़ा। चंद-पूर्व काल के कवियों का प्रभाव यदि कुछ पड़ा, तो वाममार्ग की वृद्धि में।

दसवीं शताब्दी के निकट योगमार्गी बौद्धों का सहजिया-संप्रदाय चलता था। म० म० पंडित हरप्रसाद शास्त्री ने इसकी कुछ प्राचीन पुस्तकों का संग्रह 'बौद्ध गान ओ दोहा' में प्रकाशित किया। उन्होंने कन्ह और सरह को इसी में माना है।

शास्त्रीजी इन्हें दसवीं शताब्दी के समझते हैं, किंतु बाबू राखालदास बैनर्जी चौदहवीं शताब्दी के। कुछ पंडितों का विचार है कि सहजिया-मत चौदहवीं शताब्दी तक चला, तथा गोरख-पथ में अब भी सम्मिलित है। गोरख-पथ के चलने पर यह सहजिया-मत लुप्त हुआ।

चंद-पूर्व के कवियों का प्रभाव उस काल जैसा था, सो ऊपर आ चुका है। इस काल के आरंभ में शंकराचार्य ने तर्कवाद चलाकर धर्म को परिष्कृत करना चाहा, किंतु उनके पीछे भारत ने कोई उच्च उपदेशक न उत्पन्न कर पाया। इतने ही में ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ से उत्तरी भारत में मुसलमानों के आक्रमण संपत्ति और धर्म, दोनो पर होने लगे। हिंदुओं ने उन्हें रोकने में अपने को अक्षम पाया, और उत्तरी भारत निर्बलता के गर्त में पड़ गया। बारहवीं शताब्दी के आदि में दाक्षिणात्य वैष्णवों ने शांकर तर्कवाद में भक्ति मिलाकर, धार्मिक सुधार करके समाज-संगठन किया, जिससे उसमें अपने ऊपर मुसलमानी आक्रमणों का धार्मिक प्रभाव रोकने की शक्ति आई। अध्यात्मरामायण, हनुमन्नाटक, गीतगोविंद आदि संस्कृत-ग्रंथों द्वारा भी भक्ति का प्रचार बढ़ाया गया। उत्तरी भूपालों ने भी अपनी शक्ति बढ़ाने का असफल परिश्रम किया। समाज में देश-भक्ति की कमी तथा संगठनाभाव से सबलता की वृद्धि न हो सकी, और हमारा समर-शास्त्र उच्च न हुआ। कवि तो अब तक ३६ मिल चुके हैं, किंतु उनमें साहित्यिक उच्चता नहीं समझ पड़ती।

समय के फेर से उस काल की बहुत कम कविता अब प्राप्त है। हम नहीं कह सकते कि उस काल के हमारे कविगण किस प्रकार के विषयों पर लोक-रंजन करने का प्रयत्न किया करते थे। जितना कुछ सामने है, उससे प्रकट होता है कि उन महाशयों ने धर्म और नीति पर ही अधिक श्रम किया, विशेषतया धर्म पर। स्मरण रखना चाहिए कि सं० १०५८ से सं० १०८२ तक महमूद के आक्रमण भारत पर होते रहे। हमारा पूरा भारत उस काल तक अशक्त न था, क्योंकि दाक्षिणात्य चोल नरेशों के पास ६ लाख सेना कही गई है, और उन्होंने बर्मा तक विजय-यात्राएँ की थीं। इधर महमूद के पास केवल २४ हज़ार सेना थी। उत्साह की भी कमी न थी। उत्तरी और मध्य-भारत के भोजदेव आदि

नरेशों ने मिलकर महमूद का सामना किया था, किंतु समर-कौशल की कमी से भारतीयों को पराभाव प्राप्त हुआ। स्त्रियों ने आभूषण तक बेचकर युद्ध के लिये धन एकत्र किया किंतु समर-कौशल एवं साहस के अभाव में कोई युक्ति काम न आई। महमूद चंदेल-नरेश महाराजा धंग की सेना देख हतोत्साह होकर दूसरे दिन भागने को ही था कि रात ही में युद्ध के पूर्व धंग की हिम्मत ने जवाब दे दिया, और वह स्वयं भाग खड़े हुए, जिससे दूसरे दिन वापसी का सकल्प किए हुए मुसलमानों ने कायर चंदेलों को खदेड़कर मारा, और लूटा। दाक्षिणात्य चोल नरेशों के चित्त में भारतीयता का ऐसा अभाव था कि महमूद से अपने धर्म और देश को बचाने के स्थान पर उन्होंने उत्तरी भारत के उन प्रांतों को लूटा, और उसकी कृपाण से बच गए थे। प्रसिद्ध शैव मंदिर सोमनाथ पर हमारी इतनी श्रद्धा थी कि उसमें एक हज़ार नाचनेवाले थे, नित्य नवीन गंगाजल मूर्ति पर चढ़ाने के लिये आता था, तथा काश्मीरी फूलों का एक झौवा नित्यप्रति उपस्थित किया जाता था। इतना सब होते हुए भी केवल २५ हज़ार शत्रु-सेना से प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग सोमनाथ की रक्षा न हो सकी। युद्धकर्ता प्रस्तुत थे, किंतु समर-कौशल की कमी थी, भारत मौजूद था, किंतु भारतीयता का विचार न था। इन बातों से प्रकट होता है कि हमारे तत्कालीन कविगण तथा समाज ने अपने पूर्ण उत्तरदायित्व को न पहचाना था। धार्मिक साहित्य तो बनता था, किंतु देश-प्रेम का अभाव था। संस्कृत-साहित्य तथा व्याकरण पर ध्यान था, देशरक्षा पर नहीं। अनावश्यक विषयों की धुनि में हमारे पूर्व-पुरुष आवश्यक बातों को भूल बैठे थे। कारण भी सुन लीजिए।

भारतवर्ष में वह क्रांति का समय था। उसके पूर्व दो क्रांतियाँ और हो चुकी थीं, अर्थात् आर्य-आगमन तथा बौद्ध-मत का प्रादुर्भाव। आर्य-आगमन के पूर्व हमारे यहाँ रुद्र-पूजन की प्रधानता थी, जिसके साथ शिश्न पूजन भी चलता था। आर्यों ने प्राचीन पूजन-विधान में हस्तक्षेप न करते हुए भी शिश्न-पूजन को बहुत ही निंद्य समझा। ब्राह्मण-काल तक पूजन-विधानों की वृद्धि होती आई, यहाँ तक कि राजन्यवर्ग को उससे कुछ अनिच्छा हो गई, जिससे कर्म-कांड के साथ प्रवीण ब्राह्मणों और क्षत्रियों द्वारा ज्ञान कांड की वृद्धि हुई।

बौद्ध-काल में याज्ञिक विधान यथावत स्थिर था, तथा धार्मिकता एवं सामाजिक नियमों की प्रचुर वृद्धि से क्षत्रियों की अनिच्छा फिर प्रबल पड़ी, जिससे बौद्ध और जैन-धर्मों द्वारा वैदिक मत पर घोर आघात हुए, किंतु ये आक्रमण तार्किक-मात्र थे, शस्त्रास्त्र-मय नहीं। चौथी शताब्दी संवत् पूर्व के पहले होने वाले दाक्षिणात्य शास्त्रकार बोधायन तथा आपस्तंब के ग्रंथों में कोई प्रांतीयता नहीं है, और वे समान रूप से सारे भारतवर्ष में माने गए।

इससे प्रकट है कि उनसे एक-दो शताब्दी पूर्व से ही दक्षिण तक में आर्य-सभ्यता का अच्छा विस्तार हो चुका था। रेल, तार आदि के अभाव में हमारे पूर्व-पुरुषगण इतने बड़े देश को सँभाल न सके, जिससे साम्राज्य के स्थान पर खंड-राज्य-मात्र स्थापित हो सके। उन लोगों ने सामाजिक नियम ऐसे सुंदर बनाए कि सैकड़ों राज्यों की भिन्नता होते हुए भी सारे भारतवर्ष में आर्य-सभ्यता प्रायः एक-सी रही। यह बड़ी महत्ता की बात थी, जो हमारे पूर्व-पुरुषों ने संपादित की। किंतु ऐसा करने के लिए उन्हें भिन्नता को ध्यान से हटाकर एकता पर विशेष विचार करना पड़ा होगा, जिससे राजकीय शक्ति की महत्ता पर कम ध्यान रह गया, अथच समाज के कुछ शेष अंगों पर अधिक। इन्हीं कारणों से जहाँ उन लोगों ने आर्य-सभ्यता के सौंदर्य को सारे देश में व्याप्त कर दिया, वहीं राजकीय शक्ति पर यथोचित ध्यान न रहने से देश-भक्ति, समर-कौशल आदि की क्षीणता हो गई, जिससे विदेशियों ने कई बार हमें सुख से जीत लिया। हमारे समाज ने राजकीय तथा शेष सामाजिक संस्थाओं को इतना पृथक् मान रक्खा था कि दूसरी पर आक्रमण न होते देखकर राजकीय शक्ति पर जो बाह्य आघात हुए, उनकी महत्ता पर यथायोग्य ध्यान न दिया। हमारे देश पर मग, गुर्जर, प्रमार, सीदियन, तूरानियन, हूण आदि के आक्रमण समय-समय पर हुए। पहली-दूसरी शताब्दी में उत्तरी भारत तुरकी (कुशान) साम्राज्य का ही अंग हो गया। इन लोगों में से बहुतों ने हमारी राजकीय शक्तियों को सुगमता-पूर्वक पद-दलित कर डाला, और हमारे सामाजिक संगठन ने इन पराजयों से अपना कोई विशेष लगाव न समझा। आगंतुकों ने भी भारतीय राजशक्ति पर तो बल का प्रयोग किया, किंतु सामाजिक शक्ति का परिपोषण ही अपना धर्म माना।

इससे हमारे बौद्ध तथा जैन-सिद्धांतों के साथ समय-समय पर इन आगंतुकों के भी विचार समाज पर आदान-प्रदान द्वारा प्रभाव डालते रहे। प्राचीन विचारा-श्रयी भारतीयों ने वैदिक साहित्य को प्रबल रखना चाहा, तथा इतरों ने भी अपने-अपने भावों से समाज को प्रभावित करना चाहा। इन प्रयत्नों में युद्धादि न होकर केवल मानस-संग्राम होते रहे, और समय के साथ बहुमत के अनुसार हमारे धार्मिक, सामाजिक आदि भाव बदलते रहे, यहाँ तक कि वैदिक के स्थान पर पूरा पौराणिक मत स्थापित हो गया। इस नवीन मत में किस-किसके कितने कितने विचार सम्मिलित हुए, इसका पूर्ण निर्णय दुस्तर है।

समझ पड़ता है, ऋग्वेद से देव-बाहुल्य आया, यजुर्वेद से कर्म-कांड, साम से अर्चा-भक्ति, वेदांत से शास्त्र और सूत्रों से स्मृतियाँ। हमें यजुर्वेद और उप-निषदों से परमेश्वर प्राप्त हुए, अथर्ववेद से उपासना एवं तांत्रिक धर्म, गीता से अवतार तथा बौद्ध-मत एवं कुशान साम्राज्य से प्रतिमा का प्रवर्द्धित प्रचार। ब्राह्मण-ग्रंथों से पौराणिक गाथाओं की प्रणाली मिली। बौद्ध मत जब तक केवल गृह-त्यागियों में रहा, तब तक हीनयान के रूप में रहकर वह तथागत के सिद्धांतों से पूर्णतया प्रभावित रहा, किंतु ज्यों ही गृहस्थों में भी उसकी व्याप्ति हुई, त्यों ही हिंदू विचारों का प्रभाव उस पर विशेषतया पड़ने लगा, और उसका प्रभाव इसी भाँति हिंदू-समाज पर पड़ने लगा। दोनो ने दोनो के सिद्धांत ग्रहण किए, जिससे बौद्ध मत समय पर पाली को छोड़ संस्कृत-भाषा में महायान के रूप में आ गया। उधर हमारा शैव-सिद्धांत महायान के बहुत निकट हो गया। जैनों में भी ऐसे ही कारणों से श्वेतांबर तथा दिगंबर-विभाग स्थापित हुए। इन दोनो मतों में मांसाशन-वर्जन, पिता आदि की प्रभाव-वृद्धि से पुत्रों आदि पर अनुचित दबाव एवं अनेक अन्य ऐसी ही बातें थीं, जिनसे व्यक्तिगत स्वतं-त्रता में बाधा पड़ती थी। उधर हिंदू-मत में यह दोष न था। धार्मिक सिद्धांतों की रचना इन सबमें प्राय बराबर हो गई थी। अतएव जब-जब राजमान आदि के कारण बौद्ध-मत प्रबल पड़ता था, तब-तब, कुछ काल के लिये, देश में बौद्ध लोगों की संख्या बढ़ जाती थी, किंतु उन कारणों के हटते ही वह फिर गिर जाती थी। दशा यह थी कि बौद्धों, जैनों, हिंदुओं आदि में विचारों, पूजनों

आदि से इतर कोई सामाजिक बहिष्कार न था, और लोग यथामति हिंदू, बौद्ध या जैन हुआ करते थे। उनके ऐसा करने में रोटी, बेटी आदि के व्यवहार में कोई भेद नहीं पड़ता था। यही दशा आज दिन लंका, जापान, चीन आदि में बौद्धों तथा ईसाइयों की है। इस प्रकार धीरे-धीरे समाज में हिंदू-मत एक बार फिर व्यापक हो गया। नवागतुकों के भी कुछ सिद्धांत लेकर इसकी व्यापकता प्राय पूर्णता को पहुँच गई, और हमारा पूरा पौराणिक मत बनकर तैयार हो गया। फिर भी बहुत-से बौद्ध और जैन पडित तर्क करते जाते थे। उत्तरी भारत में इन लोगों का तार्किक दमन स्वामी शंकराचार्य ने करके शैव-मत के साथ अद्वैतवाद को आठवीं शताब्दी में दृढ़ किया। उधर दक्षिण में स्वामी रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत-मत एवं वैष्णव-सप्रदाय को दृढ़ करके दक्षिण में भी जैन-मत की कमर तोड़ दी। वहाँ बौद्ध-मत का प्रचार अधिकता से कभी नहीं हुआ था। निंबार्क स्वामी ने दक्षिण से उत्तर आकर बिहार तथा युक्तप्रांत में भी शाक्त मत-गर्भित वैष्णवता का प्रचार बढ़ाया। अब बौद्ध-मत केवल बिहार तथा वायव्य सीमा-प्रात-भर में रह गया। वहाँ भी समय पर काबुल का बौद्ध-राज्य अरबी मुसलमानों द्वारा नष्ट हुआ देखकर एक ब्राह्मण-वंश ने वहाँ अपना राज्य फैलाया। उत्तरी पंजाब में भी एक ब्राह्मण-वश शासक था, और सिंध-प्रांत एक तीसरे ब्राह्मण-कुल के अधिकार में था। अरबी मुसलमानों ने सबसे पहले काबुल के बौद्धों को हटाकर तथा सिंध से ब्राह्मण-राज्य निर्मूल करके सं० ७६९ में उस प्रात में अपना शासन फैलाया। इन्हीं मुसलमानों के आगे बढ़ते हुए आक्रमणों को समय पर रावल खुमान ने हटाया। अरबी मुसलमानों के कारण सिंध में सूफी-मत का भी आगमन हुआ। इन मुसलमानों ने सभ्यता का अच्छा प्रयोग किया। इनसे भारतीय सभ्यता को कोई क्षति न पहुँची, वरन् इनके द्वारा भारतीय पडित लोग बगदाद जाकर मुसलमानी सभ्यता को बहुत कुछ प्रभावित कर सके। महमूद गज़नवी के आक्रमणों से उत्तरी पंजाब का ब्राह्मण-राज्य नष्ट हो गया, तथा काबुलवाला पहले ही टूट चुका था। इस प्रकार मुसलमान-बल-वर्धन से तीनो भारतीय ब्राह्मण-राज्य बिगड़ गए, और काबुल-प्रांत भारत की सभ्यता एवं शासन से निकल गया। वायव्य सीमा से बौद्ध-मत पहले ही जा चुका था, और बिहार से गोरी के आक्रमण द्वारा नष्ट हुआ।

मुसलमान-आक्रमण प्रारंभ तो सं० ७६६ से हुआ, जब अरबों ने सिंध-राज्य प्राप्त किया, किंतु उसके मुख्य प्रभाव महमूद ग़ज़नवी (१०५८) तथा मोहम्मद ग़ोरी (१२४९) के समयों में प्रदर्शित हुए। अन्य उपर्युक्त आक्रमण क्रांति-पूर्ण क्यों न समझे गए, तथा महमूद के समय से उनका प्रभाव ऐसा क्यों माना गया ? इसका मुख्य कारण राजनीतिक न होकर सामाजिक है। उपर्युक्त सात-आठ जातियाँ यहाँ आईं तो सही, और कुछ काल तक पृथक् भी रहीं, किंतु पीछे ऐसी हिल-मिल गईं कि वह पार्थक्य बिलकुल नष्ट हो गया। आज कौन कह सकता है कि इसमें से तातार, सीदियन, हूण आदि कौन हैं ? सब-के-सब हिंदू हैं। उन लोगों के प्रभाव देश तथा समाज पर अवश्य पड़े, हमारा धर्म भी इस प्रभाव से बाहर न रहा, किंतु समय पर हम लोगों में रोटी-बेटी तक के संबंध इन तुर्कों आदि तक से ऐसे हुए कि हम दोनों एक हो गए। इन्हीं में से अनेकानेक जातियाँ हमारे चातुर्वर्ण्य में मिल गईं। ब्राह्मणों तक के संबंध क्षत्रियों आदि से होते थे। गौतम बुद्ध के समय ब्राह्मण-कुमारी मागधी तथा वैश्या श्यामा क्षत्रिय उदयन को ब्याही थीं। इधर आठवीं शताब्दी तक एक यायावर महाशय को क्षत्रिय-कन्या ब्याही थी। यायावर ऐसे भिक्षुक ब्राह्मण को कहते हैं, जो अपने यहाँ एक दिन से अधिक का भोजन न रक्खे। और भी बहुतेरे उदाहरण नवीं शताब्दी तक के हैं। फिर क्या कारण था कि तुर्कों आदि तक को अपनानेवाले हिंदू-समाज ने मुसलमानों से इतना घोर पार्थक्य रक्खा ? यही कारण ऐसा प्रबल है, जो मुसलमानागमन को हमारे लिये क्रांति का काल बनाता है। उपर्युक्त विजयिनी धाराएँ केवल राज्य-प्राप्ति के लिये आईं, सो हमारे समाज में वे सुगमता-पूर्वक हिल मिल गईं। इधर मुसलमान न केवल राज्यार्थ, वरन् ग़ाज़ी बनकर हमें धर्म सिखलाने आए, सो भी बल-पूर्वक। उन्होंने हमारा राज्य जीतकर संतोष न किया, वरन् हिंदू-समाज से भी अनंत युद्ध छेड़ दिया। उन्होंने हममें मुशरिकपन तथा प्रतिमा-पूजन के दो भारी दोष समझे, जिन्हें हटाने के लिये न केवल तर्कों का, वरन् खड्ग तक का प्रयोग किया। हमारे यहाँ अनंत काल से मत-परिवर्तन होता आया था, किंतु ऐसा बल से न होकर तर्क द्वारा होता था। मुसलमानों ने तर्क न करके हमारे समाज पर मत-परि-

वर्तनार्थ बल का प्रयोग किया। उनके लिये यह एक साधारण घटना थी, क्योंकि ऐसा वे अपने भाई-बिरादरों तक से कर चुके थे, किंतु हमारे लिये यह अनहोनी-सी घटना हुई। हम ईश्वर से कैसा भी संबंध रक्खें, इसमें दूसरे से क्या प्रयोजन? हिंदू वास्तव में मुशरिक हैं भी नहीं, क्योंकि वे ईश्वर का कोई साझेदार नहीं मानते। हमारे ब्रह्मा, विष्णु और महेश ईश्वर न होकर उसकी शक्ति अथवा भाव-मात्र हैं। वे व्यक्ति नहीं हैं, वरन् एक ईश्वर के पृथक् भावों अथवा शक्तियों का बोध-मात्र कराते हैं। प्रतिमा-पूजन भी हमारे यहाँ बौद्धकाल से ही कुछ अधिकता से चला था, और तुर्कों के प्रभाव से प्रबल पड़ा था। फल यह हुआ कि तुर्कों ने हमारे यहाँ प्रतिमा-पूजन का प्रचार बढ़ाया, तथा अफ़गानों ने उसे बल से हटाने का प्रयत्न किया। हमने उसे प्रेम-पूर्वक माना था, किंतु बल से छोड़ने से इनकार किया। जब मुसलमानों ने बल-पूर्वक हमारा धर्म बदलना चाहा, तब जो काम औरों द्वारा प्रेम-पूर्वक होता आया था, वही खड्ग द्वारा फैलाए जाने से हमने इनकार कर दिया, और ऐसे उच्च विषय पर बल-प्रयोग करते देख उन्हें बहुत ही नीच मानकर उनका सामाजिक बहिष्कार किया। उनके साथ खाने-पीने, वरन् उन्हें छूने तक में हमने पाप माना। यही मुख्य भेद था, जिसने मुसलमाना-गमन को हमारे लिये क्रांति-काल कर दिया। इसी समय से हमारे समाज का मुसलमानों से धार्मिक युद्ध हुआ, जो प्रायः सं० १०८० से चलकर अकबर के समय (१६१३-१६६२) में जाकर समाप्त हुआ। इस लंबे काल में हमारे समाज ने राजकीय बल खोकर भी अपनी पृथक् सत्ता कैसे स्थापित रक्खी? इसी प्रश्न के उत्तर में हमारा समाज-शास्त्र तथा तत्कालीन साहित्य बहुत कुछ बतलाता है। संतों तथा संत कवियों ने भी इस विषय पर बहुत कुछ प्रयत्न करके समाज-संगठन में योग दिया था। देखने में यह एक बहुत बड़ी घटना है कि पराजित समाज पर कम-से-कम संवत् १२-४९ से १६१३ तक मत परिवर्तनार्थ प्रायः साढ़े तीन सौ वर्षों तक निरंतर बल-प्रयोग होता रहा, तथा मुसलमानी गृहीत हिंदुओं को भाँति-भाँति से प्रोत्साहन मिलते रहे, यहाँ तक कि कई भाइयों में यदि एक मुसलमान हो गया तो उसी को सारी संपत्ति मिल गई, किंतु तो भी समाज ने मत परिवर्तन न किया। जिन

लोगों ने पहले से आए हुए विजातियों के प्रेम-पूर्ण व्यवहार से अपने मत पर सुख-पूर्वक उनका थोड़ा-बहुत प्रभाव मानकर उसमें धीरे-धीरे बहुत भारी परिवर्तन कर डाला (क्योंकि उन विजातियों ने विदेशीपन छोड़कर अथच हमारे समाज के अंग होकर एवं हमारे बहुमत में मिलकर स्वाभाविकरीत्या अपना प्रभाव डाला था, वरन् यों कहें कि उनका प्रभाव क्या, हमारे समाज के अंगों का प्रभाव पारस्परिक आदान-प्रदान द्वारा, पूरे समाज पर पड़ा था।) उन्हीं हिंदुओं ने प्राण,धन, महत्ता आदि सभी वस्तुओं को जोखिम में डाला, किंतु बल-पूर्वक पर-मत ग्रहण न किया। अकबर से पूर्ववाला मुसलमान-कालीन भारतीय इतिहास इसी भारी प्रश्न पर हिंदू-मुसलमान-संघर्ष के प्रभाव दिखलाता है। सामाजिक बहिष्कार के इस प्रश्न ने समय पर धार्मिक रूप तक ग्रहण किया, किंतु अब तक इसका उचित निर्णय नहीं हो पाया है। चंद-पूर्वीय हिंदी साहित्य इस भारी प्रश्न पर कोई प्रकाश नहीं डालता। इतना ही समझ पड़ता है कि पृथ्वीराज से पहलेवाले हिंदुओं ने इसे यथोचित-रीत्या अवगत नहीं कर पाया था। महमूद ने उत्तरी पंजाब तक अपना राज्य फैला लिया था। किंतु उसके उत्तराधिकारी बल-हीन शासक थे, सो उनका कोई कथनीय संघर्ष हिंदू-नरेशों से नहीं हुआ। वीसलदेव ने मुसलमान भूपालों को परास्त अवश्य किया, किंतु उन्हें भारत से निकालने में वह कृतकार्य न हुए। संभवतः उनकी वृद्धि भर रोक पाए। भारत ने स्वामी शंकराचार्य के पीछे दो सौ वर्षों तक कोई महापुरुष न उत्पन्न किया। सिकंदर के पीछे,केवल छः साल में भारत ने ग्रीक-प्रभाव यहाँ से लुप्त कर दिया था, किंतु इस काल का समाज ऐसा करने में समर्थ न हुआ। इतनी योग्यता रखते हुए भी पीछे उसने सामाजिक महत्ता के रक्षण में अच्छा पुरुषार्थ दिखलाया। मुसलमानों ने वास्तव में हमारी केवल राजसत्ता को अवश्य जीता, किंतु समाज को जीतने के प्रयत्न में उन्होंने ऐसा धोखा खाया कि वे अपना राज-पाट, सब कुछ खो बैठे।

इस अध्याय में हमें ३६ कवि मिलते हैं, जिनमें नंबर १, १६, २१, २२, २५, २७, २८, ३१, ३२, ३४, ३५ और ३६ साधारण समाज के थे, और शेष सब नाथ-संप्रदाय के। नाथों की शिक्षा शाक्त मत की थी, जिसमें वाममार्ग

की प्रधानता है। इनमें दारिकपा (नं० १०) उड़ीसा-नरेश थे, तथा सोमेश्वर (नं० ३५) महाराष्ट्र-नरेश। राजा नंद (नं० ३१) कालिंजर-पति कहे जाते हैं, किंतु यह बात अनिश्चित है। मसऊद (नं० ३३) तथा कुतुबअली (नं० ३४) मुसलमान थे। शेष कवियों में जैन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, कोरी, मल्लाह, कायस्थ आदि कई जातियाँ मिलती हैं। देशानुसार उज्जैन, राजपूताना, आसाम, उड़ीसा, कर्णाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, श्रावस्ती, बिहार आदि मिलते हैं। सबसे अधिक कवि बिहार, विशेषतया नालंद के थे। मीनपा (नं० १५) मछंदरनाथ (मत्स्येंद्रनाथ, महात्मा गोरखनाथ के गुरु) के पिता थे, और कंबलपाद (नं० १९) उन्हीं (मछंदरनाथ) के गुरु। मीनपा का समय सं० ८८० और कंबलपाद का ९२९ माना गया है। इस हिसाब से महात्मा गोरखनाथ का भी समय बहुत पुराना पड़ता है। इस विषय पर आगे भी कथन होंगे। स्थानों के वर्णन से प्रकट है कि हिंदी का क्षेत्र उस काल विस्तीर्ण था। दो मुसलमान कवि ऐसे पुराने समय में हैं, जिससे उनमें उन्नति और विद्या-प्रेम प्रकट होते हैं। इन कवियों में से कुछ की भाषा तो अच्छा हिंदी-पन लिए हुए है, और कुछ में प्राचीनता के अंश विशेष हैं। ऐसी पुरानी रचनाओं में भी बीच-बीच में हिंदीपन का रूप आ जाता है, जिससे प्रकट है कि यद्यपि अपभ्रंश का अंश उनमें अधिक है, तथापि हिंदीपन की भी प्रस्तुति से ये लोग भी प्राचीन हिंदी-कवि माने गए हैं। कुछ कवियों में बँगलापन भी है। कुल मिलाकर हमारा चंद-पूर्व का हिंदी-विभाग समय को देखते हुए अब संपन्न देख पड़ने लगा है। अपभ्रंश में साहित्य छठी शताब्दी से प्रारंभ होकर ग्यारहवीं तक चला। यह साहित्य बहुत था, किंतु आकार में संस्कृत एवं प्राकृतवाले के समान न था।

तीसरा अध्याय
पूर्व प्रारंभिक हिंदी
(२) रासोकाल (१२०१—१३४७)

(३७) अक्रम फ़ैज़ डीडवोणा मारवाड़-निवासी ने संवत् १२०५ से १२५८ तक वर्तमान-काव्य की रचना और वृत्तरत्नाकर का अनुवाद किया। इसके आश्रयदाता महाराज माधवसिंह जयपुर-नरेश थे। इस कवि का जन्म-काल संवत् ११७९ सुनने में आया है।

(३८) नरपति नाल्ह कवि के समय में विनोद में पहले भ्रम पड़ गया था। इनका उचित समय सं० १२१२ है, जैसा कि अभी दिखलाया जायगा। इनकी भाषा राजपूतानी की ओर झुकी हुई उस काल की कविता का उदाहरण दिखलाती है। यथा—

हंसवाहण मृगलोचनि नारी सीस समारइ दिन गिणइ ;
भीण सिरजइ उलि गाणा घर्रा नारि जाई दीठा उणि कुरिती।।
जब लगि महियल उग्गइ सूर, जब लगि गंग वहइ जल पूर ;
जब लगि प्रोथिमी नइ जगन्नाथ, जाणी राजा सिर दीधौ हाथ।

रास पहूँतो राव को बाजै पडह पखावज भेर ;
कर जोरे नरपति कहइ अर्चाचल राज कीजो अजमेर।

नरपति नाल्ह ने अपना समय निम्न-लिखित छंद में लिखा है—

बारह सौ बहोत्तरा मँझारि, जेठ वदी, नवमी बुध वारि ;
नाल्ह रसायण आरंभइ, सारदा तूठी ब्रह्मकुमारि।

बहोत्तरा का अर्थ बाबू श्यामसुंदरदास ने २० लिखा था, जिसे हमने भी मान लिया था। पीछे से लेखकों ने कहा कि बहोत्तरा का अर्थ बरहोत्तरा अर्थात् बारह ऊपर है। छंद बारह सै बहोत्तरा कहता है, जिसका अर्थ है, बारह सै के ऊपर बारह अर्थात् सं० १२१२, सो अन्य प्रमाणों से भी ठीक बैठता है। नरपति नाल्ह बीसलदेव की प्रशंसा में गीतात्मक रचना करता है ; यह ग्रंथ हाल में हमने भी देखा है। प्रायः ११५ पृष्ठों का ग्रंथ है। इसमें बीसलदेव का वर्णन वर्तमान काल में है, और इधर उनके शिला-लेख

सं० १२२० तथा १२१० के मिले हैं। अतएव नरपति नाल्ह का समय १२१२ युक्ति-संगत बैठता है। नरपति बीसलदेव द्वारा मुसलमान-पराजय का कथन नहीं करता, यद्यपि उन्हें कई युद्धों में बीसलदेव ने हराया था। जिन लड़ाइयों का वर्णन उनके राजकवि श्रीसोमदेव ने 'ललितविग्रहराज-नाटक'-नामक संस्कृत-ग्रंथ में किया। नाल्ह-कृत रासो के चार खंड हैं, जिनमें बीसलदेव का भोज (वंशी) की पुत्री से विवाह कथित है, तथा रानी से कुछ अनबन के कारण उनका उड़ीसा-प्रांत में ससैन्य जाना, वहीं बारह वर्ष रहना, रानी का विरह तथा विरह निवेदन से राजा की वापसी के कथन हैं। भाषा इसकी साहित्यिक अर्थात् पिंगल है। टीकाओं का थोड़ा-सा सहारा लेने से वह सुगमता-पूर्वक समझ में आ सकती है। इसमें साहित्योत्कर्ष साधारण श्रेणी का होने पर भी ग्रंथ में वर्णन-पूर्णता का कुछ स्वाद मिलता है। कुछ ऐतिहासिक अशुद्धियाँ भी हैं, किंतु वे भाग प्रक्षिप्त मानने चाहिए। प्राचीनता के कारण तथा इतिहास पर कुछ प्रकाश डालने से यह ग्रंथ बहुत उपादेय है। श्रीमान् ओझाजी का विचार है कि बीसलदेव रासो की भाषा इसे हम्मीरदेव के समय की रचना प्रमाणित करती है। वर्तमान काल के लेखक में ऐतिहासिक अशुद्धियों का होना खटकता अवश्य है, किंतु इसकी भाषा समय के साथ बदली है ही, सो ग्रंथ में कुछ नए भागों का जुड़ जाना स्वाभाविक है। गीत-काव्य में ऐसा हो ही जाता है। हमारे यहाँ वीर-गाथाएँ प्रबंध-काव्य और गीत-काव्यों के रूपों में मिलती हैं। पृथ्वीराज-रासो प्रबंध-काव्य है, और बीसलदेव-रासो गीत-काव्य, इस ग्रंथ में एक वीर का वर्णन अवश्य है, किंतु शौर्य का कथन न करके यह उनके अन्य चरित्रों-मात्र का विवरण देता है। इस कारण यह वीर-गाथा है भी नहीं। बीसलदेव ने दिल्ली और हाँसी के प्रांत अपने राज्य में मिलाए यही उनके द्वारा मुसलमान-पराभव का फल था।

हमारे बहुतेरे वीर-वर्णन मुक्तकात्मक भी हैं। जय-काव्य से वीरों का प्रोत्साहन एवं वीर-पूजन द्वारा देश-हित होता है। वीरों द्वारा कवि-प्रोत्साहन भी होकर साहित्य-वृद्धि होती है। किन्हीं ग्रंथों में वीरों की प्रधानता है, तथा प्रोत्साहन गौण है, और कहीं-कहीं शौर्य-प्रोत्साहन के प्राधान्य से वीरों के कथन

उदाहरण से हो जाते है। किसी-किसी ग्रंथ में एक शूर का कथन है, और किसी में रघुवंश की भांति अनेक का। कहीं कथा-प्रधान है, और कहीं मुक्तकता। इनमें कहीं-कहीं साहित्यांश भी प्रधान हो जाते है। मुक्तकों का चलन मुंज और भोज के समय (सं० १०३६) से चला, और, वह अब तक चला जा रहा है, यद्यपि उसके विषयों में फेरफार होता रहा।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के खोज में रावल समरसिंह तथा महाराजा पृथ्वीराज के नौ दानपत्र मिले है। उनमें अनद-संवत् लिखा है, सो प्रचलित संवत उसमें ९० जोड़ देने से मिल सकता है। उन लेखों में से संवत् ११२९ और १२३५ के दो लेख हम यहाँ उद्धृत करते है—

सही

स्वस्ति श्री श्री चीत्रकोट महारानाधीराज तपे राज श्री श्री रावल जी श्री समरसी जी वचनातु दा अमा आचारज ठाकर रुषीकेष कस्य थाने दलीसु डायजे लाया अणीराज में ओपद थारी लेवेगा ओपद उपेर माल की थाकी है ओ जनाना में थारा वसरा टाल ओ दुजो जावेगा नहीं ओर थारी वैठक दली में ही जी प्रमाणे परधान वरोबर कारण देवेगा और थारा वंस का सपूत कपूत वैगाजीने गाम गोणों अणी राज में खायगा पायगा जायेगा ओर थारा चाकर घोडा को नामो कोठार सूँ मला जायेगा ओर थूं जमाखानरी रीजो मोई में राज थान बाद जो अणी परवाना री कोई उलगण करेगा जी ने श्री एकलीगजी की आण है, दुबे पंचोली जानकीदास सं० ११२९ काती वीद ३

अर्थ

टीक

श्री स्वपत्र चित्तौर स्थान के शासक महाराजाधिराज नृपेराज श्री श्री रावलजी समरसीजी की आज्ञा से आचार्य ठाकुर ऋषीकेश को दिया गया। हम तुमको दिल्ली से दायज में लाए है। इस राज में तुम्हारी औषध की जायगी। औषध-विभाग के तुम निरीक्षक रहोगे। जनाने में तुम्हारे वंशधरों को छोड़कर दूसरा नहीं जायगा। दिल्ली में जैसे तुम्हारी दरबारी बैठक प्रधान के पास थी, वह यहाँ भी रहेगी। तुम्हारे वंशज चाहे सपूत हों, चाहे कपूत, उन्हें जागीर

का गाँव खाने-पीने को मिलेगा, और घोड़ा भी मिलेगा, और तुम्हारे घोड़े और नौकरों का पालन सरकारी कोठार से होगा। तुम खातिरजमा रक्खो, और मोई-ग्राम में अपना घर बनाओ। जो कोई इस परवाने को उल्लंघन करे, उस पर श्रीएकलिंगजी का क्रोध पड़े। यह आज्ञा दुबे पंचोली जानकीदास के द्वारा दी गई। कार्त्तिक बदी ३, सवत् ११३९।

सही

श्री श्री दलीन महाराजं धीराजनं हिंदुस्थानं राजंधानं संभरी नरेस पुरब-दुऊी तषत श्री श्री माहानं राजंधीराजंन श्री पृथीराजी सु साथनं आचारज रुषी-केस धनंत्रि अप्रन तमने काकाजीन के दुवा की आरामं चओजीन के रीज में राकद रुपीआ ५०००) तुमरे आहाती गोढ़े का परचा सीवाअ आवेंगे। पजानं से इन को कोई माफ करेंगे जीन को नेर को के अधंकारी होवेंगे सई दुबे हुकम के हडमंत राअ संमत ११४५ वर्षे आसाढ-सुदी १३

अर्थ

ठीक

श्री श्री महाराजाधिराज पृर्थ्वीराजजी (शासक) सुस्थान दिल्ली पूर्वी हिंदुस्तान के महाराजाधिराज संभरी राजाओं की राजधानी ने आचार्य ऋषीकेश धन्वंतरि को (दिया) अपर तुमने काकाजी की दवा करके उन्हें अच्छा किया है, जिस कारण ५०००) नक़द और हाथी-घोड़े का ख़रचा तुम्हें राजकोष से भेजा जायगा। इस आज्ञा के पूरे होने में जो कोई बाधा करेंगे, वे नरक जायँगे। हनुमंतराय द्वारा यह आज्ञा हुई। सवत् ११४५, आषाढ़-सुदी १३।

इनमें प्रथम लेख में राजपूतानी-भाषा का संसर्ग है, और द्वितीय उस समय की साधारण हिंदी में हैं। इस समय देश में कविता की भी अच्छी चर्चा थी, जैसा कि चंद बरदाई के रासो से प्रकट है।

श्रीमान् ओझाजी का विचार है कि उपर्युक्त पट्टे-परवाने जाली हैं। इस अनोखे कथन का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, अतएव अभी तक ये ठीक माने जाते हैं।

(३६) महाकवि चंद वरदाई

हिंदी का वास्तविक प्रथम महाकवि चंद वरदाई ही कहा जा सकता है, और इसका रासो अब तक प्रसिद्ध है। इसके पहले हिंदी प्राय. नाम-मात्र को पाई जाती है। इस महाकवि की गणना हमने हिंदी के नव सर्वोत्तम कवियों में की है। इसका जन्म अनुमान से संवत ११८३ में, लाहौर में, हुआ था; परंतु यह बाल्यावस्था ही से अजमेर में रहने लगा। यह ब्रह्मभट्ट था, और इसी कारण जान पड़ता है कि इसे हिंदी-कविता मे रुचि थी, तथा जालंधरी देवी का इष्ट था। अजमेर में रहते-रहते चंद पृथ्वीराज का कृपा-पात्र हो गया, और जब उन्होंने दिल्ली का राज्य पाया, तब उनके तीन अमात्यों में चंद भी एक हुआ। इसका पृथ्वीराज के यहाँ बहुत मान था, और यह स्वजनों की भाँति प्रतिष्ठा पाता था। जिस समय पृथ्वीराज की भगिनी पृथाकुँवरि का विवाह चित्तौड़-नरेश समरसिंह के साथ हुआ, तब चंद-पुत्र जल्हन को रावलजी ने दायज में पाया। चंद के १२ पुत्रों मे, जान पड़ता है, केवल जल्हन ही सुकवि था। एक बार मंत्री कैमास एक स्त्री-बालिका पर आसक्त होकर पृथ्वीराज को छोड़ उसके शत्रु भोराभीमिंग से मिल गया, और नागौर पर उसने भीम का अधिकार करा दिया। इस समय चद ने ससैन्य जाकर, भीमग के दल को परास्त करके, जान पर खेलकर कैमास को समझाया, और इस प्रकार उसे फिर पृथ्वीराज का सहायक बनाया। जब संवत् १२४८ में पृथ्वीराज मोहम्मद गोरी द्वारा पकड़े गए, तब चंद ने अपनी रचना जल्हन को देकर अपने स्वामी के उद्धारार्थ गोर-देश को प्रस्थान किया, और वहीं स्वामी-समेत उनका, संभवतः सं० १२४९ में देहांत हुआ। चंद के पिता वेण और गुरु गुरुप्रसाद थे।

चद ने एकमात्र ग्रंथ पृथ्वीराज-रासो बनाया, जो प्राय ढाई हज़ार पृष्ठों का है। इसमे कोई ढाई सौ पृष्ठों में और-और विषय वर्णित है, और शेष ग्रंथ में पृथ्वीराज का हाल बड़े विस्तार-पूर्वक लिखा है। कुछ पंडितों को संदेह हो गया है कि रासो उस समय का ग्रंथ नहीं है, वरन् किसी ने सोलहवीं शताब्दी में चंद के नाम से उसे बना दिया। ऐसा कथन रासो में फारसी-शब्दों के आने तथा उसकी समय-विषयक अशुद्धियों के कारण किया गया है। महामहोपाध्याय

रायबहादुर प० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने भी बहुत-से पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण देकर रासो को सोलहवीं शताब्दी का ग्रंथ माना है। हम यह समझते हैं कि रासो में बहुतेरी इतिहासिक अशुद्धियाँ हैं, और समय के साथ उसमें नए भाग जुड़ गए हैं, किंतु उसका मूल भाग प्राचीन अवश्य है। इतना श्रीमान् ओझाजी भी मानते हैं कि रासो में कुछ प्राचीन अंश अवश्य हैं। इतना हम भी कहेंगे कि क्षेपक-बाहुल्य से रासो का कोई अंश दृढ ऐतिहासिक तथ्यों का आधार नहीं माना जा सकता। कुछ साहित्य पुराना है ही।

यहाँ शिला-लेखों का भी कुछ कथन अनुपयुक्त न होगा। जो शिला-लेख अब तक इस विषय पर मिले हैं, उनका ब्योरा इस प्रकार है—

पृथ्वीराज-सबधी चार, स० १२२४-४४ के बीच के।

जयचद-सबंधी बारह, सं० १२२४-४३ के बीच के।

परमर्दिदेव-सबधी छै, स० १२२३-५८ के बीच।

इन अंतिम लेखों में स० १२३९ वाला परमर्दिदेव का पृथ्वीराज से युद्ध कथित है।

पृथ्वीराज-विजय के पाँचवें सर्ग में विग्रहराज के पुत्र चद्रराज का वर्णन करता हुआ तत्कालीन कवि जयानक लिखता है—

तनयश्चन्द्रराजस्य चन्द्रराज इवाभवत्;
सग्रहं यस्सुवृत्तानां सुवृत्तानामिव व्याधात्।

इसकी टीका लिखते हुए सोलराज का पौत्र तथा तोनराज का पुत्र जोनराज (स० १४७४-१५२४) कहता है—

चन्द्रराजाख्यश्चन्द्रो ग्रन्थकारस्य इवास्य पुत्र चन्दराजाख्यो भवत्। शोभमानाना वृत्ताना बसन्ततिलकादीनामिव सुवृत्ताना सदाचाराणां पुरुषाणा यस्संग्रहमकरोत्।

इस प्रकार जोनराज चदराज को अच्छे छंदों का बनानेवाला तत्कालीन ग्रंथकार कहता है।

इस विषय में हमने हिंदी-नवरत्न में कुछ विशेष कथन किए हैं। कुल बातों का फल यह समझ पड़ता है कि रासो में चंद तथा तत्पुत्र जल्हन ने बहुत-से

छंद बनाए, जो समय के साथ बिखर गए। ऐसी दशा में स०-१६३६ से १६४२ तक किसी समय मेवाड़ के, महाराणा अमरसिंह की आज्ञा से किसी ब्रह्मभट्ट कवि ने उन्हें एकत्र किया, तथा बहुतेरे नवीन पद्य मिलाकर रासो का वर्तमान रूप प्रस्तुत किया। इस कारण से यह नहीं कहा जा सकता कि रासो द्वारा ज्ञात कितनी बातें उस काल की शुद्ध ऐतिहासिक-घटनाएँ है तथा कितनी पीछे से प्रक्षिप्त। इतना निश्चय अवश्य है कि चंद उस काल एक सुकवि था, और वर्तमान रासो प्रक्षिप्त होकर तेरहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी का एक उत्कृष्ट काव्य-ग्रंथ माना जा सकता है। चद्रवशी नानूरामजी नागौर-निवासी थे। आप हर-प्रसादजी शास्त्री से मिले थे। नानूराम का कहना है कि चद ने तीन-चार हज़ार श्लोक सख्या में अपना काव्य लिखा था। चंद-पुत्र जल्हन ने अ तिम कुछ समयों को बनाकर ग्रथ समाप्त किया। अनतर उसमें क्षेपक जुड़ते रहे। अकबर के समय में ग्रथ ने परिवर्तित रूप धारण किया। नानूराम ने महोबा-समय की कापी शास्त्रीजी को दी थी। कथनों से उपर्युक्त विचारों का भी समर्थन होता है।

रासो काल

रासो में बड़ा ही सजीव चित्रण है। इसमें बहुत-से युद्धों के वर्णन कई स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से किए गए है, और वे सब प्रशसनीय है। इसी प्रकार मृगया, नख-शिख आदि के कथन इसमें बहुत ही मनोहर हुए है, और नीति, बसत, उपवन, बाग, पक्षी, तलवार, सवारी, ऐसे, सिंह, वन, वर्षा, शरद्, भोजन, राज्याभिषेक, विवाह, स्तुति आदि सभी विषयों के उत्कृष्ट रीति से, सफलता-पूर्वक वर्णन किए है। समझ पड़ता है, कवि इन विषयों का अच्छा ज्ञाता था। उपमा, रूपक आदि का भी समावेश इस काव्य में अच्छे प्रकार किया गया है। रासो में प्रधानतया युद्ध, मृगया और रूप के वर्णन है, और विशेषतया यह श्रृंगार-प्रधान ग्रंथ है। कवि ने आदिम समय की भाषा का व्यवहार किया, जिसमें संस्कृत और फारसी के अतिरिक्त राजपूतानी और पजाबी भाषाओं का विशेष प्रयोग हुआ है। विविध छद लिखे गए है, और छप्पै को विशेष आदर मिला है। कुल मिलाकर यह एक बड़ा ही उत्कृष्ट कवि है।

उदाहरण—

हरिव कनक कांतिं कापि चंपेव गौरी,
रसित पदुम गंधा फुल्ल राजीवनेत्रा ;
उरज जलज शोभा नाभिकोशं सरोजं,
चरण कमल हस्ती लीलया राजहंसी।

नमो आदि नाथ स्वयमू-सनाथं, नहीं मात तातं न को मंगि बात।
जटा जूटयं सेषरं चद्र भाल, उरं हार उद्दारयं मुंड मालं।
अनील असन्नं उपव्वीत राजं, गलं काल कूटं करं सूल सार्ज।
वरं अग श्रोधूत विम्भूत श्रोपं, प्रलै कोटि उग्रंसि कालं अनोपं।
करी चर्म कंधं हरी पारिधानं, वृष बाहनं बास कैलास थानं।
उमा अंग बामं सुकाम पुरध्ध, सिरं ग ग नैत्र त्रय पंच मुष्धं।
नम सभवायं सरब्वाय पायं, नमो रुद्रयाय बरद्दाय सायं।
पसूपत्तये नित्तये मुग्गयाए; कपर्दी महादेव भीमं भवाए।

नैवा दुप्य न सुप्य साहस रने नैवा न काल कृतं
नैवां मात पिता न चैव धनय नैवां न कित्ती रतं ;
नैवा नं हित मित्त साजन रस नैवां किं रुष्टयं
रव तेवं तुत्र सेव देव मरन तोयं जय राजयं।

सीवल वारि सुचग तहाँ गय चल्लि निसाचर ;
लगि पियास स्रम अग वारि पिश्रो अँदोलिबर।
भी सीतल सब अंग करै अति वारि विहारह ;
रिप झारिफ गुह तपै सोर सुनि आप निहारह।
दिषि प्रबल रिप्य पुछ्यो प्रसन कवन रूप कीलै सुजल ;
निसि मद्धि अद्ध राषिस यचहिं पाइ परस पुब्बह सकल।
ढग जुग्गिनि पुर सरित तट अचवन उदक सुआर,
तहँ इक तापस तप तपत वालो ब्रह्म लगाय।
ताली पुल्लिय ब्रह्म दिष्षि इक असुर अदम्भुत,
दिघ्घ देह चख्ख सीस मुष्प करुना जस जप्पत।

तिन ऋषि पुच्छिय ताहि कवन कारन इत अंगम ;
कवन थान तुम नाम कवन दिसि करिय सुजंगम।
सो नाम हुंढ वीसल नृपति साप तेह लम्भिय दयत ;
छुट्टन सु देह गंगा दरस तजन देह जन मंत कृव
दिखि वाच वाल दानव सुराज ; सज्ज्यो सु अप्पवर वचन साज
उदि चल्यो अप्प कासी समग्ग ; आयौं सु गंग तट कज्ज जग्ग।
स्रत अट्ठ खंड करि अंग अच्चि, होमे सु अप्प वर मंत्रि हव्वि।
मंग्यो सु ईस पहि वर पमाय ; सत अट्ठ पुत्र अवतरन काय।
उत्पत्ति वास मामत चंद, पाधरी छंद धर्म्म सु बंद।
दस तीन हुए दिल्ली प्रमान, हरि सिंघ वर्म्म गड्डह वयान।

चंद के पीछे उसका पुत्र (४०) जल्हन ही प्रधान कवि हुआ चंद के कमला और गौरी-नाम्नी दो स्त्रियाँ थीं, जिनसे उसके दस पुत्र और राजबाई-नाम्नी एक पुत्री उत्पन्न हुई। चंद लाहौरवासी ब्रह्मभट्ट था, परंतु पृथ्वीराज चौहान का राजकवि होने से वह दिल्ली में रहता था। उसने अपने पुत्रों का वर्णन इस प्रकार किया है—

देहति पुत्र कवि चंद सूर सुंदर सुजानं ;
जल्ह वल्ह वलिभद्र कविय केहरि वक्खानं।
वीरचंद अवधूत दसम नंदन गुन राज,
अप्प अप्पक्रम योग बुद्धि भिन भिन कर काजं।
जल्हन जिदाज गुन साज कवि चंद छंद सायर तिरन।
अप्पौंजि दृत्त रासो सरस चल्यो अप्प रज्जन सरन।

रासो में यह वर्णन है कि जल्हन रैनसी पृथ्वीराज के पुत्र के साथ खेलता था। इसके पीछे पृथाकुँवरि के विवाह में पृथ्वीराज ने इसे राणा समरसिंह को दायज में दे दिया। इस विवाह का समय रासो में नहीं लिखा है, परंतु इसके कुछ ही साल पीछे पृथ्वीराज ने कोप खुदाया, जिसका समय १२२८ संवत् रासो में दिया है। इसने नवरत्न में चंद की अवस्था ६५ या ६६ साल की अनुमानी है, और उसका मृत्यु-काल संवत् १२४९ के लगभग है, सो जन्म-काल संवत्

११८३ निकलता है। जल्हन उसका चौथा पुत्र था, और ये पुत्र दो माताओं के थे, सो सम्भवत. चद की बीस-बाईस वर्ष की अवस्था में जल्हन उत्पन्न हुआ होगा। पृथा कुँवरि का विवाह सवत् १२२५ के लगभग हुआ, और उस समय जल्हन इतना गुणी हो चुका था कि रावल समरसिंह ने उसे सहठ दायज में लिया। अत. उसका जन्म-काल सं० १२०५ के लगभग बैठता है। जब पृथ्वीराज संवत् १२४८ वाले युद्ध में शहाबुद्दीन गोरी द्वारा पकड़ लिए गए, तब चंद उनके छुड़ाने के विचार से बाहर गया। उस समय लिखा है कि उसने जल्हन को रासो देकर ग़ज़नी की ओर प्रस्थान किया। यथा—

देहति पुत्र कबि चंद कै सुदर रूर सुजान,
इक्क जल्ह गुन बावरौ गुन समुंद ससि मान।
आदि अंत लगि बृत्ति मन ब्रन्नि गुनी गुनराज,
पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप-काज।

इसके पीछे रासो में जो वर्णन है, वह सब जल्हन-कृत है। जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के अंतिम संवत् १२४८ वाले युद्ध का भी कुछ भाग जल्हन ही ने बनाया, क्योंकि चंद उस समय ग़ज़नी-जाने की शीघ्रता में था, सो इस वर्णन को उसे अधूरा ही छोड़ना अधिक युक्ति-संगत जान पड़ता है।

रासो से अपने संबंध को जल्हन ने इस प्रकार लिखा है—

प्रथम बेद उद्धार बभ मछहत्तन किन्नो;
दुतिय बीर बाराह धरनि उद्धरि जस लिन्नो।
कौमारक नभ देस धरम उद्धरि सुर सष्षिय,
कूरम सूर नरेस हिंद हद उद्धरि रष्षिय।
रघुनाथ चरित हनुमंत-कृत भूप भोज उद्धरिय जिमि;
पृथिराज सुजस कवि चंद-कृत चद-नंद उद्धरिय तिमि।

पृथ्वीराज-कृत अंतिम युद्ध के पीछे जल्हन ने रासो में बानबेध और रैनसी समय कहे। इनकी कविता चंदीय कविता ही के समान है। ढंग और बोल-चाल में चंद-काव्य से वह बिलकुल मिलती है। दिल्ली का हाल वर्णन करते हुए भी जल्हन सदैव चित्तौर ही के राज में रहा। कहते हैं, मेवाड़-राज्य का

राजोरा रायवंश जल्हन से ही प्रारंभ होती है। रासो में क्षेपकों के कारण उसके आधार पर जो कथन है, वे अनिश्चित हैं ही।

यह किंवदंती प्रसिद्ध है कि शहाबुद्दीन गोरी को यह विदित हुआ कि पृथ्वीराज शब्दवेधी बाण चलाना जानते हैं, अतः उसने उनका यह कौशल देखना चाहा। वह दुमंज़िले मकान पर जा बैठा, और एक तोता पिंजड़े में वहीं टाँगा गया। तब नेत्र-हीन पृथ्वीराज को नीचे बुलाकर अपने मुसाहबों से उसने चौहानराज-प्रति कहलाया कि वह निशाना लगावें। इस पर पृथ्वीराज ने उत्तर दिया कि हम महाराज हैं, नौकरों के कहने से निशाना नहीं लगा सकते। हाँ, यदि बादशाह अपने मुख से आज्ञा दे, तो कोई हर्ज नहीं है। चंद भी उस समय पृथ्वीराज के साथ था। इस पर बादशाह ने स्वयं आज्ञा दी कि हाँ, निशाना लगाओ। उसी समय चंद ने दोहा द्वारा पृथ्वीराज से पूरा वर्णन शहाबुद्दीन की बैठक इत्यादि का करके कहा कि इस समय अब चूकना न चाहिए। यथा—× × × अंगुल चारि प्रमान, साथ बार तब चुक्कियो अब न चुक्कु चौहान।

पृथ्वीराज ने तुरंत बाण संधानकर मारा, जिससे गोरी मरकर गिर गया। इस कहावत का प्रमाण इतिहास में नहीं मिलता, परंतु रासो में इस विषय पर यह छंद दिया है—

नयन बिना नरवात कहौ ऐसी कहुँ किद्धी ;
हिंदू तुरक अनेक हुए पै सिद्धि न सिद्धी।
धनि साहस धनि हथ्थ धन्य जस बासनि पायो ;
ज्यों तरु छुट्टै पत्र उड़त अप सतियो आयो।
दिक्खै सुमध्ध यों साह कौ मनु नछित्र नभ तें टर्यौं ;
गोरी नरिंद कवि चंद कहि आय धरप्पर धम पर्यौं।

जल्हन की कविता से उदाहरण-स्वरूप दो छंद ऊपर दिए जा चुके हैं, और कुछ नीचे लिखे जाते हैं। यथा—

परयो संभरी राय दीसै उत्तंगा ; मनो मेर यज्री कियं श्रृंग भंगा।
जिनं बार बारं सुरत्तान साह्यो, जिनें भीज के भीम चालुक्क गाह्यो।

११८३ निकलता है। जल्हन उसका चौथा पुत्र था, और ये पुत्र दो माताओं के थे, सो सम्भवत: चंद की बीस-बाईस वर्ष की अवस्था में जल्हन उत्पन्न हुआ होगा। पृथा कुँवरि का विवाह संवत् १२२५ के लगभग हुआ, और उस समय जल्हन इतना गुणी हो चुका था कि रावल समरसिंह ने उसे सहठ दायज में लिया। अत: उसका जन्म-काल सं० १२०५ के लगभग बैठता है। जब पृथ्वीराज संवत् १२४८ वाले युद्ध में शहाबुद्दीन गोरी द्वारा पकड़ लिए गए, तब चंद उनके छुड़ाने के विचार से बाहर गया। उस समय लिखा है कि उसने जल्हन को रासो देकर गज़नी की ओर प्रस्थान किया। यथा—

देहति पुत्र कवि चंद कै सुदर रूप सुजान,
इक्क जल्ह गुन बावरो गुन समुद ससि मान।
आदि अंत लगि वृत्ति मन ब्रन्नि गुनी गुनराज,
पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप-काज।

इसके पीछे रासो में जो वर्णन है, वह सब जल्हन-कृत है। जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के अंतिम संवत् १२४८ वाले युद्ध का भी कुछ भाग जल्हन ही ने बनाया, क्योंकि चंद उस समय गज़नी-जाने की शीघ्रता में था, सो इस वर्णन को उसे अधूरा ही छोड़ना अधिक युक्ति-संगत जान पड़ता है।

रासो से अपने संबंध को जल्हन ने इस प्रकार लिखा है—

प्रथम बेद उद्धार बंभ मच्छहत्तन किन्नो;
दुतिय बीर बाराह धरनि उद्धरि जस लिन्नो।
कौमारक नभ देस धरम उद्धरि सुर सम्भिय,
कूरम सूर नरेस हिंद हद उद्धरि रष्षिय।
रघुनाथ चरित हनुमंत-कृत भूप भोज उद्धरिय जिमि;
पृथिराज सुजस कवि चंद-कृत चंद-नंद उद्धरिय तिमि।

पृथ्वीराज-कृत अंतिम युद्ध के पीछे जल्हन ने रासो में बानवेध और रैनसी समय कहे। इनकी कविता चंदीय कविता ही के समान है। ढंग और बोल-चाल में चंद-काव्य से वह बिलकुल मिलती है। दिल्ली का हाल वर्णन करते हुए भी जल्हन सदैव चित्तौर ही के राज में रहा। कहते हैं, मेवाड़-राज्य का

दास की कविता पृथ्वीचंद राजा के समय में लिखी है, जिसका काल संवत् १२२५ में कहा गया है। उदाहरण—

> का होत मुड़ाए मूड वार, का होत रखाए जटा-भार।
> का होत भामिनी तजे भोग, जौ लौं न चित्त थिर जुरै जोग।
> थिर चित्त करै सुमिरन मझार; ऊपर साधै सब लोकचार।
> सुख मारग यह पृथिचंदराज, यहि सम न आन तम है इलाज।

यह भाषा आधुनिक-सी दिखाई पड़ती है। जान पड़ता है, पृथ्वीचंद नाम से सरोजकार को पृथ्वीराज का भ्रम हो गया, अतः उन्होंने इतना प्राचीन संवत् लिख दिया। यह कविजी वास्तव में अक्षर अनन्य हो सकते हैं, जिनका वर्णन उचित स्थान पर इस ग्रंथ में मिलेगा। चंद-कृत रासो में लिखा है कि उस समय राजदरबारों में हिंदी का अच्छा मान था, और उनमें कवि रहते थे। इससे देश में भी हिंदी-कवियों का बहुतायत से होना अनुमान-सिद्ध है, परंतु काल-गति से उन कवियों के नाम तक अब ज्ञात नहीं हैं। इस समय के ज्ञात कवियों में ब्राह्मण एक भी न था। इससे सिद्ध है कि बहुतेरे ब्राह्मण अब तक संस्कृत को प्रधान मानकर हिंदी को तुच्छ समझते थे। आगे चलकर केशवदास तथा तुलसीदास तक भाषा-कविता करने में कुछ लज्जा-सी बोध करते थे।

(४५) कवि मोहनलाल द्विज सं० १९७६ के खोज में मिला है। इसका ग्रंथ पत्तलि है, जो स० १२४७ में बना। यह बलदाऊ ज़िला मथुरा के पंडित श्यामलाल शर्मा के पास है। इसमें भगवान् के विवाह में नंद की ज्योनार का वर्णन छंदों में है।

उदाहरण—

> सुनो कही यह संवत जानो; बारह सौ जो सैंतालानो।
> सावन सुदि सातन मन रंगी, छंद तृभंगी पत्तलि चंगी।
> शीश भाल श्रुति नासिका ग्रीवा उर कटि बाहु;
> मूल पानि अँगुरी चरन भूषन रचि अवगाहु।

स्वामी माधवाचार्य (सं० १२५४ से १३३४ तक), दाक्षिणात्य ब्राह्मण एवं संन्यासी थे। निंबार्क स्वामी की भाँति आपने भी अद्वैत एवं मायावाद के

जिनैं भंजि मैवात द्वे बार थंप्यो, जिनें नाहरं राइ गिरनार संध्यो।
जिनैं भजि थट्टा सुकझ्यो निकंदं , जिनें भंजि। महिपाल रिन थंम दंडं।
जिनैं जीति जद्दौं ससीव्रत्त आनी , जिनैं भंजि कमधज्ज रक्खो जुपानी।
जिनैं भंजि पंडा सुउज्जैन मांही , परंमार भीमंग पुत्री बिब्राही।
जिनैं दौरि कन्नवज्ज साहाय कीयो , जिनै कंगुरा लेय हम्मीर दीयो।
जिनैं बीलि व्रज बालुका षेत ढाह्यो , जिनैं गाहिरा पंग संजोग लायो।

इस जल्हनवाले लेख के लिखने में हमें बाबू श्यामसुंदरदासजी से बहुत सहायता मिली है।

चंद कवि का समकालीन (४१) जगनिक वंदीजन था, जो महोबा के राजा परिमाल के यहाँ रहता था। इस कवि ने आल्हा बनाया, जो अब तक गाया जाता है, पर अब का आल्हा केवल ढग में शायद जगनिक से मिलता हो। जगनिक का एक भी छंद अब नहीं मिलता। इसी समय के एक (४२) केदार कवि का भी नाम शिवसिंहजी ने लिखा है, पर उसकी कविता नहीं देख पड़ती है। तो भी रासो में एक स्थान पर केदार भट्ट का चंद से सवाद कथित है। यह भी कहा जाता है कि चद के समान केदार ने भी जयचंद-प्रकाश ग्रथ अपने स्वामी की प्रशंसा में लिखा था, किंतु वह अब तक अप्राप्य है। कहते हैं, इसी समय के एक (४३) मधुकर कवि ने 'जयमयकयश-चंद्रिका'-नामक जय-काव्य लिखा, किंतु यह भी अप्राप्य है। इन दोनो ग्रंथों का उल्लेख 'राठौडारी ख्यात'-नामक एक उस ग्रथ में है, जो सिंधायच दयालदास-कृत है, अथच बीकानेर के राज्य पुस्तकालय में वर्तमान कहा जाता है। चद-कृत रासो में प्रक्षिप्त भाग इतने अधिक हैं कि रासो का कोई कथन विना अन्य प्रकार से समर्थित हुए ऐतिहासिक मूल्य नहीं रखता।

शिवसिंहसरोज में कन्नौज के राजा बरवै सीता को भी कवि माना गया है, परंतु इस नाम का कोई राजा कन्नौज में इस समय नहीं हुआ। (४४) बार-दरवेणा-नामक एक भाट कवि महाराज जयचंद के पुत्र शिवजी के साथ था, पर उसकी भी कविता हस्तगत नहीं होती। सरोज में चंदा गोंडावाले एक, अनन्य

दास की कविता पृथ्वीचंद राजा के समय में लिखी है, जिसका काल संवत् १२२५ में कहा गया है। उदाहरण—

> का होत मुड़ाए मूड बार ; का होत रखाए जटा-भार ।
> का होत भामिनी तजे भोग, जौ लौ न चित्त थिर जुरै जोग ।
> थिर चित्त करै सुमिरन मँझार ; ऊपर साधै सब लोकचार ।
> सुख मारग यह पृथिचंदराज , यहि सम न आन तम है इलाज ।

यह भाषा आधुनिक-सी दिखाई पड़ती है। जान पड़ता है, पृथ्वीचंद नाम से सरोजकार को पृथ्वीराज का भ्रम हो गया, अतः उन्होंने इतना प्राचीन संवत् लिख दिया। यह कविजी वास्तव में अक्षर अनन्य हो सकते हैं, जिनका वर्णन उचित स्थान पर इस ग्रंथ में मिलेगा। चंद-कृत रासो में लिखा है कि उस समय राजदरबारों में हिंदी का अच्छा मान था, और उनमें कवि रहते थे। इससे देश में भी हिंदी-कवियों का बहुतायत से होना अनुमान-सिद्ध है, परंतु काल-गति से उन कवियों के नाम तक अब ज्ञात नहीं है। इस समय के ज्ञात कवियों में ब्राह्मण एक भी न था। इससे सिद्ध है कि बहुतेरे ब्राह्मण। अब तक संस्कृत को प्रधान मानकर हिंदी को तुच्छ समझते थे। आगे चलकर केशवदास तथा तुलसीदास तक भाषा-कविता करने में कुछ लज्जा-सी बोध करते थे।

(४५) कवि मोहनलाल द्विज सं० १९७६ के खोज में मिला है। इसका ग्रंथ पत्तलि है, जो सं० १२४७ में बना। यह बलदाऊ ज़िला मथुरा के पंडित श्यामलाल शर्मा के पास है। इसमें भगवान् के विवाह में नंद की ज्योनार का वर्णन छंदों में है।

उदाहरण—

> सुनो करो यह संवत जानो ; बारह सौ जो सैंतालानो ,
> सावन सुदि सातन मन रंगी , छंद तृभंगी पत्तलि चंगी ।
> शीश भाल श्रुति नासिका ग्रीवा उर कटि बाहु ;
> मूल पानि अँगुरी चरन भूषन रचि अवगाहु ।

स्वामी माधवाचार्य (सं० १२५४ से १३३४ तक). दाक्षिणात्य ब्राह्मण एवं संन्यासी थे। निंबार्क स्वामी की भाँति आपने भी अद्वैत एवं मायावाद के

प्रतिकूल लिखकर लक्ष्मी और विष्णु की भक्ति को प्रधान माना, अथच राधा-कृष्ण की भक्ति का मान न करके केवल कृष्ण की भक्ति बढ़ाई, अर्थात् कृष्ण-भक्ति को मानते हुए भी वाममार्ग का पोषण न किया। विष्णु स्वामी भी एक प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य थे, जिन्होंने इस भक्ति में दार्शनिक विचारों का आधिक्य रक्खा। आपके विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। श्रीवल्लभाचार्य ने अपने दार्शनिक सिद्धांत विष्णु स्वामी की दार्शनिकता पर अवलंबित किए और भक्ति निंबार्क के सिद्धांतों पर। अतएव हम देखते हैं कि कुछ आचार्य दार्शनिकता को प्रधानता देते थे, और कुछ भक्ति को। मध्व स्वामी ने द्वैतवाद चलाया। आपके माध्व-सम्प्रदाय में राम और कृष्ण-पूजन की उप-शाखाएँ हैं। इनमें नारायण की उपासना प्रधान है, और भक्ति पर ज़ोर दिया गया है। चैतन्य महाप्रभु एव हित हरिवंश इसी सम्प्रदाय में हैं, किंतु महाप्रभु की शाखा-संप्रदाय गौड़ीय है, अथच हितजी की राधा-वल्लभीय। विष्णु स्वामी का कुछ संकेत शिवोपासना की ओर भी है। विष्णु स्वामी का भी एक संप्रदाय है। आपने भी राधा-कृष्ण का माहात्म्य कहा है। यह माहात्म्य निंबार्क स्वामी में और भी बढ़ा हुआ है। विष्णु स्वामी माधवाचार्य (उपनाम मध्वाचार्य) के अनुयायी थे, और निंबार्क रामानुजाचार्य के। हित हरिवंश की राधावल्लभीय सम्प्रदाय में राधा रानी हैं, और कृष्ण उनके दास-मात्र। मध्वाचार्य उदीची-निवासी होने से औदीच्य कहलाते थे। आपके सम्प्रदाय का मान गुजरात में विशेष हुआ।

(४६) सं० १२४१ में सोमप्रभाचार्य ने '*कुमारपाल-प्रतिबोध*' बनाया। इनकी भाषा अपभ्रंश कही जाती है।

नाम—(४७) धर्मसूरि-जैन।

ग्रंथ—जंबूस्वामी-रासे।

रचनाकाल—१२६६।

विवरण—महेंद्रसूरि के शिष्य थे।

उदाहरण—

जिन चउविस पय नमेवि गुरु चरण नमेवि;
जंबू स्वामिहि तणू चरिय भविउ गि सुणेवि।

करि मानिध मरस्सति देवि जीयरय कहाणउ ,
जवृ स्वामिहिं गुण गहण संखेवि वखाणउ ।
जंवु दीवि सिरि भरत खित्ति तिहिं नयर पहाणउ ,
राज ग्रह नामेण नयर पुहुवी वक्खाणउ ।
राज करइ सेणिय नरिंद नरवर हं जु सारो ;
तासु तणइ वुद्धिवंत मति अभय कुमारो ।

(४८) ज्ञानेश्वर

यह नाथ-पंथी महात्मा संवत् १३४६ में हो गुज़रे हैं। यह महाराष्ट्र में स्थापित वारकरी-नामक भक्ति-संप्रदाय के मुख्य आचार्य कहलाते हैं। यह यजुर्वेदी ब्राह्मण थे, और इनका उपनाम भट्टिणे था। इनके पूर्वज त्र्यंबक पंत बड़े प्रसिद्ध थे। इनकी समाधि आपेगांव में है। महात्मा ज्ञानेश्वर के पिता विट्ठल पंत भी वेदशास्त्रपाठी विद्वान् थे। इनकी वृत्ति वास्तव में कुलकर्णी या पटवारगीरी थी। इन्होंने आगे वैराग्य धारण करके काशी को प्रयाण किया, और वहाँ प्रसिद्ध संत श्रीरामानंदजी सन्यास-आश्रम की दीक्षा ली, किंतु अपने पूज्य गुरु के अनुरोध से विट्ठल पंत ने फिर से गृहस्थाश्रम धारण किया, और लौटकर यह अपने निवास-स्थान आलंदी में रहने लगे। पुन गृहस्थाश्रम स्वीकार करने पर ही इनके निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव (ज्ञानेश्वर) और सोपानदेव, ये तीन पुत्र और मुक्ताबाई नाम की एक पुत्री हुई। यह सन्यास के अनंतर फिर से गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेवाले पुरुष की संतान होने के कारण दुर्भाग्य-वश समाज की घृणा के पात्र हुए, और बाल्यावस्था ही से तीर्थ-यात्रा करने लगे। इनके ज्येष्ठ भ्राता निवृत्तिनाथ ने गैनीनाथ से उपदेश लिया था, और इन्होंने स्वयं अपने उक्त ज्येष्ठ भ्राता से उपदेश ग्रहण किया। श्रीज्ञानेश्वर महाराज की गुरु- परंपरा यों है—आदिनाथ, मच्छेंद्रनाथ, गोरखनाथ, गैनीनाथ तथा निवृत्ति-नाथ। आपके विषय में कहा जाता है कि एक समय आप यात्रा करते हुए पैठन (प्रतिष्ठानपुर) पहुँचे। मार्ग में इन्होंने एक पखालची (भिश्ती) को अपने भैंसे को निर्दयता-पूर्वक मारते हुए पाया। भगवान् बुद्धदेव की तरह आपको पखालची के इस दुर्वर्तन पर विशेष दुःख हुआ, और आपने उसी स्थान पर

आत्मा की एकता बतलाकर उच्च उपदेश दिए। इस घटना के कारण तत्काल ही देवगिरि के राजा के मंत्री हेमाद्रि, बोपदेव आदि विद्वानों ने इन्हें शुद्ध होने का प्रमाण-पत्र दिया, और समाज ने इनके प्रति सद्वर्तन करना प्रारंभ किया। इनकी महत्त्व-पूर्ण रचना श्रीज्ञानेश्वरी अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता की टीका है। इनका यह प्रसिद्ध ग्रंथ महाराष्ट्र में बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है। यद्यपि यह प्राचीन ग्रंथ दुर्बोध है, तथापि मनोहर रचना, प्रसाद, उपमा आदि विशेषताओं के कारण महाराष्ट्र-साहित्य का अमूल्य रत्न है। आपकी रचनाओं में और भी फुटकर ग्रंथ और कविताएँ हैं। केवल इन्हीं एक महाराष्ट्रीय संत को भगवान् श्रीशंकराचार्य के बराबरी का महत्त्व वहाँ के कुछ लोग देते हैं। हर्ष का विषय है कि श्रीज्ञानेश्वर महाराज के-से भारत के प्राचीन संत तथा महात्मा ने हिंदी-भाषा में कविताएँ रचकर उसे सुशोभित किया। आप भागवत्-धर्म के मुख्य संस्थापक हो गए हैं। आपकी रचना सबल, भाव-पूर्ण, धार्मिक समालोचना-गर्भित, शुद्ध उपदेश-प्रद है। काव्य खड़ी बोली में है।

उदाहरण—

सो ही कच्चा वे कच्चा वे नहीं गुरू का बच्चा।
दुनिया तजकर खाक ल ई, जाकर बैठा बन मों।
खेचरि मुद्रा बज्रासन मों, ध्यान धरत है मन मों ॥१॥
तीरथ करके ऊमर खोई, जोग जगत में सारी।
धन, कामिन औ' कुंजर त्यागे, जोग कमाया भारी ॥२॥
गुप्त होयकर परगट होवे, गोकुल मथुरा कासी।
सिद्ध हुए जी प्राण जु निकले, सत्यलोक के बासी ॥३॥
शास्त्रों में तो नहीं रख्या कुछ पुरान गायन माया।
भेद विधी का मारग चलता, तन का लकड़ा काया ॥४॥
कुंडलिनी कूँ खूब चढ़ावे, ब्रह्म-रध्र को जोवे।
चलता है पानी के ऊपर, बोलत सोई होवे ॥५॥
हुकुम निवृत्ति का ज्ञानेश्वर कूँ, तिनको ऊपर जाना।
सद्गुरु की जहँ कृपा भई, तहँ आपहि आप पिछाना ॥६॥

× × ×

नाम—(४९) विजयसेन सूरि जैन ।
ग्रंथ—रेवतिगिरि-रासा । रचना-काल—१२८८ ।
विवरण—वस्तुपाल मंत्री के गुरु थे ।
उदाहरण—

परमेसर तित्थेसरह पय पंकज पणमेवि ;
भणि सुरास रेवत-गिरि अवकि दिवि सुमिरेवि ।
गामागर पुर वरग गहण-सरिसरवरि सुप एसु ;
देवि भूमि दिसि पच्छिमह मणहरु सोरठ देसु ।
जिणु तहिं मंडल मंडणउ मरगय मउड महंतु ,
निम्मल सामल सिहिर भर रेहइ गिरि रेवंतु ।
तसु सिरि सामिउ सामलउ सोहग सुंदर सारु ,
× × × इव निम्मल कुल तिलउ निवसइ नेमि कुमारु ।
तसु मुह दसणु दस दिसवि देसि दिसंतरु संघ ,
अवइ भाव रसाल मण उहलि रंग तरंग ।
पोरवाड़ कुल मंडणउ नंदणु आसा राय ,
वस्तुपाल वर मंति तहि तेज पालु दुइ भाइ ।
गुर्जर धरि धुरि धवलि वीर धवल देवि राजि ;
बिहु बंधवि अवयारियउ सममउ दूसम मांझि ।

सरोज में १२१९ के नवलदास-नामक एक कवि की रचना दी हुई है । यथा—

भक्त एक ते एक हैं जानि कोउ करो गुमान ,
कोउ प्रकट कोउ गुप्त हैं जानि रहे भगवान ।

इस कवित्त की भाषा आधुनिक जान पड़ती है, सो यह संवत् संदिग्ध है ।

नाम—(५०) दामोदर पंडित, महाराष्ट्र देश ।
ग्रंथ—(१) वत्सहरण, (२) स्फुट कविताएँ ।
रचनाकाल—सं० १२२५ के लगभग ।
विवरण—आप चक्रधर के समकालीन तथा शिष्य थे ।

उदाहरण—

स्फुटिक मध्ये हीरा वेध कर गया ;
उजयडी लापली भिग कला ।

नाम—(५१) अज्ञात ।
ग्रंथ—सप्तक्षेत्रिरास ।
रचनाकाल—१३२७ ।
उदाहरण—

सात क्षेत्र इम बोलिया पुण एक कही सिइ ;
कर जोड़ी श्रीसव पासि अविणउ मागी सइ ।
धाई उउण आगउ बोलिउ उत्सूत्र ,
ते बोल्या मिच्छादुक्क्य श्रीसघ वदीतु ।
मू मूरख तो इये कुण मात्र ठुण सुगुरु पसाओ ।
अनइज त्रिभुवन सामि बसइ हियडइ जगनाहो ,
तीणि प्रमाणइ सात क्षेत्र इम कीधउ रासो ;
श्रीसंघु दुरि यह अपहरउ सामी जिणि पासो ।
सवत तेर सतावीसए माह मस [वाडइ ,
गुरु वारिआवीय दसभि पहिलइ पख वाडइ ।
तहि पुरुहुव रासु सिव सुख निहाणु ,
निण चउ बीसइ भवियणइ करि सिइ कल्याणू ।

नाम—(५२) चक्रधर, महाराष्ट्र देश ।
रचनाकाल—स० १३२९ (शाके ११९४) ।
ग्रथ—स्फुट छद ।

विवरण—महाशय भालेरावजी का कथन है कि दसवीं शताब्दी (शाके) में महाराष्ट्र में बौद्ध-धर्म महानुभाव-नामक एक पंथ परिवर्तित स्वरूप में स्थापित हुआ, और यह इसके आचार्य थे। स्वयं इनके और इनके ५०० शिष्यों के लिखे हुए फुटकर गद्य-पद्य-ग्रंथ मराठी की आदि रचनाएँ कही जाती हैं। इस पथ का प्रचार काबुल-पजाब तक हो गया, और उस प्रांत में यह मत जयकृष्णी-पथ के नाम से प्रख्यात है। इनके निम्न-लिखित उदाहरण से महा-

राष्ट्र की चंदकालीन हिंदी का परिचय मिलता है। इनका काल भालेरावजी महाशय के कथनानुसार दिया गया है।

उदाहरण—सुती वर्णी स्थिर होई जेथे तुम्ही जाई,
मो परो मौरो वैरी आणता काई।

× × × ×

पवण पुरोहो मनिस्थिर करो हो चद्रा मेली वा मान अयागमन हं जे आरो वुद्धि राखो अपनेय।

नाम—(७३) उमांबा, महाराष्ट्र देश।

ग्रंथ—स्फुट छंद।

विवरण—महाशय भालेरावजी का कथन है कि यह चक्रधर (सं० १३२९) की समकालीन तथा उनके शिष्य नागदेवाचार्य की भगिनी थी।

उदाहरण—

नगर द्वार हो भिच्छा करो हो बापुरे मोरी अवस्था लो,
जिहा जावों तिहा आप सरिसा कोउ न करी मोरी चिंता लो।
हाट चौहाटा पद रहुँ माग पंच घर भिच्छा,
वापुड लोक मोरी अवस्था कोऊ न करी मोरी चिंता लो।

सं० १३३० तथा १३३६ के गद्य उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

सं० १३३० का उदाहरण

अठार पापस्थान त्रिविधिहि मनि-वचनि-काइ करणि-करावणि अनु-मति परिहरहु। अतीतु निंदउ, वर्तमानु संवरहु, अनागत पारख्खउ। पंच परमेष्ठि नमस्कार जिन शासनि-सारु चतुर्दश-पूर्व-समुद्धार सपादित-सकल कल्याणु संभारु विहित दुरितापहारु क्षुद्रोपद्रव पर्वत वज्र-प्रहारु लीला दलित संसारु सु नुसि अनुसरहु।

सं० १३३६ का उदाहरण

स्वर केता १४। समान केता १०। सवर्ण १०। ह्रस्व ५। दीर्घ ५।

लिंगु ३। पुंल्लिगु, स्त्रीलिंगु, नपुंसकलिंगु। भलउ पुंल्लिगु, भली स्त्रीलिंगु, भलु नपुंसकलिंगु।

(ये दोनो उदाहरण हिंदोस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका जुलाई-१९३५ में हैं।)

(५४) मुक्ताबाई

आप ज्ञानेश्वर महाराज की भगिनी थीं। उक्त महाराज के बड़े भाई निवृत्ति-नाथ तथा छोटे भाई सोपानदेव थे। मुक्ताबाई अपने बंधुओं में सबसे छोटी थीं। आप मराठी भाषा की आदि स्त्री-कवि हैं। आपका रचना-काल संवत् १३४५ के लगभग कहा जाता है। हिंदी-भाषा का सौभाग्य है कि मुक्ताबाई-सदृश महाराष्ट्रीय विदुषी ने इसे अपनी कृति से अलंकृत किया है। चंद-कालीन स्त्री-कवियों में आप ही की रचना उपलब्ध हुई है। कहा जाता है, कौमार्य अवस्था ही में आपकी मृत्यु, सं० १३५४ में, हुई।

उदाहरण—

वाह वाह साहबजी सद्गुरु लाल गुसाईं जी,
लाल बीच मों उदला काला औंठ पीठ सों काला।
पीत उन्मनी भ्रमर गुँफा रस झूलनेवाला,
सहस्रदल मों उलसली खाय आज लौं परमाना।
जहाँ-तहाँ साधु दसवा, आपहि आप ठिकाना।
सद्गुरु चेले दोनो बराबर, एक दसा मों भाई,
एक से ऐसे दरसन पाए, महाराज मुक्ताबाई।

यहीं से रासोकाल समाप्त होता है। अब तक ५४ कवि मिले हैं।

इस रासोकाल में हमें जो १८ कवि मिलते हैं, उनमें नरपति नाल्ह (नं० ३८), महाकवि चंद बरदाई (३९), ज्ञानेश्वर (४८), उमाबा (५३) और मुक्ताबाई (५४) की प्रधानता है। अकरम फ़ैज़ (३७) इस काल के मुसलमान कवि थे। उमाबा और मुक्ताबाई की प्रधानता उनके कवयित्री होने से है। ज्ञानेश्वर महात्मा थे। नरपति नाल्ह का गीत-काव्य अब तक प्राप्त है। उसमें मनोहर साहित्य है। जल्हन की गणना चंद के साथ ही होती है। महा-

कवि चंद अब तक हिंदी-नवरत्न में परिगणित हैं। इनका रासो कुछ तो प्राचीन ग्रंथ है, किंतु उसका अधिकांश १६२६ से १६४२ तक किसी समय बना। चाहे जब जितना बना हो, यह ग्रंथ (पृथ्वीराज-रासो) अब तक हिंदी-काव्य का शृंगार है। चंद-पूर्व काल में हिंदी का दामन अपभ्रंश कुछ-कुछ पकड़े हुए थी। इस रासो-काल में उसका रूप बहुत कुछ विकसित हुआ, और संत कवियों के साथ उसमें खड़ी बोली का भी प्रादुर्भाव हुआ। जैनों ने भी कई रासो-ग्रंथ धार्मिक विषयों पर बनाए। स्वामी मध्वाचार्य तथा विष्णु स्वामी इस काल के भारी धर्मोपदेशक थे। ये हिंदी लेखक न थे, वरन् संस्कृत-भाषा के ग्रंथकार दाक्षिणात्य महात्मा थे। इनके प्रभाव समय पर सारे भारत पर पड़े। इस काल मारवाड़, अजमेर, दिल्ली, कन्नौज, मथुरा, महाराष्ट्र आदि स्थानों के कवि मिले हैं, जिससे हिंदी का क्षेत्र अब तक भी व्यापक रहा है। साहित्यिक उन्नति पहले की अपेक्षा रासो-काल में बहुत देख पड़ती है। हमारे कवियों ने धार्मिक एवं राजकीय रासो कहे, तथा धार्मिक शिक्षाएँ भी दीं। चंद-पूर्व काल में केवल एक खुमान-रासो बना था, किंतु इस काल कई रासो बने। कुछ ऐतिहासिक इसे वीर-गाथा समय का भाग कहते हैं, किंतु १८ कवियों में केवल पृथ्वीराज-रासो में कुछ वीर-काव्य मिलता है, शेष नहीं। पृथ्वीराज-रासो भी प्रधानतया शृंगारी वर्णन करता है। इन कारणों से वीर-गाथा-काल मानने-वालों से हमारा मत नहीं मिलता। उस काल भारत वीर न होकर कादर था। कुछ खुशामदियों द्वारा कादरों के यशोगान से वीर-गाथा-काल अग्राह्य है।

रासो काल में मुसलमानों ने उत्तरी पंजाब से बढ़कर सारे उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया। इस दुर्घटना का विवरण हमारा साहित्य विस्तार-पूर्वक सुनाता है, किंतु खड्ग द्वारा जो मत-परिवर्तन होने लगा, उस पर मौन है। फिर भी भक्ति-पक्ष पर जोर देकर वह साहित्य समाज-संगठन में प्रवृत्त समझ पड़ता है। रासो-काल में प्राप्त कवियों की रचनाओं से प्रकट है कि धार्मिक शिक्षा पर ही हमारा मुख्य यत्न रहा। यही उस काल का देश-प्रेम था। हमारे दिल्ली, काशी, कन्नौज, मगध और बंगाल के राज्य पत्तों की भाँति ज़रा-से झोंके से उलट गए। मुसलमान अपने बल से न जीतकर हमारी निर्बलता से जीते।

उनके जिस सेनापति ने हँसते हुए हमारे पाल तथा सेन-राज्य उखाड़ दिए, उसी का छोटे-से आसाम ने मान मर्दन कर डाला। मुसलमान हमारे फाटक को प्राय ५०० वर्षों से खटखटा रहे थे, किंतु हम सँभले तो भी नहीं। अब उन्होंने सुख-पूर्वक भारत पर अपना प्रभुत्व फैलाया।

भारत में ग़ज़नी-वंश स० १०५८ से १२३२ तक चला, गोरी-वंश १२४९ से १२६३ तक, तथा गुलाम-वंश १२६३ से १३४७ पर्यंत। ग़ज़नी का राज्य केवल उत्तरी पंजाब में था। १०९८ में सल्जूकों से हारकर महमूद-वंश पंजाब ही में रहने लगा। १२३२ में मोहमम्द गोरी उत्तरी पंजाब का स्वामी हुआ। उत्तरी भारत में उस काल चौहानों, परिहारों, पालों और सेनों के राज्य थे। इनसे कुछ दक्षिण उतरकर गुजरात, चित्तौर, ग्वालियर और बुंदेलखंड भी कुछ महत्ता-युक्त थे। इनसे भी दक्षिण मध्यभारत, दक्षिण, तथा ठेठ दक्षिण की रियासतें थीं। मोहम्मद गोरी ने दिल्ली (सं० १२४९) काशी (स० १२५०) ग्वालियर (१२५१), मगध और गुजरात (सं० १२५४) तथा बंगाल (सं० १२५६) जीत लिए। अनंतर स० १२६० में बुंदेलखंड भी जीतकर १२६३ में वह धक्करों द्वारा मारा गया। दासों में कुतुबुद्दीन, अल्तमश और बल्लन मुख्य शाह थे। इनके समय में भारत पर मंगोलों के चार धावे स० १२९९ तक हुए, जिनमें १२७८-७९ वाला चंगेज़ख़ाँ हलाकू का धावा मुख्य था। इसमें बहुत मार-काट हुई। अतएव, हम देखते हैं, रासो-काल पर्यंत भारत में कोई दृढ़ शासन न था, वरन् बहुत कुछ लूट-मार मची थी, खड्ग द्वारा मुसलमानी मत की वृद्धि हो रही थी, तथा जज़िया भी हिंदुओं को केवल स्वमत न छोड़ने के कारण देना पड़ता था। सामाजिक संग्राम शांति में भी जारी था।

चौथा अध्याय

उत्तर प्रारंभिक हिंदी

(सं० १३४८-१४४४)

नाम—(५७) जज्जल। समय—सं० १३५७।

विवरण—महाराजा हम्मीरसिंह रणथं-भौरनरेश के मंत्री थे। उनके कवि शार्ङ्गधर का निम्न-लिखित कथन इस विषय पर है—

ढोला मारिय दिल्लि महे मूच्छिउमेच्छ सरीर।
पुर उज्जल्ला मात्रवर चलिय वीर हम्मीर।
चलिय वीर हम्मीर पाश्र भर मेहणि कंपइ,
दिग पग उह अधार धूलिसुरि रह अच्छा इरि।

उदाहरण (उज्जल का)—

पत्र भरु दर भरु धरणि तरणि रह धुल्लिअ झंपिअ;
कमठ पिट्ट टरपरिअ मेरु मंदर सिर-कंपिअ।
कोह चलिअ हम्मीर वीर गअ-जूह संजुत्ते;
किअउ कट्ठ आकंद मुच्छि म्लेच्छह के पुत्ते।
पिंधउ दिढ सएणाह वाह-उप्पर पक्खर दइ,
बंधु समदि रण धसउ सामि हम्मीर वअण लइ।
उड्डुल णाह-पह भमउ खग्ग रिउ सीसहि डारउ;
पक्खर पक्खर ठिल्लि पिल्लि पव्वअ उप्फालउ।
हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ, कोहाणल मुह मह जलेउ;
सुलतान सीस करवाल दइ, तेज्जि कलेवर दिअ चलेउ।

यह उदाहरण प्राकृत पैंगल (रॉयल एशियाटिक सोसाइटी) में उद्धृत है। प्राकृत की कुछ छाया लिए हुए यह रचना ओज-पूर्ण तथा सबल है। जज्जल अपने विषय मे सहृदयता रखते हैं, और राजभक्त भी हैं।

नाम—(५६) विनयचंद सूरि।

ग्रंथ—(१) नेमनाथ चउपइ, (२) उवएस माला के कथाय छप्पय।

रचनाकाल—१३५६ के पूर्व।

उदाहरण—

सोहत सुदर धण लावन्नू , सुमिरवि सामल वन्नू ।
सखि पवि राजल चढि उत्तरिय , बार मास सुणि जिम बज्जरिय ।
नेमि कुमर सुमिरवि गिरनारि , सिन्दू राजल कन्न कुमारि ।
श्रावणि सरवणि कडुए मेहु ; गज्जइ विरहि रिझिज्जहु देहु ।
बिउ जु झबक्कइ रक्खसि जेव , नेमिहि विणुसहि ससियइ केव ।
सखी भणइ सामिणि मन झूरि , दुज्जण तणा मनवछित पूरि ।
गयउ नेमि तउ विन ठउ काइ , अछइ अनेरा वरह सयाइ ।
बोलइ राजल तउ इह बयणू , नत्थि नेमि बर सम बर रयणू ।
धरइ तेजु गहगण सविताउ , गयणि न उग्गइ दिणयर जाउ ।
भाद्र विभरिया सर पिक्खेवि , सकरुण रोवइ रालज देवि ।
हा एक लडी मइ निरधार ; किम उवे पिसि करुणा सार ।

(५७) नल्लसिंह भाट सिरोहिया ने विजयपाल-रासा अनुमान से संवत् १३५८ में बनाया । यद्यपि उसमें विजयपाल यादव राय की लड़ाई का समय १०९३ दिया हुआ है, और यह भी लिखा है कि उन्होंने ग्रंथकर्ता को सात सौ ग्राम तथा और बहुत-सा सामान पारितोषिक में दिया, तथापि ये बातें इतिहास के प्रतिकूल जान पड़ती हैं, और इसकी भाषा रासो से पहले की कदापि नहीं समझ पड़ती । इससे अनुमान होता है कि यह ग्रंथ संवत् १३५८ के लगभग बना होगा । इनकी भाषा प्राकृत के रूप से मिश्रित होती हुई भी कुछ विकसित है ।

उदाहरण—

दशशत वर्ष निरान मास फागुन गुरु ग्यारसि ;
पाय सिद्ध बरदान तेग जद्दव कर धारसि ।
जीति सर्व तुरकान बलख खुरसान सु गजनिय ,
रूम स्वाम अमफहाँ फ़िरंग हबसान सु भजनिय ।
ईराण तोरि तूराण असि खौसिर बग खँधार सब,
बलवंड पिंड हिंदुवान हद चढ़िव बीर बिजैपाल तब ।

(५८) ज्योतिरीश्वर ठाकुर कविशेखराचार्य सं० १३५७ के लगभग मैथिल-नरेश राजा हरिहरदेव की सभा में थे। संस्कृत-भाषा के ग्रंथों के अतिरिक्त आपने वर्णरत्नाकर अथवा वर्णनरत्नाकर-नामक आठ कल्लोलों का गद्य-ग्रंथ लिखा (देखिए हिंदोस्तानी एकेडेमी की जनवरी, १९३४ की तिमाही पत्रिका)। ग्रंथ खंडित मिला है। इसके ७ कल्लोलों में नगर, नायिका, आस्थान, ऋतु, प्रयानक, भट्टादि और श्मशान-वर्णन हैं। ग्रंथ से कवि के पांडित्य का पता चलता है। इसमें वर्णन-बाहुल्य है। यदि महात्मा गोरखनाथ का समय १४०० के लगभग हो, अथच इसके बहुत पहले का न हो, जैसा कुछ लोग कहते हैं, किंतु अभी सर्वमान्य नहीं हुआ है, तो ज्योतिरीश्वर महाशय हिंदी के प्रथम गद्यकार ठहरेंगे। इनका गद्य संस्कृत शब्द-गर्भित शुद्ध मैथिली-भाषा में है, और काव्योत्कर्ष देखते हुए बहुत ही प्रशंसनीय है। ऐसा उत्कृष्ट गद्य परिवर्तन-काल के पूर्व नहीं लिखा गया।

उदाहरण—

अथ वर्षा-रात्रि का वर्णन—काजर क भीति तेलें मोचलि अइसनि रात्रि, पछेवाँ कों वेगें काजर कमोट फूनल अइसन मेघ निविड मांसल अंधकार देॢ। मेघ पूरित आकाश भए गेलते अछ। विद्युल्लता क तरंग तें पथ दिश ज्ञान होइते अछ। लोचन क व्यापार निष्फल होइवें अछ य रात्रि पात क शब्दें तरु ज्ञान, दर्दुर का शब्दें जलाशय ज्ञान, चटक क शब्दें वन ज्ञान, झिंगुरा क शब्दें पृथ्वी ज्ञान, मेघ का शब्दें आकाश ज्ञान, मनुष्य क शब्दें गृह ज्ञान, अग्नि क चोतें पुर ज्ञान, चरण क शब्दें पथ ज्ञान, वचन क शब्दें परापर ज्ञान, विज्ञान जनहुँ दिग्भ्रम जं रात्रि।

सब प्रमाणों पर ध्यान देकर गोरखनाथ ही पहले गद्य-लेखक माने जाते हैं। उनका स्थान जहाँ पहले रक्खा गया था, वहाँ से हटाया नहीं जाता, किंतु है कुछ पहले का। उनकी भाषा बहुत पुरानी नहीं समझ पड़ती, सो पूर्ण निश्चय के अभाव में उनका स्थान ग्रंथ में हटाया नहीं गया है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर को गद्य का दूसरा लेखक मानना चाहिए।

सं० १३५९ के गद्य का उदाहरण

माहरठ नमस्कार आचार्य दुः। किसाजी आचार्य? पंचविदु आचार जि

परिपालइ ति आचार्य भणियइ। तीह आचार्य माहरउ नमस्कारु हुउ। ईणि सांसारि दधि चदन दूर्वादिक मगलीक भणियइ। तीह मंगलीक सर्व ही माँहि प्रथम मगलु एहु। ईणि कारणि शुभ कार्य आदि पहिलउँ जिव ति कार्य एह तणइ प्रभावइ वृद्धिमंता हुयउ।

(हिंदोस्तानी एकेडेमी ति० प० जुलाई, १९३५)

संवत् १३६० के लगभग रणथभोर के महाराजा हम्मीरदेव के यहाँ (५९) शार्ङ्गधर-नाम के एक कवि ने शार्ङ्गधर-पद्धति, हम्मीर-काव्य और हम्मीर-रासो-नामक तीन ग्रंथ बनाए। शार्ङ्गधर की भाषा वर्तमान ब्रजभाषा और अवधी से बहुत कुछ मिलती है। हम्मीर-रासो दुष्प्राप्य ग्रंथ है, किंतु प्राकृत पिंगल-सूत्र में उसके कुछ उदाहरण कहे जाते हैं।

जज्जल कवि के उपर्युक्त वर्णन में इनका भी एक छंद है।

उदाहरण—

सिंह-गमन, सुपुरुष बचन, कदलि फरै इक बार,
तिरिया-तेल, हमीर-हठ चढ़ै न दूजी बार।

(६०) इन्हीं के समय (स० १२६१) में प्रेम तुंगाचार्य ने प्रबध-चिंतामणि ग्रथ अपभ्रंश भाषा में लिखा।

सं० १२६९ की प्राकृत का उदाहरण

मृषावादि मृषोपदेश दीधउ, कूदउलेख, लिखिउ कूड़ी साखि थापन मोसउ, कुणहइ— साउँ राणि मेलि कलहु विदाविद जु कोइ अतिचार मृषावादि वृत्ति भत्र संगलाइ यादि हुव त्रिविधि त्रिविधि। मिच्छामि दुक्कड़े।

(हिंदी-एकेडेमी ति० प० जुलाई, १९३५)

नाम—(६१) अवदूत जैन।

ग्रंथ—सघपति समरा रास।

रचनाकाल—१२७१।

विवरण—नागेंद्र गच्छ के आचार्य पासड सूरि के शिष्य थे।

उदाहरण—

बाजिय सख असख नादि काहल दुडु दुडिया,

घोड़े चटय सल्लार सार गडत सींगडिया।
तउ देवाल उजोत्रि वेगि घाघरि रवु झनकइ :
सन विसन नवि गण्इ कोई नवि वारि उयक्कइ।
सिजवाला घर धड हलुइ वाहिणि बहु वेगि :
धरणि धड्कइ रवु टइम् नवि सूझइ नेगि।
हय हींसिह आर लइ करह वेगि वहइ वहल्ल :
साद किया या हरइ अवरु नवि देइ बुल्ल।
निसि दीवि झल हलहिं जेसि अगिउ तारायणु :
पावल पार न पामिय वेगि वहइ सुखासणु।
आगे वाणिहि संचरए संवपति साहु दे सलु :
बुद्धिवंतु बहु पुंनिवंतु परि क्रमिहि सुनिश्चलु।

इस कवि के पीछे प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो का नाम आता है, जिनके बाद महात्मा गोरखनाथ ऋषिराज का कविता काल है।

(६२) अमीर खुसरो का देहांत संवत् १२८२ में हुआ। यह महाशय फ़ारसी के एक प्रसिद्ध कवि थे, पर हिंदी-भाषा के भी छंद इन्होंने रचे। सुप्रसिद्ध कोष-ग्रंथ खालिकवारी इन्हीं का लिखा हुआ है। यह उस समय लिखा गया, जब फ़ारसी और हिंदी का मेल होकर वर्तमान उर्दू की नींव पड़ रही थी। इन्होंने खड़ी बोली की भी कविता की है। खुसरो ने दिल्ली के ११ बादशाह देखे, तथा ७ की सेवा की। इनकी पहेलियाँ अच्छी होती थीं। मुख्यतया यह फ़ारसी के उत्कृष्ट कवि थे। इनकी मसनवियों की प्रशंसा है। खुसरो का कथन है कि अरबी तो श्रेष्ठ है, किंतु अच्छी तरह सोचने पर हिंदी-भाषा फ़ारसी से कम नहीं ज्ञात हुई। रूई और रूम की प्रचलित भाषाएँ समझने पर हिंदी से कम मालूम हुईं। हिंदी की उस काल भी एक मुसलमान के मुख मे इतनी श्लाघा सुनकर प्रसन्नता होती है, और जान पड़ता है, उस समय भी इसमें अच्छा साहित्य था।

उदाहरण—

खालिकबारी सिरजनहारः वाहिद एक बिदा करतार।

रसूल पैग़ंबर जान बसीठ, यार दोस्त बोलै जो ईठ।

× × ×

ज हाले मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल, दुराए नैना बनाए बतियाँ,
कि ताबे हिजरत न दारमैजाँ न लेहु काहे लगाय छतियाँ।
शबाने-हिजरत दराज़ जूँ ज़ुल्फ़ो रोज़े वस्लत चु उम्र कोता,
सखी, पिया को जो मैं न देखूँ, तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।

इनकी खड़ी बोली के भी उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

आदि कटे से सबको पालै, मध्य कटे से सबको घालै।
अंत कटे से सबको मीठा, सो खुसरो मैं आँखों डीठा। (काजल)
अंधा, गूँगा, बहरा बोले गूँगा आप कहाए,
देख सफ़ेदी होत अँगारा गूँगे से भिड़ जाए।
बाँस से मदिर वाका बासा बासे का वह खाजा,
संग मिलै तो सर पर राखैं वाको रावल राजा।
सोसी करके नाम बताया तामें बैठा एक,
उल्टा सीधा हिर फिर देखो वही एक का एक।
भेद पहेली मैं कही, सुन ले मेरे लाल;
अरबी हिंदी फ़ारसी तीनो करो ख़्याल।

यकायकज़्दिल दो चश्मे जादू बसद फ़रेबम् बेबुर्द तस्कीं;
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पियारे पी को हमारी बतियाँ?
चुँ शमअ सोज़ाँ चुँ ज़र्रं हैराँ हमेशा गिरियाँ बइश्क आहम्,
न नींद नैना, न अंग चैना, न आप आवें, न भेजें पतियाँ।
बहक़्क़ रोज़े-विसाल दिल्बर कि दाद मारा फ़रेब खुसरो;
सपीतमन को दुराय राखूँ जो जान जाऊँ पिया कि घतियाँ।

खुसरो रैनि सोहाग का जागी पीके सग,
तन मेरो मन पीउ को दोऊ भए इक रंग।
गोरी सोवै सेज पर मुख पर डारे केस;
चल खुसरो घर आपने रैनि भई चहुँ देस।

अमीर ख़ुसरो की भाषा गठी हुई, सुव्यवस्थित, परिपक्व और सबल है। शब्द-चयन मिठास लिए हुए भाव-व्यंजना सुचारुरूपेण करता है। रचना-कल्पना की कोमलता से सौरभित और स्वाभाविकता से अलंकृत है। भाषा में प्रवाह है, तथा कथन में मार्मिकता।

यह बात ध्यान देने-योग्य है कि खुसरो उर्दू का नाम भी न लेकर हिंदी को अरबी और फारसी के साथ स्थान देता है। इसकी भाषा बहुत मीठी और प्यारी होती थी। शब्द तुले हुए तथा भाव सुगठित है। यह उच्च श्रेणी का सुकवि है।

(६३) मुल्ला दाऊद अमीर ख़ुसरो का समकालीन था। इसका कविता-काल सवत् १३८५के लगभग था। इसने नूरक और चंदा की प्रेम-कथा हिंदी-पद्य में रची। यह ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया।

नाम—(६४) जिनपद्म सूरि।

ग्रंथ—थूलिभद्र फागु।

रचनाकाल—चौदहवीं शताब्दी का अंत।

विवरण—खरतर गच्छ के आप आचार्य थे।

उदाहरण—

पणमिय पास जिणंद पय अनु सर सइ समरेवि;
थूल भद्द मुणिवइ भणिसु फागु बंध गुण केवि।
अह सोहग सुंदर रूववंतु गुण मणि भंडारो;
कंचण जिम झलकंत कंति संजम सिरि हारो।
थूलि भद्द मुणि राउ जाम महियली बो हंतउ;
नयर राय पाडलिय माँहि पहूतउ विहरंतउ।

(६५) महात्मा श्रीगोरखनाथजी

यह महाशय पूर्ण ऋषि और बड़े सिद्ध करामाती हो गए हैं। इनका समय सवत् १४०७ खोज में लिखा है। राहुल सांकृत्यायनजी इनके दादा गुरु, जालंधरपाद का समय लगभग सं० ९२५ बतलाते हैं। इनका समय अनिश्चित है। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी विक्रमी तक कभी हो सकता है

(ऊपर का कवि नं० २० देखिए)। किंवदंतियों द्वारा यन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (विश्वकोश) में इनका समय ईसवी बारहवीं शताब्दी है। भाषा ऐसी कुछ पुरानी नहीं समझ पड़ती।

यह भी सुना जाता है कि यह आल्हा के समय में हुए, और अमर हैं। यह मत्स्येंद्रनाथ (मुछंदर) के शिष्य थे। यह महाराज सिद्ध हो गए थे, परंतु मुछंदरजी संसारी जाल में फँसे पड़े रहे। उन्हें इन्होंने फिर उससे छुड़ाया। इनकी रचना में लेखकों की असावधानी से कुछ छंदोभंग आ गए हैं। इनके ११ ग्रंथ खोज (१९०२ व १९०३) में मिले हैं—

गोरखबोध, दत्त-गोरख-सवाद, गोरखनाथ-जीरापद, गोरखनाथजी के स्फुट ग्रंथ, ज्ञानसिद्धांतयोग, ज्ञानतिलक, योगेश्वरी-साखी, नरवैबोध, विराट पुराण, गोरखसार और गोरखनाथ की बानी। इन ग्रंथों के अतिरिक्त गोरखनाथजी ने गोरखशतक (ज्ञान-शतक) चतुरशीत्यासन, ज्ञानामृत, योगचिंतामणि, योगमहिमा, योगमार्तंड, योगसिद्धापद्धति, विवेकमार्तंड और सिद्ध-सिद्धांतपद्धति-नामक नव ग्रंथ संस्कृत में बनाए। यह महाशय शैव थे। इनका मंदिर गोरखपुर में बना है। यह देवताओं की भाँति पूजे जाते हैं। इन्होंने गोरख-पंथ चलाया, जिसके लाखों अनुयायी यत्र-तत्र उत्तरी भारत में पाए जाते हैं। उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त गोरखनाथजी के सत्ताईस छोटे-मोटे अन्य ग्रंथों के नाम खोज १९०२ के ४४ वें पृष्ठ पर लिखे हैं। गोरखनाथजी का लिखा हुआ एक गद्य-ग्रंथ भी खोज में मिला है। अतः सबसे प्रथम गद्य-लेखक गोरखनाथजी ही हैं। इनकी कविता साधारण है।

महात्मा गोरखनाथ का आविर्भाव नैपाल अथवा उसकी तराई में हुआ। गोरखपुर आपका मुख्य स्थान है, जहाँ एक मंदिर में यह देवता की भाँति, मूर्ति के रूप में, पुजते हैं।

महात्मा गोरखनाथ की भाषा न तो ख़ुसरो की-सी प्रांजल है, न रोज़ाना बोलचाल की, फिर भी उसमें सौंदर्य तथा हिंदीपन की अच्छी झलक है। संत लोग देशाटन बहुत करते थे, सो उनकी भाषा में प्रांतिक शब्द आ जाते थे, जैसे गोरखनाथ ने नी, चा, बोलिबा आदि लिखे हैं। फिर भी प्राकृत प्रणाली

छोड़कर आपने तत्सम शब्दों का अच्छा प्रयोग किया है, यद्यपि प्राकृत अपभ्रंश शब्द आपमें पाए जाते हैं।

बौद्ध धार्मिक सम्प्रदाय के तत्कालीन रूप पर प्रसिद्ध बौद्ध पण्डित राहुल साकृत्यायन की सम्मति 'गंगा'-पत्रिका के प्रवाह १, तरंग १ से यहाँ दी जाती है—

"भारत से बौद्ध-धर्म का लोप तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में हुआ। आठवीं शताब्दी में एक प्रकार से भारत के सभी बौद्ध-संप्रदाय वज्रयान गर्भित महायान के अनुयायी हो गए थे, और भैरवी चक्र के मज़े उड़ा रहे थे। बड़े-बड़े विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि आधे पागल हो, चौरासी सिद्धों में दाखिल हो, संध्या-भाषा में निर्गुण गा रहे थे। महायान ने ही धारणीयों और पूजाओं से निर्वाण को सुगम कर दिया था। वज्रयान ने तो उसे एकदम सहज कर दिया। इसी-लिये आगे चल वज्र सहजयान (सहजिया) भी कहा जाने लगा।

"वज्रयान के विद्वान् प्रतिभाशाली कवि चौरासी सिद्ध विलक्षण प्रकार से रहा करते थे। कोई पनही बनाया करता था, इसलिये उसे पनहिपा कहते थे। (इसी प्रकार कमरिया, डमरुआ, ओखरिया आदि नाम पड़े।) ये लोग शराब में मस्त, खोपड़ी का प्याला लिए श्मशान या विकट जंगलों में रहा करते थे। जन-साधारण को ये जितना ही फटकारते थे, उतना ही वे इनके पीछे दौड़ते थे। लोग इन्हें अद्भुत चमत्कारों और दिव्य शक्तियों के धनी समझते थे। ये लोग खुल्लमखुल्ला स्त्रियों और शराब का उपभोग करते थे। त्राटक (Hyprotism) के बल पर कभी-कभी भोले लोगों को कुछ चमत्कार दिखा देते थे।"

महर्षि गोरखनाथ ने उच्च शैव-मत निकालकर इन सहजिया-वालों को अपने मत में ले लिया। शायद गोरख-पथ के अघोर पथ एवं वाममार्गी भाग इन्हीं के अस्तित्व के अनिवार्य फल थे। गोरख-पंथ में वदात को विशेष विभूतियाँ एवं शिव की उपासनावाली ऐसी प्रणालियाँ भी हैं, जो इनके मत को लोक द्वारा ग्रहण के योग्य बनाती हैं। तत्कालीन समाज पर इस मत का प्रभाव अच्छा पड़ा। इसका कुछ विवरण यहाँ भी दिया जाता है।

गोरख-पंथ में उपासना तथा तंत्र-वाद दोनो हैं। इसमें कर्म-कांड तथा कुछ शारीरिक क्रियाएँ भी हैं, और यह मत योग से सबद्ध है। इसमें विवेकावाद तथा दार्शनिक विषयों का अभाव-सा है। यह मत विशेषतया साधुओं में प्रचलित है। गोरखपुर के इधर-उधर बहुत-से गोरख-पथी हैं, और कुछ महाराष्ट्र-प्रांत में भी पाए जाते हैं। इसमें कुछ वाममार्ग भी है, और इसका एक भाग अघोर-पथ है। गोरख-पथ का प्रचार अब अपढ़ तथा निम्न श्रेणी के लोगों में अधिक है, और इतरों में कम। महात्मा गोरखनाथ का समय अभी पूर्णतया स्थिर नहीं है। आजकल बहुमत का झुकाव जैसा है, वही समय हमने ऊपर लिखा है, किंतु आल्हखंड में आप आल्हा के समकालीन माने गए हैं, तथा कोई-कोई आपको आठवीं शताब्दी का भी मानते हैं। श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन एक बौद्ध पंडित हैं। आप भी मुछंदरनाथ का पुराना समय देते हैं, जैसा ऊपर कहा जा चुका है। महात्मा गोरखनाथ ने तांत्रिक शैव-मत को स्वच्छ करके उसे दक्षिणमार्ग की ओर लाने का प्रयत्न किया है, तथा शंकर स्वामी के निर्गुण शैव-वाद को कुछ सगुणत्व देकर अधिक लोकोपयोगी बनाया है, यद्यपि ऐसा करने में तार्किक शुद्धता की कुछ कमी आ ही जाती है।

कविता के उदाहरण—

स्वामी तुम्हे गुर गोसाईं। अम्हे जा सिष, सबर एक पुछिबा।
दया करि कहिबा, मनहु न करिबा रोस; मारभी चेला कैसे रहै;
नीरारंभे चेला कूण बिधि रहे, सतगुर होय सुपुछया कहै।

अवधू रहिया हाटे बाटे रूख बिरष की छाया;
तजिबा काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया।
आपु सुगुनरि यनत बिचार, पडित निद्रा अलप अहार।
आओ भाई धरि-धरि जाओ, गोरख बाला भरि-भरि लाओ।
झरै न पारा बाजै नाद, ससिहा सूर न बाद-बिबाद।
पवन गोटिका रहनि अकास, महियल अंतरि नभक बिलास।
पयलनिडीबी सुन्न चढ़ाई, गोरख कथत मछींद्र बताई।
चार पहर आलिंगन निद्रा, संसार जाय बिखिया याही।

उभय हार्थों गोरखनाथ पुकारै, तुम्हे भूल महारी माया भाई।
वामा अंगे सोहवा जम चा भोगिवा सगे न पिवणा पाणी।
इमतो अजरावर होई मर्छींद्र बोल्यो गोरख वाणी।

उदाहरण गद्य

सो वह पुरुष संपूर्ण तीर्थ स्नान करि चुकौ, अरु सपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मननि को दैं चुकौ, अरु सहस्र जज्ञ करि चुकौ, अरु देवता सर्व पुजि चुकौ, अरु पितरनि को संतुष्ट करि चुकौ, स्वर्गलोक प्राप्त करि चुकौ, जा मनुष्य के मन छन-मात्र ब्रह्म के विचार बैठौ।

श्रीगुरु परमानंद तिनको दंडवत है। है कैसे परमानंद आनंद-स्वरूप है सरीर जिन्हि को। जिन्ही के नित्य गाये ते सरीर चेतन्नि अरु आनंदमय होतु हैं। मैं जु हौं गोरिष सो मछंदरनाथ को दंडवत करत हौं। हैं कैसे वे मछंदरनाथ। आत्मा जोति निश्चल है अतहकरन जिनिको अरु मूल द्वार तै छह चक्र जिनि नीकी तरह जानै, अरु जुग काल कल्प इनकी रचना तत्त्व जिनि गायो सुगंध को समुद्र तिनि कौ मेरी दंडवत। स्वामी तुमे तौ सत गुरु अम्हे तौ सिपसबद एक पुछिवा दया करि कहिवा मनि न करिवा रोस।

पराधीन उपराति बंधन नाही सुआधीन उपरांति मुकति नांही चाहि उपरांति पाप नाहीं अचाहि उपराइति पुनि नांही क्रम उपराति मल नाही निहिक्रम उपराईति निरमल नाही दुप उपरांति कुवधि नाही निरदोप उपराति सवधि नांही घोर उपराईति मंत्र नाही नारायण उपराईति ईसट नाही निरंजन उपराईति ध्यान नांहीं।

कुछ लोगों का विचार है कि यह भाषा उस काल के लिये बहुत मँजी हुई होने से गोरखनाथ की न होगी। यदि इनका समय दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक मानें, तो यह कथन ठीक बैठेगा, किंतु यदि उसे उपर्युक्त ज्योतिरीश्वर के समय के लगभग समझें, तो कोई सदेह नहीं रह जाता। गोरखनाथ का समय वही है, जो सहजिया-मत के अंत का है, क्योंकि गोरख-पंथ में ही वह मिल गया।

नाम—(६६) जलंधरनाथ।

समय—सं० १४०७ अंदाज़ से। आप गोरखनाथ के चाचा गुरु, अर्थात् मछंदरनाथ के गुरुभाई थे। इस संबध में कवि नं० २० भी देखिए।

उदाहरण—

थोड़ो खाय तो कलपै-कलपै, घणों खाय तो रोगी,
दुहूँ पर वाकी संधि विचारै ते कोइ बिरला जोगी।
यहु ससार कुबुधि का खेत, जब लगि जीवै तब लगि चेत,
आख्या देखै काणों सुणै, जैसा वाहै तैसा लुणै।

नाम—(६७) चौरंगीनाथ।

समय—सं० १४०७।

विवरण—महात्मा गोरखनाथ के गुरुभाई।

उदाहरण—

मरिबा तौ मन मीर मरिबा लुटिवा पवन भँडार;
साधिबा तौ पँच तत्त साधिबा, सेइबा तौ निरंजन निरंकार।
माली लौं भल माली लौं जो सींचै सहज कियारी,
उनमनि कला एक पहूपनि पाइले आवागवन निवारी।

नाम—(६८) कणेरीपाव, जलंधरनाथ के शिष्य थे।

समय—सं० १४०७।

उदाहरण—

आछै-आछै महिरे मंडल कोई सूरा, मारया मनुवाँ नै समुझावै रे लो।
एहि रस लुब्धी मै गल मातो, स्वादि पुरुष तैं भौंरा रे लो।

नाम—(६९) चरपटनाथ (मछंदरनाथ के शिष्य थे)।

समय—१४०७।

उदाहरण—

किसका बेटा किसकी बहू, आप सवारथ मिलिया सहू;
जेता पूला तेती आल, चरपट कहै सब आल जंजाल।
चरपट चीर चक्रमन कंथा, चित्त चमाऊँ करना;
ऐसी करनी करो रे अवधू, बहुरि न होई मरना।

नाम—(७०) चुणकरनाथ ।

समय—१४०७ । चरपटनाथ के समकालीन ।

उदाहरण—

साधी सूधी के गुरु सेरे, बाई सूँ व्यंद गगन में फेरे,
मनका बाकुल चिड़ियाँ बोलैं, साधी ऊपर क्यों मन डोलैं।
वाई बध्या सयल जग वाई किनहुँ न वध ;
वाइ विहूणा ढहि परै जोरै कोइ न सध ।

जलंधरनाथ से लेकर चुणकरनाथ तक के नामादि श्रीयुत अयोध्या-सिंह उपाध्याय के साहित्य-इतिहास मे प्राप्त हुए हैं। इन पाँच कवियों के समय गोरखनाथ के अनुसार है ।

सं० १४११ का उदाहरण

ईहीं जि जंबूद्वीप माहि भरतक्षेत्र माहि मगध नामि जनपदु छइ । तिहाँ विजयवती नामि नगरी । तिहाँ नरवमि नाम राजा, रतिसुंदरी नामि पट्ट महादेवी हुँती । हरिदत्त नामि पुत्तु हूँतउ । मतिसागर दिक, अनेकि, महामात्य हुँता । अनेरइ दिवसि राजेंद्र आगइ सभा माहि धर्मविचार विखइ आलापु नीपनउ । . . एह माहरउ धनु तउँ लय ।

(हिं० एकेडेमी ति० प० जुलाई, १९३५)

नाम—(७१) विनयप्रभु उपाध्याय जैन ।

ग्रंथ—(१) गौतम-रासा, (२) हंसवच्छरास, (३) शीलरास ।

रचनाकाल—१४१२ ।

उदाहरण—

विनय विवक विचार सार गुण गणह मनोहरु ;
सात हाथ सु प्रमाण देह रूपिहि रंभावरु ।
नयण वयण कर चरणि जिणवि पंकज जलि पाडिय ;
तेजिहि तारा चंद सूर आकासि भमाडिय ।
रूविहिं मयणु अनंग करवि मेल्हिउ निद्दाडिय ;
धीरिम मेरु गंभीरि सिंधु चंगिम चय चाडिय ।

नाम—(७२) हरसेवक मुनि ।

ग्रंथ – ममणारेहा-रास ।

रचनाकाल—१४१३ ।

नाम—(७३) विद्धणु जैन ।

ग्रंथ—ज्ञानपचमी चउपइ ।

रचनाकाल—१४२३ ।

विवरण—ठक्कर माल्हे के पुत्र तथा जिन उदय गुरु के शिष्य थे ।

उदाहरण—

जिनवर सासणि आछइ सारू , जासु न लब्भइ अंत अपारू ।
पढ़हु गुनहु पूजहु निसुनेहू , सिय पंचमि फलु कहियउ एहू ।
सजम मन धरि जो नरु करई , सो नरु निस्चइ दुत्तरु तरई ।

नाम—(७४) सिद्धसूरि जैन ।

ग्रंथ—शिवदत्त-रास ।

रचनाकाल —१४२३ ।

नाम—(७५) हीरानंद मूरि जैन

ग्रंथ—कलिकाल-रास ।

रचनाकाल—१४२६ ।

इस उत्तर प्रारंभिक काल में पूर्व-काल की अपेक्षा हिंदी ने बहुत संतोषदायिनी उन्नति की । इस समय उसे अपभ्रंश से बहुत करके छुटकारा मिल गया, और उसने वह रूप धारण किया, जिसकी उन्नति होते-होते दो शताब्दियों में सूर एवं तुलसी की रचनाएँ दृष्टिगोचर हुईं । इसी समय से महात्मा गोरखनाथ और ज्योतिरीश्वर ठाकुर के साथ गद्य-रचना का प्रारभ होता है । इस काल में अनेकानेक कविजन हुए होंगे, परतु समय ने उनके यशों को नष्ट करके उनके नाम भी लुप्त कर दिए । खोज से इस समय के कुछ कवियों तथा ग्रंथों का पता लगा है । आशा है, आगे चलकर अन्य उपयोगी बातें भी विदित होंगी । इस काल के दो मुसलमान कवियों की भी रचनाएँ मिलती हैं, अर्थात् अमीर ख़ुसरो तथा मुल्ला दाऊद की । पूर्व-काल में राजाओं के यश-कीर्तन की प्रथा हिंदी में मुख्य-

तया स्थिर थी। इस प्रणाली पर इस काल में भी कुछ-कुछ अनुगमन हुआ। धर्म-ग्रंथ लिखने के ढग ने महात्मा गोरखनाथ से विशेष बल पाया। दाऊद ने एक प्रेम-ग्रंथ रचा, और खुसरोने खड़ी बोली में भी रचना की। अत. इस उत्तर-काल में राज-यश-गान की चाल कुछ शिथिल हुई, धर्म-ग्रंथों के प्रचार का हुआ, और प्रेम-कहानी लिखने की जड पड़ी। प्राय. ये सब बातें पृथ्वीराज-रासो में वर्तमान हैं, परतु मुख्यता वह नृप-यश कीर्तन का ही सदिग्ध ग्रंथ है। उत्तर काल में यद्यपि ऐसे कवि गणना में अधिक हुए, जिनकी रचनाएँ अब तक मिलती हैं, परंतु पूर्व-काल का रासो एक ऐसा ग्रथ है, जिसकी तुलना इस उत्तर-काल की सब पुस्तकें मिलकर भी नहीं कर सकतीं, हाँ, इतना अवश्य है कि इस समय लेखनशैली ने बहुत उन्नति पाई। अब तक कोई विशेष भाषा हिंदी में स्थिर नहीं हुई थी। चंद अपभ्रंश को छूती -हुई प्राकृत-भाषा में रचना करता था। पीछे इस उत्तरकाल में अवधी, व्रजभाषा, राजपूतानी, जावी, खड़ी बोली आदि सभी भाषाओं में कवियों ने कविता रची। महात्मा गोरखनाथ ने, पूर्वीय प्रांत के निवासी होने पर भी, गद्य में व्रजभाषा का प्राधान्य रक्खा। इससे विदित होता है कि उस समय अवधी गद्य का विशेष प्रयोग ग्रंथों में नहीं होता था, परतु व्रजभाषा में गद्य-ग्रंथ लिखे जाते थे, जिनका अभी तक पता नहीं लगा है। गोरखनाथजी प्रथम प्रसिद्ध ब्राह्मण कवि हैं, जिन्होंने हिंदी को आदर दिया।

उत्तर प्रारभिक काल में नबर ५५ से ७५ तक के २१ कविगण मिले हैं। इनमें ज्योतिरीश्वर ठाकुर, जज्जल, शार्ङ्गधर, अमीर खुसरो और गोरखनाथ की प्रधानता है। रासो-काल के कुछ पट्टे-परवाने गद्य में मिले हैं, किंतु ओझाजी उन्हें जाली कहते हैं। ठीक भी होने पर वे साधारण गद्य के उदाहरण हैं, न कि साहित्यिक के। गोरखनाथ का गद्य उपदेश-पूर्ण एवं कुछ-कुछ साहित्यिक है, तथा ज्योतिरीश्वर का पूर्णतया साहित्यिक। अतएव गद्य-साहित्य का जन्म इसी समय हुआ। नल्लसिंह तथा शार्ङ्गधर ने नृप-यश-गान किया। जज्जल-कृत वीर-काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। इन तीनो कवियों तथा पृथ्वीराज-रासो के सहारे कुछ लेखक वीर-गाथा-काल का कथन करते हैं, यद्यपि इन समयों

के अन्य कवियों की अपेक्षा वीर कवियों की गणना बहुत स्वल्प है। इन चार-पाँच कवियों से इतर कोई दृढ़ वीर-वर्णन उपलब्ध नहीं है। शार्ङ्गधर की भाषा बहुत विकसित है। अमीर खुसरो बहुत ही उच्च श्रेणी के कवि थे। गोरखनाथ ने एक पंथ ही चला दिया।

इनके तथा आगे आनेवाले पथ-प्रवर्तकों के प्रयत्नों से बल द्वारा बढ़नेवाले मुसलमानी धर्म की अनुचित वृद्धि रुकी। समाज के अधो-भागों में इन पंथों की विशेष वृद्धि हुई, जिससे उन लोगों की उदासीनता ने उमंग का रूप ग्रहण करके हिंदू-मत की सहायता की। इस काल के कविगण मिथिला, मेवाड़, नैपाल, राजपूताना के अन्य भाग, मध्यभारत, दिल्ली, गोरखपुर आदि में मिलते हैं। कुछ जैन कवियों के धार्मिक उपदेश भी चलते आए। साहित्य-विरचन की शक्ति बढ़ी, और विषयों का क्षेत्र कुछ विस्तृत हुआ। जज्जल, शार्ङ्गधर और ख़ुसरो इस समय के सुकवि थे।

इस काल मुसलमानी राजवंश खिलजी (स० १३४७-१३७७) तथा तोगलक (स० १३७७-१४५५) हुए। दक्षिण में हिंदू विजयनगर-साम्राज्य (सं० १३९३-१६२३) तथा बहमनी-साम्राज्य (स० १४०४-१५८३) स्थापित हुए। बहमनी महाराष्ट्र देश की ओर था, और विजयनगर मदरास-प्रांत की ओर। यद्यपि बहमनी मुसलमानी राज्य था, तथापि इसमें ब्राह्मणों का प्राधान्य था।

खिलजियों में अलाउद्दीन सर्व-प्रधान हुआ। मुसलमानी कुल सम्राटों में अकबर, औरंगज़ेब और अलाउद्दीन प्रधान थे। अलाउद्दीन ने महाराष्ट्र देश (१३५१-६८) चित्तौर (१३६०) तथा रणथंभौर (१३६१) जीते, किंतु केवल २५ वर्ष के पीछे विजयनगर-साम्राज्य स्थापित हो ही गया। अलाउद्दीन ने जजिया में कड़ाई की। सं० १३७४-७५ में एक हिंदू जैन दिल्ली का शासक हो गया, किंतु इसका कोई स्थायी फल न निकला। फ़ीरोज़ तोगलक़ ने जज़िया ब्राह्मणों को छोड़कर शेष हिंदुओं से लिया जाता था, उसे ब्राह्मणों से भी लेना आरंभ किया। अलाउद्दीन के पीछे (सं० १३७१) से अकबर के राज्यारंभ-काल तक दिल्ली का मुसलमानी साम्राज्य बल-हीन रहा। उत्तरकालीन दास-वंश

भी शिथिल था। कश्मीर को १३८२ में एक स्वतंत्र मुसलमान शक्ति ने जीता। इसका राज्य १६०७ के लगभग तक चला।

पाँचवाँ अध्याय
पूर्व माध्यमिक हिंदी
(सं० १४४५-१५६०)
(७६) विद्यापति ठाकुर

महामहोपाध्याय श्रीविद्यापति ठाकुर का जन्म विसपी ग्राम, मिथिला में हुआ। यह मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर, पितामह का जयदत्त ठाकुर और प्रपितामह का धीरेश्वर ठाकुर था। विसपी ग्राम इन्हें राजा शिवसिंह देव से मिला, जिसका दानपत्र अब तक इनके वंशजों के पास है। वह लक्षणसेनी सन् २९३ का लिखा है, जो स० १४५९ में पड़ता है। इससे इनके जन्म-संवत् का अनुमान १४२० होता है। इनका कविता-काल १४४५ में समझना चाहिए। यह महाशय संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे, जिसमें इनके पाँच नामी ग्रंथ हैं, जिनकी मिथिला-प्रांत में बड़ी प्रशंसा है। आपके दो ग्रंथ अपभ्रंश में भी हैं। इन्होंने मैथिल-भाषा में बहुत से पद बनाए, जो मिथिला में काम-काज के अवसर पर गृहस्थों के यहाँ गाए जाते हैं, और इनके पदों का वंग देश में भी विशेष आदर है, यहाँ तक कि बंगाली महाशय इन्हें वंगदेशी कहते हैं, यद्यपि वंग-दर्शन के द्वितीय वर्ष की द्वितीय संख्या से इस मत का खंडन होता है। यह महाशय दीर्घजीवी हुए हैं। बिहारी और बंगाली इनकी कविता को परमपूज्य दृष्टि से देखते हैं। उसका संग्रह आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा ने अपने उपहार में वितरित करके प्रशंसनीय काम किया, और इनकी पदावली सन् १९१० में नगेंद्रनाथ गुप्त द्वारा संकलित होकर अच्छे रूप में निकली, जो हमारे पास प्रस्तुत है। इसमें ८४१ पद राधा-कृष्ण के शृंगार-विषयक, ४४ पद शिव-पार्वती के, ३१ पद विविध विषयों के और अंत में २० पद कूट और पहेलियों के हैं। आपके पदों का संग्रह हाल में छपा है, जो बढ़िया है। आपकी कविता में विशेषतया शृंगार-रस प्रधान है। इनकी

महानुभाव की रचनाएँ बड़ी ही सजीव, श्रुति-मधुर, तल्लीनता-पूर्ण और उमंगवर्द्धिनी हैं। आप शैव थे।

चित्तौर के प्रसिद्ध महाराणा (७७) कुंभकर्ण ने सं० १४१९ से १४६९ पर्वत राज्य किया। यह महाराणाजी हिंदी के कवि थे, और बहुत-से कवियों को इन्होंने आश्रय दिया, पर उनमें से अब किसी का पता नहीं लगता। इन्होंने गीतगोविंद की टीका बनाई। यह टीका का ग्रंथ भी लुप्त हो गया है। कुछ लोगों को भ्रम है कि प्रसिद्ध मीराबाई इन्हीं की पत्नी थीं, पर यह बात अशुद्ध है।

नाम—(७८) फरीद, महाराष्ट्र प्रांत।

समय—सं० १४५०।

रचना—स्फुट।

विवरण—यह महाशय शैख सुल्तान के साथी और सेन नाई के समकालीन थे। श्रीकृष्ण-भक्ति पर आपने अधिकांश रचनाएँ कीं।

नाम—(७९) शैख़ सुल्तान, महाराष्ट्र प्रांत।

समय—सं० १४५०।

रचना—स्फुट।

विवरण—यह सेन नाई के समकालीन कवि थे। मुसलमान होते हुए भी इन्होंने श्रीकृष्ण-भक्ति पर भाव-पूर्ण रचनाएँ कीं। इनके अतिरिक्त क़ाज़ी मुहम्मद ज़िंदा फ़क़ीर, सैयद हुसैन, बहादुर बाबा, लतीफ़, शाह मुनीर, फ़ाज़िलख़ां, शाहबेग, सुलतान शाहिद, कादिर, शैख मोहम्मद आदि हिंदी के मुसलमान कवि इस प्रांत में हो गए हैं।

सं० १४५० का उदाहरण

जु करइ, सुइ, दिइ, पठइ, हुइ—इत्यादि बोलिवइ उक्ति माहि क्रिया करवइ जु मूलिगउ हुइ सुकर्ता। तिहाँ प्रथमा हुइ चंद्र ऊगइ—ऊगइ इसी क्रिया। कउण ऊगइ? चंद्र। जु ऊगइ सुकर्ता तिहाँ प्रथमा। जं पीजइ त कर्म। तिहाँ द्वितीया।

(हिं० एकेडेमी ति० प० जुलाई, १९३५)

नाम—(८०) सोमसुंदर सूरि।

ग्रंथ—आराधनारास।

रचनाकाल—१४५०

संवत् १४५३ में (८१) नारायणदेव कवि ने 'हरिचंद पुराण कथा'-नामक प्रसिद्ध दानी राजा हरिश्चंद्र की कहानी कही। इसकी भाषा प्राचीन भाषा से मिलती है, और इसमें छंदोभंग बहुत हैं।

उदाहरण—

चौदह सइ त्रिपनो विचार ; चैत्र मास दिन आदित वार।
मन माहि सुमरियो आदीत , दिन दुसरा है कियो कवीत।
एहि कथा को आयो छेव ; हम तुम जपो नारायण देव।

नाम—(८२) मुनि सुंदर जैन।

ग्रंथ—शांतरसरास।

रचनाकाल—१४५५।

नाम—(८३) सदन भक्त।

इनका स्वामी रामानंद के ठीक पहले होना ग्रंथसाहब के आधार पर कहा जाता है। इनका उदाहरण नंबर ८७ के नीचे है।

(८४) श्रीस्वामी रामानंदजी एक प्रसिद्ध वैष्णव-मत-संस्थापक संवत् १४५६ के लगभग हुए। यह महाराज सिद्ध योगी हो गए हैं। महात्मा कबीर-दास इन्हीं के शिष्य थे, और गोस्वामी तुलसीदासजी इन्हीं का (रामानंदी)-मत मानते थे। रामानंदी संप्रदाय के हज़ारों साधु आज तक हैं। इन महाराज ने भाषा के कुछ पद भी बनाए, और इसीलिये कवियों में भी इनकी गणना हुई है।

इनकी भक्ति-प्रगाढ़ता एवं काव्य-प्रेम के कारण इनके पंथियों द्वारा हिंदी का बड़ा उपकार हुआ है। वल्लभ महाप्रभु की भाँति यह महात्माजी भी हिंदी के बड़े उपकारक थे। आप श्री-संप्रदायवाले महात्मा राघवानंद के शिष्य, थे, जिनके गुरु हरिनंदजी थे। हरिनंदजी प्रसिद्ध महात्मा रामानुजाचार्य के शिष्य, देवाचार्य के चेले थे। महात्मा रामानुजाचार्य का समय ११५० संवत् माना जाता है। बाबू राधाकृष्णदास ने रामरक्षा-स्तोत्र और रामानंदीय वेदांत-नामक इनके दो

ग्रंथ लिखकर उनके विषय में संदेह भी प्रकट किया है। च० त्रै० खोज में राम-रक्षा और ज्ञानतिलक-नामक दो ग्रंथ इनके मिले हैं।

रामानंद कान्यकुब्ज ब्राह्मण प्रयाग के निवासी थे। आपका प्रभाव उत्तरी वैष्णवता पर बहुत अच्छा पड़ा। स्वामी रामानुजाचार्य शूद्रों को अपने संप्रदाय में नहीं रखते थे, किंतु आपने उन्हें भी अपनाया। स्वामी रामानुजाचार्य ने नारायणोपासना पर बल देकर अहिंसा का प्राधान्य तथा हिंसा-युक्त बलि एवं ऐसे ही कर्म-कांड का निरादर किया। इधर स्वामी रामानंद ने रामोपासना पर बल दिया। उन्होंने संस्कृत में शिक्षा दी, और इन्होंने हिंदी में। आपके शिष्यों तथा शिष्य-परंपरा में कबीरदास और तुलसीदास भारी महात्मा हुए। गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व रामानंदियों में अध्यात्म रामायण की मुख्यता थी। पीछे से न केवल रामानंदियों में, वरन् सारे भारत में तुलसी-कृत रामायण की महत्ता हुई। उत्तरी भारत में दक्षिण मार्ग की शुद्ध वैष्णवता के प्रचार में सर्वप्रथम तथा श्रेष्ठ प्रभाव स्वामी रामानंद का ही पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास तथा कबीर साहब के जो प्रभाव हैं, उनका बहुत बड़ा श्रेय रामानंद ही को है जो पद दक्षिण में स्वामी रामानुजाचार्य का है, वही उत्तर में इनका है आपने सीताराम-संबंधिनी पवित्र भक्ति का प्रचार किया। आपने परमेश्वर को भुलाया तो नहीं, किंतु ईश्वर पर प्रधानता रक्खी। ईश्वर के आपने चार आदर्शीकरण माने, अर्थात् अर्चा (मूर्ति) व्यूह-विभव (अवतार), पर (चतुर्भुज नारायण) और अंतर्यामी (सर्वव्यापी)। व्यूह में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को मानकर उनके अवतार क्रमश. भरत प्रद्युम्न, राम कृष्ण, शत्रुघ्न अनिरुद्ध और लक्ष्मण बलदेव माने। उपदेश हिंदी में देते हुए भी आपने सिद्धांत संस्कृत में लिखे। आपने सारे भारत का पर्यटन किया, तथा संसार के लिये वर्ण-भेद मानकर उपासना-मात्र में उसका तिरस्कार किया। आपकी हिंदी-रचना बहुत कम मिलती है। एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

> आरति जै हनुमान लला की, दुष्ट-दलन रघुनाथ कला की।
> आनि सजीवनि प्रान उबारयो, मही सयन कै भुजा उपारयो।
> गाढ़ परे कपि सुमिरौं तोहीं, होहु दयाल देहु जस मोही

लंका कोट समुंद्र खाई, जात पवनसुत बार न लाई।
जो हनुमत की आरति गावै; बसि बैकुंठ परम पद पावै।

महात्मा रामानंद के शिष्यों में पद्मावती तथा सुरसरी नाम्नी महिलाएँ भी थीं, और आगे चलकर इस मत को सहजोबाई ने भी अपनाया।

सं० १४५७ के लगभग का उदाहरण

दृढ़ प्रहार पल्लीपति धाड़ि सहित एकिं गामि पडिओ। एक ब्राह्मण-नइँ घरि चीरनुँ भोजन ब्राह्मणी अनइ बालक वाहावर्ताँ हूतां लीधउ। तेतकइँ ब्राह्मण स्नान करि वागिओ हूतओ, ते आविओ। तीणइ रोम लगइँ भोगल लेइ केतलाइ चोर विणासिया।'

(हिं० एकेडेमी ति० प० जुलाई, १९३५)

(८५) जैदेव मैथिल का समय संवत् १४५७ है। यह महाशय मैथिल कवि विद्यापति के समकालीन थे। इनका कोई ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया, पर इनकी कविता मिथिला में प्रसिद्ध है।

(८६) सेन नाई रीवाँ-निवासी का भी कविता-काल संवत् १४५७ के लगभग था। यह स्वामी रामानंद के शिष्य थे। इनकी कविता सिक्खों के ग्रंथ-साहब में है। सरोजकार ने एक सेन का समय संवत् १५६० लिखा है, पर वह रचनाकार इनसे पृथक् व्यक्ति-सा समझ पड़ता है, जिसका वर्णन उचित स्थान पर किया जायगा। उनकी कविता भी इसकी रचना से नहीं मिलती। कहते हैं, रीवाँ के महाराजा इस महात्मा के शिष्य हो गए थे।

(८७) स्वामी भवानंदजी महात्मा रामानंद के शिष्य संवत् १४५७ के लगभग थे। आपने अमृतधार-नामक चौदह अध्यायों का वेदांत पर एक ग्रंथ लिखा।

उदाहरण—

सेन नाई के

धूप-दीप घृत साजि आरती, वारने जाऊँ कमलापती।
मंगला हरि मंगला नित मंगल राजा राम राय को,
उत्तम दियरा, निरमल बाती, तुही निरंजन कमलापाती।

राम भगति रामानँद जानै, पूरन परमानंद बखानै ,
मदन मुरति भय तारि गुबिंदे, सेन भणय भजु परमानंदे ।

पीपा महाराज के

काया देवा काया देवल काया जगम जाती ,
काया धूप-दीप नैवेदा काया पूजौ पाती ।
काया बहु खँड खोजत-खोजत नव निद्धी धरि पाई ,
न कछु आइबो न कछु जाइबो रामहि केरि दोहाई ।
जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे जा खोजै सो पावै ,
पीपा प्रणवे परम तत्त्व है सतगुर होय लखावै ।

धना के

भ्रमत फिरत बहु जनम बिलाने तनु मनु धनु नहिं धीरे ;
लाजब काम लुब्ध बिखुराता॰मन विसरे प्रभु हीरे ।
बिखुफल मीठ लगै मन बउरे चार बिचार न जाना
गुनते प्रीति बढ़ी अन भाँती जनमु मरनु फिरि ताना ।
जोति समाय सामने जाके अछली प्रभु पहिचाना ;
धन्नै धन पाया धरनी धर मिलि जन संत समाना ।

सदना के

एक बूँद जल कारने चातक दुख पावै ,
प्रान गए सागर मिलै पुनि काम न आवै ।
प्रान जो थाके थिर नहीं कैसे बिरमाओं ;
बूड़ि रुह नौका मिलै कहु काहि चढ़ाओं ।
मैं नाहीं कछु हौं नहीं कछु आहि ना मोरा ,
औसर लज्जा राखिए सदना जन तोरा ।

(८८) पीपा महाराज भी रामानंजी के शिष्य और एक प्रसिद्ध कवि थे। आप गागरौनगढ के राजा थे, परंतु सब छोड़ फक़ीर होकर स्वामीजी के साथ द्वारका गए। वहाँ से लौटते समय कुछ पठानों ने इनकी स्त्री सीता का हरण करना चाहा, परंतु, कहते हैं, स्वयं भगवान् ने उनकी रक्षा की। ऐसी और भी

प्रसिद्ध हैं। कई कवियों ने इनका हाल लिखा है।
। पता द्वि० त्रै० रि० में है।

०) रैदास भी महात्मा रामानद के शिष्यों में कवि
। महात्मा रैदासजी काशी के रहनेवाले चमार थे,
ा बड़ा मान था। रैदास की वानी, साखी और पद-
१९०२ की खोज में मिले हैं।

रैदास के

नरहरि चचल है मति मेरी, कैसे भगति करौं मैं तेरी।
तू मोहिं देखै हौं तोहि देखूँ प्रीति परस्पर होई,
तू मोहिं देखै तोहि न देखूँ यह पति सब विधि खोई।
सब घट अंतर रमसि निरंतर मैं देखत नहिं जाना;
गुन सब तोर, मोर सब अवगुन कृत उपकार न माना।
मैं तौ तोर मोर असमझ सों कैसे करि निस्तारा,
कह रैदास कृष्ण करुणामय जै-जै जगदाधारा।

इन महात्माजी की प्राय ३० कविताएँ सिक्खों के आदि ग्रंथ में सगृहीत कही जाती हैं।

पीपा, धना, रैदास आदि की भाषा सुव्यवस्थित और भावप्रकाशन में सक्षम है। वह यथारुचि सब ओर मुड़ती, और मार्मिकता से भक्ति का उद्गार करती है। शब्द-संगुंफन भी सबल और सुरुचि-पूर्ण है। भाव ऊँचे और शुद्ध भक्ति के योग्य हैं।

(९१) महात्मा अंगद का भी यही समय समझ पड़ता है। इनका वर्णन भक्तमाल की टीका में है, जहाँ लिखा है कि यह रायसेनगढ के राजा सिलहदीन के चचा थे। इनसे एक रत्न के कारण राजा से झगड़ा हो गया, परंतु इन्होंने उस रत्न को जगन्नाथजी पर चढ़ा ही दिया। इनकी रचना ग्रंथसाहब में है।

(९२) उमापति मैथिल-कवि विद्यापति के समकालीन १४५७ के लगभग हुए। इनकी कविता विहार में प्रसिद्ध है। वह बड़ी लोक-प्रियता को प्राप्त है।

इनके छंद विद्यापति के ही समान होते थे। यहाँ तक कि इन दोनो महात्माओं की रचनाएँ ऐसी मिल गई हैं कि बहुधा उनका अलग करना कठिन हो जाता है।

(९३) झोमाचारण कोलावाले का समय १४६१ सुन पड़ता है। इनकी कविता देखने में नहीं आई।

सं० १४७० के लगभग का उदाहरण

महाराजाजी विसक्रमाजी बोलाया। ..हुकम थारा। बिसनपुरी रुद्रपुरी ब्रह्मपुरी विचै अचलपुरी बसावउ। बिसनपुरी का बिसनलोक आया। रुद्रपुरी का रुद्रलोक आया। ब्रह्मपुरी का ब्रह्मलोक आया। इंद्रपुरी का इंद्रलोक आया।

(हि० एकेडेमी ति० प० जुलाई, १९३५)

(४६) महात्मा कबीर दासजी

अब तक चंद बरदाई, महात्मा गोरखनाथ, ख़ुसरो और विद्यापति ठाकुर को छोड़ कोई तादृश नामी कवि हिंदी में उत्पन्न नहीं हुआ था, पर अब एक अन्य सुप्रसिद्ध कवि का प्रादुर्भाव हुआ। संवत् १४५५ से १५७५ तक महात्मा कबीरदासजी का समय समझा जाता है। इनके बनाए हुए अमरमूल, अनुराग-सागर, उग्रज्ञानमूल-सिद्धांत, ब्रह्मनिरूपण, हंसमुक्तावली, कबीरपरिचय की साखी, शब्दावली, पद, साखिया, दोहे, सुखनिधान, गोरखनाथ की गोष्ठी, कबीरपंजी, बलक्की रमैनी, विवेक-सागर, विचारमाल, कायापंजी, रामरक्षा, अठपहरा, कबीर और धर्मदास की गोष्ठी, अगाध मंगल, बलक्की पैज, ज्ञान-चौंतीसा, मंगल-शब्द, रामानंद की गोष्ठी, आनंदरामसागर, मंगल, अनाथमंगल, अक्षर-भेद की रमैनी, अक्षरखंड की रमैनी, अर्जनामा, आरती, भक्ति का अंग, छप्पय, चौका-वर की रमैनी, ज्ञानगूदरी, ज्ञानसागर, ज्ञानस्वरोदय, कबीराष्टक, करमखंड की रमैनी, मुहम्मदबोध, नाम-माहात्म्य, पिया पहिचानवे को अंग, पुकार शब्द अलहटुक, साध को अंग, सतसंग को अंग, स्वाँसगुंजार, तीसाजंत्र, जन्मबोध, ज्ञानसंबोध, मखहोम, निर्भय ज्ञान, सतनाम या सत कबीर, बानी, ज्ञानस्तोत्र, सत कबीर बंदो छोरो, शब्दवंशावली, उग्र गीता, बसंत, होली, रेखता, झूलना, खसरा, हिंडोला, शब्द, राग गौरी, राग

भैरव, राग काफ़ी, फगुवा आदि ग्रंथ, बारहमासा, चाँचरा, चौतीसा, अलिफ़-नामा, रमैनी, बीजक, आगम, रामसार, सोरठा, कबीरजी की कृत,-शब्द पारखा और ज्ञानबत्तीसी-नामक ग्रंथों का पता नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज प्रथम तथा द्वितीय त्रैवार्षिक में लगा है। इनमें से कई ग्रंथ संदिग्ध भी हैं। कबीरजी का एक अन्य ग्रंथ ज्ञानतिलक रियासत छतरपुर में मौजूद है। कबीर-वचनावली की प्राचीनतम प्रति सं० १५६१ की लिखी हुई मिलती है। यह महाशय जाति के जोलाहे थे, पर हिंदू-धर्म के एक प्रसिद्ध सुधारक हो गए हैं। इनका चलाया हुआ मत कबीर-पथ कहलाता है, और लाखों मनुष्य अब भी कबीर-पंथी हैं। रीवाँ के महाराज वीरसिंह देव इनके शिष्य थे। कविता की दृष्टि से इनकी ऊलटबाँसी बहुत प्रसिद्ध है। इनकी गणना नवरत्न में है। इन्होंने खरी बातें बहुत उत्कृष्ट और साफ़-साफ कही हैं, और इनकी कविता में हर जगह सच्चाई की झलक देख पड़ती है। इनके-ऐसे बेधड़क कहनेवाले कवि बहुत कम देखने में आते हैं। कबीरजी का अनुभव खूब बढ़ा-चढ़ा था, और इनकी दृष्टि अत्यंत पैनी थी। कहीं-कहीं इनकी भाषा में कुछ गँवारूपन आ जाता है, पर उसमें उद्दंडता की मात्रा अधिक होती है। इनका विशेष वर्णन हिंदी-नवरत्न में देखना चाहिये।

उदाहरण लीजिए—

नैया बिच नदिया बूड़ी जाय।

अपने हाथे करै थापना अजया का सिर काटी;
सो पूजा घर लैगा माली, मूरति कुत्तन चाटी।
दुनिया झूमड झामड़ अटकी।
दुनिया ऐसी बावरी पत्थर पूजै जाय;
घर की चकिया कोई न पूजै जेहिका पीसा खाय।
चकिया सब रागन की रानी।
जेहि की चकिया बंद परी है तेहि की सबै भुलानी;
भोर होय ते घुघरी पहिले घर्र-घर्र घर्रानी।
जो कबिरा कासी मरै, तौ रामै कौन निहोर।

क़ासी का मैं बासी बाँभन नाम मेरा परवीना,
एक बेर हरिनाम बिसारा पकरि जोलाहा कीना।
माई मोरे कौन बिनैगो ताना।

महात्मा कबीरदासजी ने प्रायः साधारण बातों ही में ज्ञान कहा है। यह महात्मा रामानद के शिष्य थे, और गोरखनाथजी को भी मानते थे। इन्होंने इन दोनो महात्माओं के विषय में दो ग्रंथ भी बनाए। इनके कथन देखने में तो साधारण समझ पड़ते हैं, परंतु उनमें गूढ़ आशय छिपे रहते हैं। फिर भी सूफी कवियों की भाँति इनका रहस्यवाद माधुर्य-भावना-गर्भित न होकर दार्शनिक है। इन्होंने रूपकों, दृष्टांतों, उत्प्रेक्षाओं आदि से धर्म-संबंधी ऊँचे विचारों एवं सिद्धांतों को सफलता-पूर्वक व्यक्त किया है। साधारण भजनों में प्रायः कबीरदास ने संसार की असारता दिखाई है। यथा—

दुलहिनी गाओ मंगलचार, हम गृह आए रजा राम भरतार।
तन रत करिहौं मन रत करिहौं पाँचो तत्त्व बराती;
राम हमारे पहुने आए मैं जोबन-मद-माती।
सुर तेतीसौ कौतुक आए, मुनिवर कोटि अठासी;
कह कबीर मोहिं ब्याहि चले है पुरुष एक अविनासी।

ससकिरत है कूप-जल, भाषा बहता नीर,
भाषा सतगुरु-सरिस है, सतमत गहिर गभीर।
कह कबीर हम जुग-जुग कही,
जबहीं चेतौ तबहीं सही।
जो कोई होइ सत्य किनका सो हमको पतियाई,
और न मिलै कोटि करि थाकै बहुरि काल घर जाई।
जंबूदीप के तुम सब हंसा गहि लो सबद हमार,
दास कबीरा अब की दीहल निरगुन कह टकसार।
जहिया किरतिम ना हता, धरती हता न नीर;
उतपति-परलै ना हती, तब की कही कबीर।
सुर नर मुनि जन औलिया, यह सब उरली तीर;

अलह राम की गम नहीं, तहँ घर किया कबीर।
चार बेद षट शास्त्रऊ औ' दसअष्ट पुरान;
आसा दै जग बाँधिया तीनौ लोक भुलान।
औ' भूले षट दर्शन भाई, पाखंड भेष रहा लपटाई।
ताकर हाल होय अब कूचा, छ दर्शन में जौन विगूचा।
ब्रह्मा विष्णु महेसुर कहिए इन सिर लागी काई,
इनहिं भरोसे मति कोइ रहियो इनहू मुक्ति न पाई।
माया ते मन ऊपजै मन ते दस अवतार,
ब्रह्म विस्नु धोखे गए भरम परा संसार।

कबीर ने योग एवं शिक्षा के अच्छे कथन किए हैं। इनके निर्गुणवाद का मूल गुरु गोरखनाथ का ज्ञान और योगवाद हो सकता है। इसी विषय पर पुराने सिद्धों के कथन भी इसी प्रकार के थे। नामदेव के भी विचार कबीर से मिलते हैं।

कबीर साहब का भी पंथ चल रहा है, जो कबीर-पंथ कहलाता है। इसमें योग-संबंधी शारीरिक क्रियाओं तथा चरित्र-संबंधी बातों की विशेषता है, किंतु विवेक-वाद का अभाव-सा है। निर्गुण-वाद का इसमें प्राधान्य है, और यह गोरख-पंथ से बहुत कुछ मिलता है। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों के कुछ नियम इसमें पाए जाते हैं। गोरख-पंथ और कबीर पंथ में जाति-पाँति का विचार कम हुआ। इनमें सामाजिक और व्यक्तित्व की महत्ता है। इनका प्रभाव युक्तप्रांत पर कम पड़ा, क्योंकि यहाँ पौराणिक धर्म का अच्छा बल था। इन पंथों के प्रभाव से जो कट्टर-पन और बल के साथ मुसलमानी धर्म का वेग बढ़ रहा था, वह कम हुआ। कबीर-पंथी अन्य महात्माओं के द्वारा हिंदी का कोई विशेष हित नहीं हुआ। इनके मत में उपासना की प्रधानता न होने से और अद्वैत-वाद की ज्ञानात्मिका-मात्र की महत्ता से यद्यपि इसका प्रभाव समाज पर पड़ा, तथापि संप्रदाय-रूप में यह बहुत चल न सका। इसमें हिंदू और मुसलमान दोनों पाए जाते हैं। कबीर साहब ने योगिक ज्ञान को अद्वैत एवं सूफी-वाद से मिलाकर उपदेश दिया था। इस हिंदू मुसलमानी मतों के ऐक्य में नामदेव, नानक, कबीर और

दादू का उत्तरोत्तर प्रकर्ष है। कबीर की रचना में खड़ी बोली, बिहारी, बनारसी तथा अवधी भाषाएँ पाई जाती हैं। भक्ति तथा उपासना में कबीरदास कहीं-कहीं द्वैत पर भी चले गए हैं, यद्यपि बल अद्वैत पर ही देते हैं। सूफ़ी-मत की भी पुट आपमें है। इनके ग्रंथों में साखी और बीजक की प्रधानता है। इनमें बहुत-से कथन लोकोक्तियों में परिगणित हो गए हैं। इनमें विचार-स्वातन्त्र्य औवल दर्जे का है। उपदेशों से अपने प्रतिकूल विचारों के लिये इन्होंने समाज की प्रतारणा तीव्र शब्दों में की है। यह फटकार हिंदू और मुसलमान दोनों मतों को मिली है। इनमें न तो कला-पक्ष की महत्ता है, न हृदय-पक्ष की, किंतु मस्तिष्क-प्रबलता इनमें बहुत चोखी है। ज्ञान का विवेचन बहुत ऊंचा है, जो तथ्य-निरूपण के रूप में चलता है। विचार-सबलता के साथ भाषा बहुत ऊँची नहीं है। यह सच्ची अनुभूति के प्रदर्शक हैं।

(९५) भगोदास या भग्गूदास

भगोदास ने बीजक-नामक ग्रंथ बनाया। यह महात्मा कबीरदास के शिष्य थे। इनका समय संवत् १४७७ के लगभग है।

(९६) श्रुतिगोपाल ने सुखनिधान ग्रंथ सं० १४७७ में रचा यह भी कबीरदास के चेले थे।

स० १४७८ का उदाहरण

तीह माहि बखाणी इह मरहट्ठ देश। जोणइ देसि ग्राम, अत्यंत अभिराम। भला नगर, जिहाँन मागीपइ कर। दुर्ग, जिस्या हुइ स्वर्ग। धान्य, न नीपजइ सामान्य। आगर, सोना-रूपा-तणा सागर। जेह देस माहि नदी बहइ, लोक सुखइँ निर्वहइ। इसिव देश, पुण्य तणउ निवेश, गरुअउ प्रदेश।

(हिं० एकेडेमी ति० प० जुलाई, १९३५)

(९७) नामदेव

कहते हैं, यह महाशय वैष्णव-संप्रदायवाले स्वामी ज्ञानदेव के शिष्य थे, जो वल्लभाचार्य के पहले हुए थे। इससे इनका कविता काल १४८० के लगभग समझना चाहिए। कुछ लोग इन्हें स्वामी रामानंद के कुछ ही पूर्ववर्ती मानते हैं। इनके कुछ पद तथा छंद ग्रंथसाहब में गुरु नानकजी ने रक्खे।

नामदेव की बानी नामक संवत् १७४० का लिखा हुआ इनका एक ग्रंथ द्वि० त्रै० खोज में मिला है। इन्होंने नामदेवजी की साखी, नामदेवजी का पद और राग सोरठा का पद-नामक ग्रंथ बनाए, तथा दोहे और भजन अच्छे कहे हैं। इनकी भाषा मिश्रित व्रजभाषा है। उसमें खड़ी बोली, विहारी, अवधी आदि का भी लगाव है। इनकी कविता से इनकी अखंड भक्ति टपकती है।

उदाहरण—

अभिअंतर काला रहै बाहेर करै उजास ;
नाम कहै हरि-भगति बिनु निहचै नरक-निवास।
अभिअतर रातो रहै बाहेर रहै उदास ;
नाम कहै मैं पाइयों भाव-भगत बिसवास।
काहै आरति दास करै, तीनि लोक जाकि जोति फिरै ;
कोटि भानु जाके नप की सोभा, कहा भयो कर दीप धरै।
सात समुद जाके चरन निवासा कहा भयो जल-कुंभ भरै।
अ बरीष को दियो अभय-पद, राज विभीषण अधिक करो ;
नवनिधि ठाकुर दई सुदामहिं, ध्रुव जु अटल अजहूँ न टरो।
भगत-हेत मारयो हरनाकुस नृसिंह रूप ह्वै देह धरो ;
नामा कहै भगति-बप केसव अजहू बलिके द्वारा खरो।
आपुन देव देहरा आपुहि, आपु लगावै पूजा ;
जल ते तरँग, तरँग ते है जल, कहन-सुनन को दूजा।
आपुहि गावै, आपुहि नाचै, आपु बजावै तूरा ;
नामदेव तू मेरा ठाकुर, जन ऊरा तू पूरा।
माइ न होती, बाप न होता, कर्म न होती काया ;
हम नहिं होते, तुम नहिं होते, कौन कहाँ ते आया।
चंद न होता, सूर न होता पानी पवन मिलाया ;
शास्त्र न होता, बेद न होता, करम कहाँ ते आया।
पाँड़े गायत्री जु तुम्हारी खेत लोध का खाती थी ;
लैकरि ठेंगा टँगरी तोरी, लंगत लंगत आती थी।

पाँड़े धौल महादेव तेरा बलद प आवत देखा था,
रामचंद जो पाँड़े तुम्हारा सो भी आवत देखा था।
रावन सेती सरबरि होई, घर की जोय गँवाई थी,
हिंदू अंधा, तुरकौ काना, दुहौ ते ज्ञानि सयाना।
हिंदू पूजै देहरा, मुसलमान मसीत,
नामा सोई सेविया, जहँ देहरा न मसीत।

उपर्युक्त छंदों से प्रकट है कि नामदेव धार्मिक आडंबरों को हटा-कर आचार-मूलक ऐक्य-पूर्ण स्वावलबी मत द्वारा आत्मगौरव की वृद्धि चाहते थे। आप उच्च श्रेणी के धामिक उपदेशक थे, और विचार-स्वातंत्र्य अच्छा रखते थे।

यह महाशय सिद्ध महात्मा समझे जाते हैं। जाति के यह दर्ज़ी या छीपी थे। महाराष्ट्र देश में आपका जन्म-काल लगभग स० ११९२ के माना जाता है, किंतु पंडितों का मत है कि यह समय उचित से बहुत पुराना है। आपने एकेश्वरवाद को प्रधानता देकर राम-रहीन की एकता का उपदेश दिया, किंतु सगुणोपासना मूर्ति-पूजा को नहीं छोड़ा। आपने जाति-पाँति की एकता, ज्ञानात्मक ब्रह्मवाद की महत्ता तथा भक्ति का प्राधान्य रक्खा। अरबी, फ़ारसी के शब्दों को भी कुछ मान देकर आपने भाषा अच्छी रक्खी। फिर भी इनकी रचना में सूफ़ी-मत की प्रधानता न थी, तथा ब्रह्मवाद का प्रेम-प्रधान भाव कम था। इनका जन्म सितारा-ज़िले के नरसीवमनी स्थान पर कहा जाता है। आप पढरपुरवाले विठोवा के भक्त थे। पहले सगुणोपासक होकर पीछे यह निर्गुण की ओर झुके। नामदेव, नानक, दादू, सुदरदास आदि ने कबीर की भाँति नाम, शब्द, सद्गुरु की महिमा आदि को बल देकर मूर्ति, अवतार, जाति आदि का मान घटाना चाहा, किंतु यह सिद्धांत देश में सबल न हो सका। यद्यपि पथों के कारण धर्म में कोई उच्चता स्थापित न हो सकी, और नानक-पंथ से इतर से पंथ बहुधा निम्न श्रेणियों ही में प्रचलित रहे, तो भी इनके कारण बल-पूर्वक बढ़नेवाले मुसलमानी मत की रोक अवश्य हुई, और लोग बल से मुसलमान कम हो पाए। इन पंथों ने हमारी निम्न श्रेणियों में भी धार्मिक जोश उत्पन्न

करके उनमें मुसलमानी अत्याचार रोकने की शक्ति और इच्छा उत्पन्न कर दी। इन पंथों का प्रभाव युक्तप्रांत में कम पड़ा, क्योंकि यह देश प्राचीन आर्य-धर्म, सभ्यता, महत्ता आदि का केंद्र रहा है, सो यहाँ प्राय पूर्ण समाज में ऐसा धार्मिक बल पहले ही से था कि यहाँ समाज के निम्न भागों तक पर विधर्मियों की दाल नहीं गलती, ऊँचे भागों का तो कहना ही क्या है। महात्मा तुलसीदास के प्रभाव ने भी इस प्रांत को खासी धार्मिक सबलता प्रदान की है। हम देखते हैं, जहाँ कश्मीर में जनता प्राय ९० प्रतिशत मुसलमान हो गई है, पजाब में प्राय ५५ प्रतिशत और बगाल में प्राय ५२ प्रतिशत, वहीं हमारे यहाँ मुसलमान केवल १४ प्रतिशत है, यद्यपि यह प्रांत प्राय ५०० वर्ष मुसलमानी शक्ति का केंद्र रहा। पंजाब में सिक्खों का प्रभाव मुसलमानी दबाव के रोक में बहुत कुछ पड़ा है, किंतु वहाँ नानक-पंथ द्वारा भी जाति-पाँति शिथिल की गई, जिससे समाज का बंधन बहुत कुछ ढीला हो गया, और मुसलमानों की संख्या हिंदू-मत के ह्रास के साथ-साथ बहुत बढ़ गई। बंगाल में धार्मिकता का जोश इतना था कि निम्न श्रेणियों का हिंदुओं में आदर कम था। बंगाली-भाषा भी बहुत कुछ सस्कृत-मिश्रित होने से उन श्रेणियों को बंगाली-साहित्य से लाभ कम था। बंगाल और पजाब में गोस्वामी तुलसीदास-सा कोई कवि भी न था। इन कारणों से बंगाल में हिंदू-समाज का अधिकांश निम्न भाग स्वमत छोड़कर थोड़े ही दबाव से मुसलमान हो गया।

नाम—(९८) उपाध्याय जयसागर जैन।

ग्रंथ—कुशल सूरि-स्तोत्र।

रचनाकाल—१४८१।

उदाहरण—

रिसह जिणेसर सो जयो मंगल केलि निवास,
वासव वंदिय पय कमल जग सहु पूरे आस।
संवत् चौदह इक्यासी वरसे मुलक वाहणपुर में;
मन हरषे अजिय जिने सरवर भवणै।
कीयौ कवित्त ए मंगलकारण विघनहरण,

सहु पाप-निवारण कोई मत संशो धरो मनै।
जिम-जिम सेवै सुर नर राया श्रीजिन कुशल मुनी-
सर पाया जय सायर उवझाय थुणै।
इस जो सद्गुरु गुण अभिनंदे ऋद्धि समृद्धै,
सो चिरनंदै मनबंछित फल मुझे हुवो ए,

नाम—(९९) अज्ञात।

ग्रंथ— विद्याविलास-रास।

रचनाकाल—१४८५।

नाम—(१००) दयासागर सूरि।

ग्रंथ— धर्मदत्त-चरित्र।

रचनाकाल—१४८६।

(१०१) विष्णुदास गोपाचलगढ़ ग्वालियर में रहते थे, जो उस समय पांडववशी राजा डोंगरसिंह के अधिकार में था। इनका समय १४९२ है। ग्रंथ इनके प्रथम त्रैवार्षिक खोज के अनुसार ये हैं—(१) महाभारत-कथा, (२) स्वर्गारोहण और (३) रुक्मिणी-मंगल।

नाम—(१०२) कृष्ण मुनि, महाराष्ट्र देश।

काल—१५ वीं शताब्दी।

ग्रंथ—स्फुट छंद।

विवरण—प्रथम यह पंजाब के अंतर्गत सारंगगढ़ के निवासी थे, किंतु कहा जाता है कि व्यापार के उद्देश्य से दक्षिण में जाकर वहीं महानुभाव-पंथ के साधुओं की संगत में पड़कर अंत में आप भी साधु हो गए। पंजाब में उक्त पंथ के प्रचार करने में इन्होंने बहुत कुछ योग दिया। महाशय भालेरावजी के कथनानुसार इनका समय दिया गया है।

उदाहरण—

जड़ मूल बिन देखा एक दरखत गूलर का,
उसको अनत अपार गूलर लागे शुमार नहीं फूलों का।
जमीन-आसमान बराबर देखे दो-दो चदा-सूरज देखे नौलाख तारे,

चौदह भुवन सातों दरयाव मेरु पर्वत नदी-नाले कई हजार।

नाम—(१०३) चक्रपाणि व्यास, महाराष्ट्र देश।

काल—१५वीं शताब्दी।

ग्रंथ—रुक्मिणीहरण।

विवरण—यह कृष्णमुनि के समकालीन थे।

नाम—(१०४) विधिचन्द्र शर्मा, महाराष्ट्र देश।

काल—१५वीं शताब्दी।

ग्रंथ—(१) अवतार-रासा और (२) ब्रह्मविद्यार्थप्रकाश।

विवरण—यह कृष्ण मुनि के समकालीन थे।

नाम—(१०५) मिनाबाई, द्वारका (गुजरात)।

रचनाकाल—सं० १५०० (अनुमान से)।

ग्रंथ—स्फुट कविताएँ।

विवरण—यह राजपूत स्त्री-कवि नरसी मेहता (सं० १४७०-१५३० की समकालीन थीं। इन्होंने गुजराती में भी काव्य-रचना की। इनका अधिकांश जीवन-काल गुजरात में बीतने से तत्प्रांतीय लोग इन्हें गुजराती कहते हैं। इनके द्वारा हिंदी-भाषा का भी प्रचार गुजरात में अच्छी तरह हुआ। इनका काल महाशय भाले-रावजी के कथनानुसार संवत् १५०० के लगभग अनुमान किया गया है।

(१०६) रामानंद ने रामरक्षा संवत् १५०० के लगभग रची। यह कबीर के गुरु रामानंद से इतर हैं।

सं० १५०० का उदाहरण

राजसिंह कुमार रत्नवती सहित नाना प्रकार भोग सुख भोगवइ छइ। घणउ काल हुओ। एक बार पिताइँ मृगांक राजाइँ प्रतीहार हाथि लेख मोकलीनइ कहाविउँ—वच्छ अमेवृद्ध हुआ। राज्य छांडी दीक्षा लेवानी उत्कंठा करु छउँ। घणा काल लगइ ताहरा दर्शनिनी उत्कंठा छइ। तु वहिलु आँ हाँ आविजे। पछइ राजसिंह कुमार चालिउ। अनुक्रमि पुहतउ। पिता हरइँ प्रणाम की धउँ। सर्व कुटुंब परिवार हरपिया।

(हिं० एकेडेमी ति० प० जुलाई, १९३५)

नाम—(१०७) जनार्दन स्वामी, महाराष्ट्र देश।

काल—संवत् १५०४।

विवरण—यह महाराष्ट्र देश में एक विख्यात संत हो गए हैं। आप श्रीशहा-दत्त अल्प प्रभु के शिष्य तथा श्रीएकनाथ महाराज के गुरु थे। यह अपनी रचना के कारण नहीं, वरन् अपने शिष्य-समुदाय के कारण ख्याति को प्राप्त हुए। महाशय भालेरावजी का कथन है कि यह निज़ामशाही में एक उच्च कर्मचारी थे, और इनकी समाधि दौलताबाद (देवगिरि) के किले में अभी तक वर्तमान है। इनकी जो कुछ मराठी-कविता उपलब्ध हुई है, उसमें कुछ हिंदी-पद भी हैं, किंतु वे हमारे देखने में नहीं आए हैं।

(१०८) कमाल काशीवासी का समय १५०७ था। यह कबीरदास के पुत्र थे।

कबीरदासजी का व इनका मत कहीं-कहीं नहीं भी मिलता, परंतु इन्होंने कबीरदासजी का नाम जहाँ कहीं लिखा है, वहाँ कुछ निंदासूचक वाक्य नहीं लिखे। कबीर-पंथ की बारह मुख्य शाखाओं में एक के नेता यह भी थे।

उदाहरण—

राम के नाम सों काम पूरन भयो लच्छिमन नाम ते लच्छि पायो,
कृष्ण के नाम सों बारि सों पार भे विष्णु के नाम विश्राम आयो।
आइ जग बीच भगवंत की भक्ति की और सब छाँड़ि जंजाल छायो,
कहत कमाल कब्बीर का बालक निरखि नरसिंह पह्लाद गायो।

(१०९) दामो

इस कवि ने संवत् १५१६ में लक्ष्मणसेन-पद्मावती-नामक एक प्रेम-कहानी लिखी, जिसमें राजा लक्ष्मणसेन के दो विवाह कहे गए हैं। इनकी भाषा राज-पूतानी-भाषा से मिलती है, और इनके छंदों में छंदोभंग भी हैं।

उदाहरण—

सुणो कथा रस लीला बिलास,
योगी मरण (अउर) बनवास।

पदमावती बहुत दुख सहइ ;
मेलौ करि कवि दामो कहइ ।
संवत पंदरह सोलोत्तरा मझार ,
ज्येष्ठ वदी नौमी बुधवार ।
सप्त तारिका नक्षत्र दृढ़ जान ,
वीर कथा रस करूँ बखान ।

नाम—(११०) हरि वासुदेव ।

ग्रंथ—महावानी—तृ० त्रै० खोज ।

रचनाकाल—१५१७ ।

नाम—(१११) जन गिरिधारी साधू अंतर्वेदी ।

ग्रंथ—भक्त-माहात्म्य ।

रचनाकाल—१५२५ ।

विवरण—श्लोक-संख्या १२०० । भक्तिमयी रचना है ।

(११२) धरमदासजी कसौंधन बनिया

धरमदास कबीरदास के शिष्य थे । इन्होंने कबीर के द्वादश-पंथ, निर्भय ज्ञान और कबीरवानी-नामक तीन ग्रंथ बनाए । सं० १५७५ में आप कबीरदास की गद्दी के अधिकारी हुए । आप बाधवगढ़ के वैश्य तथा सदा से संत-प्रकृति के महापुरुष थे । कबीर के शिष्य होने पर आपने अपना सारा माल-मता लुटा दिया, यद्यपि थे आप धनी । आपकी रचना खंडन-मंडन से पृथक् है, जो प्रेम-पूर्ण होकर भक्तिप्रदायिनी है आप स्वभावशत. पूर्वी-भाषा पसंद करते थे ॥ धरमदासजी के अंदाज़ी जन्म और मरण-काल सं० १५०० तथा १६०० कहे जाते हैं ।

उदाहरण—

मितऊ मड़ैया सूनी करि गैलो ;
अपन बलम परदेस निकरि गैलो ।
हमरा के किछुवौ न गुन दै गैलो ।
हमैं यक अचाज जानि परै ।

जल भीतर यक बिरछा उपजै, तामें अगिनि जरै,
ठाढ़ी शाखा पवन झकोरै, दीपक-जोति बरै।
माथे पै तिरबेनि बहत है, चढ़ि असनान करै;
लरजै गरजै दामिनि दमकै, कामिनि कलस भरै।
माटी का गढ़ कोट बना है, जामैं फौज लरै।
सूर बीर कोउ नजरि न आवै, नाहक रारि धरै।
साहब अमर मरै ना कबहूँ, नाहक सोच करै,
धरमदास यहि पद को गावै, फिरि कबहूँ न टरै।

सरोज में १५१२ वाले मारवार के महाराजा उदयसिंह का नाम कवियों में लिखा है, और यह भी लिखा है कि महाराजा गजसिंह इनके पुत्र और महाराजा जसवंतसिंह पौत्र थे, परंतु महाराजा गजसिंह के पिता का नाम महाराजा सूरसिंह था, और उदयसिंह १६४० संवत् में सिंहासनारूढ़ हुए थे। यह महाशय सूरसिंह के पिता थे। टॉड ने इनके कवि होने के विषय में कुछ नहीं लिखा है, अत इनका कवि होना संदिग्ध है।

नाम—(११३) कनकप्रभ सूरि, प्रांत मालवा।

ग्रंथ—वैद्यक।

रचनाकाल—सं० १५३०।

विवरण—महाशय भालेरावजी द्वारा इस कवि का पता लगा है, और उन्हीं के कथनानुसार इनका रचनाकाल दिया गया।

नाम—(११४) उपाध्याय ज्ञानसागर जैन।

ग्रंथ—श्रीपाल-चरित्र।

रचनाकाल—सं० १५३१।

उदाहरण—

कर कमल जोडेवि कर सिद्ध सयल पणमेव,
श्री श्रीपाल नरेंद्र नो रासबंध पभणेव।
भविया भावे नित नमो श्रीगुणदेव सूरि पाय;
तास सीस ए रास रच्यो ज्ञानसागर उवझाय।

पनर एकत्रिसे मिगसिरे उजलो बीज गुरु वार ;
रास रच्यो सिद्ध चक्र नो गावले श्री नवकार।
सिद्ध चक्र महिमा सुणौ भविया कर्ण धरेवि ;
मनवाञ्छित फलदायक ए जे सुणै नितमेव।
एक मना जे नित जपै ते घर मंगल माल ;
ऋद्धि अनंती भोगवै जिम भूपति श्रीपाल।

(११५) चरणदासजी

महात्मा चरणदास ने संवत् १५३७ में ज्ञानस्वरोदय-नामक एक ग्रंथ बनाया। तीन और चरणदासों के नाम विनोद में सं० १७६०, १८१० तथा १७४९ के पूर्ववाले समयों में हैं।

उदाहरण—

चारि वेद को भेद है गीता को है जीव ;
चरणदास लखु आपमें तौ मैं तेरा पीव।

(११५ अ) अलि भगवानजी ने स्फुट पद लगभग संवत् १५४० में कहे। यह महाशय हितहरिवंशजी के समकालीन थे। यह भी हितसम्प्रदाय के वैष्णवों में माने गए हैं।

(११६) बाबा नानक

यह महाराज सिक्ख-मत के संस्थापक बड़े भारी महात्मा खत्री-कुलभूषण पंजाब में हो गए हैं। इनका जन्म संवत् १५२६ में हुआ था, और १५९६ में यह पंचत्व को प्राप्त हुए। इन्होंने हिंदू-मुसलमान मतों को मिलाया, और जाति-पाँति के झगड़ों से संकीर्ण किए हुए प्रति मनुष्य के अधिकार फिर से जाग्रत किए। इस बात में इनका मत महात्मा गौतमबुद्ध के मत से बहुत मिलता है। उन्होंने भी प्रति मनुष्य के गौरव को बहुत बढ़ाया था। नानकजी वेदांत-मत के अनुयायी तथा एक ईश्वर के माननेवाले थे। इन्होंने हरिद्वार, काशी, गया, मक्का आदि सभी स्थानों की एक भाव से यात्राएँ कीं। आपकी भाषा पंजाबी थी, किंतु ब्रजभाषा का भी मान करते थे, तथा उसमें भी कुछ भजन आपके मिलते हैं। ग्रंथ साहब, नानकजी की साखी, नानकजी की सुख-

मनी और अष्टांगयोग-नामक ग्रंथों में इनके विचार हैं। ग्रंथ साहब सिक्खों का वेद, कुरान आदि की भाँति पूज्य ग्रंथ है। इसमें कई गुरुओं के पद सग्रहीत हैं, और कुछ पूर्ववर्ती अन्य महात्माओं के भी पद यत्र तत्र रक्खे गए हैं।

उदाहरण—

गुन गोविंद गायो नहीं जनम अकारथ कीन,
नानक भजु रे हरि मना जेहि विधि जलको मीन।
विषयन सों काहे रच्यो निमिष न होय उदास,
कहि नानक भजु हरि मना परै न जम की पास।

बाबा नानक के पूर्व हिंदू कुछ इच्छा से भी मुसलमान हो रहे थे। इनके मत ने ऐसी बातें रोक दीं। फिर भी हिंदू-समाज के वहाँ सुसंगठित न होने से पंजाब में मुसलमानों की संख्या में ख़ासी वृद्धि हुई। इस मत के कुछ अन्य गुरुओं ने भी हिंदी-कविता की है। इनमें प्रथम पाँच तथा अंतिम दो गुरुओं के नाम गिनाए जा सकते हैं। पहले गुरु स्वयं नानक महात्मा थे। अन्य कवि-गुरुओं के नाम हैं अंगदजी (१५६१-१६०९), आमरदासजी (१५२६-१६-३१), रायदासजी (१५७१-१६३८), अर्जुनजी (१६३०-१६६३), तेग-बहादुरजी (१६७८-१७३२) और गोबिंदसिहजी (१७१८-१७६५) तेगबहादुर-जी को एक वाक्य के कारण हम विशेषतया कवि मानते हैं।

नाम—(११७) सवेगसुन्दर उपाध्याय।

ग्रंथ—सारसिखामन-रासा।

रचनाकाल—सं० १५४८।

विवरण—तपगच्छवाले जयसुंदर सूरि के शिष्य थे।

नाम—(११८) रासचंद सूरि।

ग्रंथ—मुनि पति राजर्पि-चरित।

रचनाकाल—सं० १५५०।

उदाहरण—

सवत् १५५० पचासो जाणि, वदि बैसाख मास मन आणि।
दिन सप्तमी रचिउ रविवार, भणइ सुणइ तिह हर्ष अपार।

नाम—भानुदास, महाराष्ट्र देश।

काल—सं० १५५५।

ग्रंथ—स्फुट छंद।

विवरण—यह एक बड़े वैष्णव भक्त तथा कवि हो गए हैं। आप महात्मा श्रीएकनाथजी के पितामह थे। कहा जाता है, इन्हीं ने श्रीविट्ठल की मूर्ति विजयनगर से लाकर पंढरपुर में स्थापित की थी। आपकी प्रभातियाँ उच्च कोटि की हुआ करती थीं।

उदाहरण—

उठहु तात मात कहे रजनी को तिमिर गयो,
मिलत वाल सकल ग्वाल सुंदर कन्हाई।
जागहु गोपालल्लाल, जागहु गोविंदलाल, जननी वलि जाई।
संगी सब फिरत वयन, तुम विन नहिं छुटत धेनु,
तजहु शयन कमलनयन, सुंदर सुखदायी।
मुख ते पट दूर कीजो, जननी को दरस दीजो,
दधि खीर माँग लीजो, खाँड औ मिठाई।
झमत-झमत श्याम राम, सुंदर मुख तव ललाम,
थाली की छूट कछु 'भानुदास' पाई।

चैतन्य महाप्रभु का प्रादुर्भाव सं० १५४२ में, नदिया में, हुआ। आप गौरांग भी कहलाते थे। १६ वर्ष की अवस्था में आप अध्यापक हुए। कश्मीरी केशव मिश्र आपके मित्र थे। थोड़े ही वर्ष पीछे सन्यासी होकर आप जगन्नाथ-पुरी, वृंदावन आदि में उपदेश करते और अपनी प्रगाढ़ भक्ति से संसार को पुनीत तथा वैष्णवता को वृद्धिगत करते रहे। ४८ वर्ष की अवस्था में आपने पुरी में शरीर छोड़ा। आप ऐसे प्रेमोन्मत्त हो जाते थे कि तन-वदन का होश भी न रख सकते थे। ऐसी ही दशा में एक वार समुद्र में घुस पड़े, और इसी प्रकार आपका अंत हुआ। आपने एक वार कहा था कि मनुष्य को अवतार मानना पाप है। फिर भी कभी अपने को राधा और कभी कृष्ण कहने लगते थे। लोग आपको कृष्ण का अवतार मानते हैं। आपकी भक्ति बंगाल के

शाक्त सिद्धांतों से प्रभावित होकर वाम मार्ग की ओर चली गई। यद्यपि स्वयं आपका चरित्र बहुत ही उच्च था। आपकी भक्ति का प्रभाव बंगाल, बिहार तथा वृंदावन में बहुत पड़ा है। आपका वैष्णव-सम्प्रदाय गौड़ीय कहलाता है। आप स्वामी वल्लभाचार्य के सहपाठी कहे गए हैं, और पूरे ऋषि हो गुज़रे हैं। आपके शिष्य रूप सनातन वृंदावन में रहने लगे। आप ही के प्रभाव से चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय संप्रदाय की महिमा वृंदावन में बढ़ी, तथा उसके विचारों का मान अन्य सम्प्रदायों में भी हुआ, जिससे वैष्णवता में वाम मार्ग बढ़ा। गौड़ीय संप्रदाय में नाम-कीर्तन की प्रधानता है। इस संप्रदाय में सेठ कुंदनलाल तथा सेठ फुंदनलाल उपनाम ललित किशोरी एवं ललित माधुरी सुकवि हो गुज़रे हैं। इनका समय बहुत आगे आवेगा। राधा की भक्ति चलाई निंबार्क स्वामी ने थी, किंतु चैतन्य महाप्रभु से उसकी भारी वृद्धि हुई।

(१२०) अनंतदास (१५५७)

रैदास के कुछ ही पीछे हुए। ग्रंथ इनके ये हैं—(१) रैदास की परिचई, (२) कबीरदास की परिचई और (३) त्रिलोचनदास की परिचई। कविता साधारण है। इसी नाम के एक और अनंतदास हुए हैं। उन्होंने भी ग्रंथ बनाए। शायद यह अनंतदास उन अनंतदास से भिन्न हों। उनका समय १६५७ है।

नाम—(१२१) हरीराम।

ग्रंथ—गीता भानुप्रकाश।

रचनाकाल—सं० १५५८।

विवरण—महाशय भालेरावजी द्वारा इनका पता चला है।

नाम—(१२२) पुरुषोत्तम।

ग्रंथ—धर्मास्वमेध।

रचनाकाल—सं० १५५८ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा।

विवरण—यह महाशय अयोध्यापुरी के दक्षिण १६ कोस पर, दादरनगर में, रहते थे। इनके पिता का नाम क्षेमानंद तथा पितामह का वंशविभूति था। जाति के ब्राह्मण थे। इन्होंने सवत् १५५८ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को धर्माश्वमेध

नामक ग्रंथ, दोहा-चौपाइयों में, बनाया। यह ग्रंथ ५२०० श्लोक अनुष्टुप् के बराबर है। कविता मधुसूदनदास-श्रेणी की है।

उदाहरण—

गननायक गिरिपति गवरि, तुम्हहिं कहौं कर जोरि,
हरि-गुनगन बरनौं कछू, बिमल करौ मति मोरि।
संकर स्वामी करौं प्रनामा, मति म्वहि देहु जपौं गुन-ग्रामा।
वृषभध्वज ससितिलक लिलारा; कंठे सेस सहस फनवारा।
महाबिभूति चढ़ाए अंगा, पारवती संतत अरधंगा।
सुरसरि जटा सीस निसिदेवा, सुर नर नाग करै तव सेवा।
भोरानाथ अभयपददाता; राम नाम संतन-मन राता।
ह्वै प्रसन्न देवन के देवा; देवहि भक्ति करौं जेहि सेवा।

यह ग्रंथ संवत् १८५२ का लिखा हुआ हमारे पास प्रस्तुत है।

नाम—(१२३) वल्लभाचार्य स्वामी महाप्रभु।

ग्रंथ—(१) भागवतपुराण सुबोधिनीभाष्य, (२) जैमिनी-सूत्रभाष्य, (३) अनुभाष्य, (४) विष्णुपद, (५) वनयात्रा (हिंदी)।

जन्म—१५३५।

रचनाकाल—सं० १५५८।

जीवित रहे—स० १५८७ तक।

विवरण—यह महाशय वल्लभीय संप्रदाय के संस्थापक महान् ऋषि हो गए हैं। यह संस्कृत के बड़े धुरंधर पंडित और सुकवि थे। आप वल्लभीय वैष्णव-संप्रदाय में श्रीकृष्ण के अवतार माने जाते हैं, और आपकी पूजा देवताओं के समान अब तक होती है। कृष्ण-भक्ति-संबंधी वैष्णव-संप्रदायों में दो ही अधिकता से चले, अर्थात् उत्तर में वल्लभाचार्य का और बंगाल में चैतन्य महाप्रभु का। आपके बनाए संस्कृत के बहुत-से ग्रंथ हैं। भाषा में भी कुछ श्रेष्ठ पदों की रचना आपने की। मध्यकालीन भाषा-कविता-भांडार आपके शिष्यों की रचना से बहुत भरा है। उसको उत्तेजना देनेवाले यही महापुरुष

थे। आपकी कविता शुद्ध ब्रजभाषा में है। ब्रजभाषा का जो भाषा-कविता पर साम्राज्य-सा हो गया है, इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि आपके संप्रदायवालों ने अपनी पूरी रचना इसी में की। महात्मा सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कविगण की रचना ब्रजभाषा की भूषण-स्वरूप है। यदि भाषा-काव्य को आपके संप्रदाय द्वारा इतना सहारा न मिला होता, तो आज शायद ब्रजभाषा की कविता इतनी परिपूर्ण न होती। यह सब महात्मा वल्लभाचार्य ही का प्रभाव है कि।हिंदी-कविता की ओर ऋषिवत् साधु लोग भी झुक पड़े। बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है कि आपने रचना नहीं की, और इस नाम के पद इसी नाम के एक अन्य कवि के हैं।

जैसा आगे भी कहा जा चुका है, महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने भक्ति-संबधी विचार निंबार्क स्वामी पर अवलंबित किए हैं। आपके प्रभाव से वैष्णवता का प्रसार मारवाड़ और गुजरात-पर्यंत पहुँचा। अब भी गुजरात एवं राजपूताने में बहुतेरे सधन वैश्य वल्लभीय संप्रदाय में हैं। अतएव हम देखते है कि युक्त प्रांत में वैष्णवता के दो प्रधान अंग हुए, एक तो सीता-राम संबधी और दूसरा राधाकृष्णात्मक। पहले का केंद्र अयोध्या में हुआ, और दूसरे का वृंदावन में। महाप्रभु के पुत्र विट्ठलनाथजी तथा पौत्र गोकुलनाथ-जी के भी प्रभाव बहुत बड़े थे। इससे इनके वंशधर कई गद्दीधर होकर अपने अनुयायियों द्वारा पुजने लगे, और उनमें से बहुतों की चरित्र-हीनता से समय पर वैष्णवता को धक्का पहुँचा। अयोध्या और वृंदावन-संबधी दोनो शाखाएँ चली दक्षिण से थीं, किंतु अयोध्यावाली सीधी युक्त प्रांत को आई, और दूसरी बंगाल-बिहार को प्रभावित करती हुई वृंदावन में स्थापित हुई। संसार में शुद्ध दार्शनिक धर्म कम व्यापक हुआ, किंतु रागात्मक एवं विश्वासात्मक भक्ति-वाद शैव तथा वैष्णव दोनो संप्रदायों के रूपों में चला। शैवमत भी दक्षिण से चलकर बंगाल और युक्त प्रांत के मध्यभाग में स्थापित हुआ। इधर इसके मुख्य उन्नायक स्वामी शंकराचार्य तथा महात्मा गोरखनाथ हुए।

(१२४) कुतवन शेख ने मृगावती ग्रंथ संवत् १५५८ में बनाया। यह

महाशय शेख़ बुरहान चिश्ती के चेले थे, और शेरशाह सूर के पिता हुसैनशाह के यहाँ रहते थे। इन्होंने भी पद्मावत की भाँति दोहा-चौपाइयों में रचना की। इनकी गणना साधारण श्रेणी में है। कथात्मक रहस्यवाद द्वारा हिंदी में सूफ़ी-मत के प्रथम प्रतिपादक आप ही हुए। भाषा अवधी है।

उदाहरण—

साह हुसैन अहै बड राजा, छत्र सिंघासन उनको छाजा
पंडित औ बुधिवंत सयाना, पढ़ै पुरान अरथ सब जाना।
धरम दुदिस्टिल उनको छाजा; हम सिर छाँह जियो जग राजा।
दान देइ औ' गनत न आवै, बलि औ' करन न सरवरि पावै।

यहाँ सूफ़ी-मत का कुछ कथन आवश्यक है। यह मत ब्रह्म एवं एकेश्वर-वाद को प्रधानता देता हुआ प्रेम-पूर्ण रागात्मिका भक्ति तथा विश्वास-वाद को लेता हुआ पैगंबर और ख़ोदा-वाद का भी सहायक था। कुतबन के ढंग पर चलकर जायसी से सहायता पाते हुए दोहा-चौपाइयों द्वारा अवधी-भाषा में मुसलमानी रहस्य-पूर्ण कथात्मक रचनाएँ पीछे कई मुसलमान कवियों ने सूफ़ी-मत के समर्थन में कीं। यह मत नवीं शताब्दी के निकट चला हुआ समझ पड़ता है। ये लोग जीव तथा जगत् को ईश्वर से अभिन्न मानकर अद्वैत को अपनाते हैं। यह मत हमारे यहाँ पहले सिंध देश में चला, और पीछे वैष्णवता से भी प्रभावित होकर अहिंसा-वाद की ओर झुका। जायसी ने पद्मावत में अपने पहले के चार-पाँच ग्रंथों का कथन किया है, अर्थात् सपनावती, मुगधावती मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती। इनमें से मृगावती की खंडित प्रति के अतिरिक्त केवल मधुमालती अब तक मिल सकी है।

कुछ समालोचकों का कथन है कि सूफ़ी कवियों ने ही पहले पहल सर्वोत्कृष्ट हिंदी लिखी। हमारा इस विचार से मतैक्य नहीं है। कबीरदास के समय तक उनका सा कोई कवि हिंदी में नहीं हुआ, और वह अन्योक्ति लिखते हुए भी सूफ़ी कवि न थे। उनके होते हुए सूफ़ी कवि सर्वोत्कृष्ट नहीं कहे जा सकते। उनके अतिरिक्त स्वयं कवि-शिरोमणि विद्यापति ठाकुर इन सबके पहले हुए, और

भाषा-प्रौढ़ता में इनमें से कोई उनका सामना नहीं कर सकता। अवधी-भाषा का मान सूफ़ी कवियों ने अवश्य बढ़ाया।

आध्यात्मिक रूप में सूफ़ी-मत भी एकेश्वरवादात्मक ब्रह्म-वाद को प्रधानता देता है, तथा भावात्मक रूप में प्रेम और भक्ति के आधार पर रागात्मक विश्वास-वाद के सहारे खोदा-वाद का सहायक है, अथच पैगंबर एवं इमामों का भी उचित मान करता है, यद्यपि इस मत के बल प्रयोगवाले विभाग में न जाकर हिंदू-देवी-देवतों का भी प्रकट में मान करके लोक के ग्रहण योग्य मत चलाता है। सभव है, प्रारभ में इसका कुछ प्रभाव हमारी अपढ़ जनता पर पड़ा हो, यद्यपि इस बात की कोई दृढ़ साक्षी नहीं है। हम कुछ हिंदुओं द्वारा कबीरदास, जायसी आदि का मान अवश्य देखते हैं किंतु यह मान व्यक्तिगत समझ पड़ता है, धार्मिक नहीं। हिंदू लोग किसी का धर्म ग्रहण किए बिना ही इस मत के फकीरों आदि का मान, व्यक्तिगत आचरणों की उच्चता के कारण अथवा अन्य कारणों से, प्रायः करने लगते थे। सूफ़ी संतों का ऐसा ही मान समझ पड़ता है। यद्यपि सूफ़ी संत मुसलमानीपन को देखते हुए हिंदू-देवी-देवतों का उचित से कुछ अधिक ही मान करते हैं, तथापि सूफ़ी-वाद भी प्रेम-पूर्ण रीति से सही, किंतु भारत में, मुसलमानी मत चलाने के प्रयत्न में, था अवश्य, और यह अवश्य चाहता था कि हिंदू मुसलमान बनें। प्रेम-गर्भित वचनों के भीतर यह भाव बहुत दिन तक छिपा नहीं रह सकता था इसी से अततो गत्वा हिंदुओं ने इससे मुख मोड़ लिया। मुसलमान सहिष्णुता के आधिक्य के कारण इसे पसद न कर सके। अब यह थोड़े-से विद्वानों में केवल साहित्य के नाते पूज्य दृष्टि से देखा जाता है, धार्मिक शिक्षा के रूप में नहीं।

(१२५) सरोजकार ने सेन कवि का समय १५६० लिखा है, और यह कहा है कि इनके छंद कालिदास-कृत हज़ारा-नामक संग्रह में मिलते हैं। सेन का समय अनिश्चित है। केवल इतना ज्ञात है कि यह महाशय कालिदास के प्रथम थे। कालिदास औरंगज़ेब के समय हुए। सेन की रचना उत्कृष्ट और भाषा वर्तमान समय की-सी है।

उदाहरण—

जब ते गोपाल मधुवन को सिधारे आली,
मधुबन भयो मधु दानव बिखम सों,
सेन कहै सारिका सिखंडी खंजरीट सुक
मिलिकै कलेस कीनो कालिंदी कदम सों।
जामिनी बरन यह जामिनी मै जाम-जाम,
वधिक कीं जुगति जनावै टेरि तम सों;
देह करै करज करेजो लियो चाहति है,
काग भई कोयल कगायो करै हम सों।

अब पूर्व-माध्यमिक हिंदी का समय समाप्त हुआ, और इसके आगे प्रौढ़ माध्यमिक काल आवेगा। इस पूर्व-काल में विद्यापति ठाकुर एवं कबीर-जैसे महाकवियों ने हिंदी का मुख उज्ज्वल करके उसे एक वास्तविक स्वच्छंद भाषा बना दिया, और महात्मा रामानंद, बाबा नानक और महाप्रभु वल्लभाचार्य-जैसे महात्माओं ने भी इसमें रचना करना आवश्यक समझा। वैसे ही प्रसिद्ध महाराणा कुंभकरण ने भी स्वयं इसमें कविता की, और अनेक कवियों को आश्रय दिया। यह महानुभाव हिंदी के प्रथम टीकाकार हो गए हैं। इस काल हिंदी-साहित्य का साम्राज्य इतना फैला हुआ था कि पंजाब से लेकर बिहार तक उसकी ध्वजा फहराती थी। राजाओं के यश-कीर्तनवाली प्रथा अब बिलकुल टूट गई, और धार्मिक साहित्य का बल ख़ूब बढ़ चला। इस काल के कवियों में अधिकांश संख्या धार्मिक महात्माओं और उनके अनुयायियों ही की निकलेगी। उधर दामो और कुतबन ने चंद और मुल्ला दाऊद की चलाई हुई प्रेम-कहानियों के लिखने की प्रणाली को दृढ़ किया। कुल मिलाकर हिंदी की उन्नति इस काल में भी अच्छी हुई, और सौर काल के लिये राह साफ़ हो गई। इस काल तक कोई भाषा दृढ़ता से स्थिर नहीं हुई थी, और जो कवि जहाँ लिखता था, वहीं की भाषा वह विशेषतया व्यवहृत करता था। यहाँ तक कि महाकवि विद्यापति और कबीर भी प्रांतिकता में रहे। तो भी ध्यान से देखने पर स्पष्टतया विदित हो जायगा कि लोगों का रुझान ब्रजभाषा की ओर अधिक होने लगा था, और

स्थानीय भाषा के साथ साथ प्राय कविगण उसका आश्रय लेने लगे थे। अतः व्रजभाषा के सर्वव्यापिनी होने का सूत्रपात इसी काल में हुआ। गद्य-विभाग इस काल आगे न बढ़ा। पूर्व-माध्यमिक काल में नंबर ७६ से १२५ तक ५० कवि मिलते हैं। इनमें से महाराष्ट्र देश के कई कवि हैं। मेवाड़, मिथिला, काशी, प्रयाग, रीवाँ, बाँधवगढ़, गागरौनगढ़, रायसेनगढ़, पजाब, द्वारिका, अतर्वेद आदि के कवि इस काल पाये जाते हैं। अत· हिंदी-प्रचार का क्षेत्र ख़ासा व्यापक रहा। विद्यापति (न० ७६) ने जयदेव के ढंग पर हिंदी में शृंगार-कविता की नींव डाली, तथा रचना भी श्रेष्ठ की। दामो (१०९) ने धर्म से असबद्ध प्रेम-कहानी लिखी। हिंदुओं में पहले ऐसे कवि यही हैं। आपका समय सं० १५१६ है। ऐसे मुसलमान कवियों में भी केवल मुल्ला दाऊद (गत अध्यायवाले) आपके पूर्ववर्ती हैं, किंतु उनका ग्रंथ अप्राप्त है। प्राप्त ग्रथों में प्राचीनतम ऐसे कवि आप ही हैं। इस काल के कई जैन काव भी मिलते हैं।

यह पूर्व-मध्यकाल हमारे हिंदी-साहित्य में गुरु के समान है। इसी समय के गुरुओं के शिष्यों ने आगे चलकर हिंदी को परमोच्च बनाया। इस काल की सबसे बड़ी महत्ता धार्मिक है। इसमें मुख्य धर्म-गुरु रामानंद, वल्लभाचार्य, नानक, चैतन्य तथा कबीर हुए। इनके अतिरिक्त मुसलमान सत कवियों ने इसी समय सूफ़ी-साहित्य को आरंभ किया। इन लोगों में गुरुपन का रूप कम था, अथच सतपन, चरित्र-गौरव तथा मधुर प्रेम-पूर्ण, सहनशील कथा कहनेवाले का विशेष। इन लोगों की कथाएँ भी अवधी-भापा में ऐसी प्राजल होती थीं, जिन्हें सर्व साधारण सुगमता-पूर्वक समझ सकें। सूफ़ी-सिद्धातों तथा कथाओं के विवरण कुतबन शेख़ तथा आगे आनेवाले जायसी के कथनों में किए गए हैं। इनकी भापा में सांस्कृत तत्सम शब्द भी होने से वह ठेठ अवधी तो नहीं है, किंतु ग्रामीण अवधी की मुख्यता सूफी कवियों में ठीक ही मानी गई है।

इस काल युक्त प्रात और बंगाल दोनो में सूफी-सिद्धांतों का प्रचार किया गया। कई मुसलमान सत बंगाल के पडुवा में थे, जिससे वह हज़रत कहलाने लगा। वहाँ शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया अच्छे सत थे, जिनके शिष्य अलाउल-

हक़ भी प्रसिद्ध थे। हक़ के पुत्र नूरकुतुबुल आलम प्रसिद्ध संत हुए। हुसैनशाह (सं० १५५० से १५६६) ने सत्य पीर का मत चलाया। इसमें हिंदू-मुसलमानों के मिलाने का प्रयत्न था, जैसा इसके नाम से भी प्रकट है। युक्त प्रांत में झाँसी के शैख तकी और जौनपुर के पीर भी मुसलमानी धर्म के प्रचार में प्रचुर परिश्रम नए प्रकार से करते थे। जैन पंडित सूरि भी स्वमत-वृद्धि में लगे थे। महात्मा गोरखनाथ के कथन में सिद्धों का तथा वहीं एवं दूसरे अध्याय में नाथ महात्माओं के कथन हुए हैं। महात्मा नानक ने इन सबकी प्रतिष्ठा में कहा है कि "सुणिए सिद्ध पीर सुरि नाथ।" गुरु-पदवी का सूत्रपात गुरु गोरखनाथ से समझा जाता है। नानक ने गुरु-शब्द की बड़ी महिमा गाई। शैख तकी और ऊँची के पीर का कबीर से भी सत्संग होता था। तो भी इनका पथ निराला था, जिसमें मुस्लिम धर्म छू तो गया था, किंतु प्रधानता हिंदू-सिद्धांतों की थी। आपने पीरपन, सूफीपन, वेदांत, योग और वैष्णवता को मिलाकर भक्ति-पूर्ण ज्ञानाश्रयी पंथ चलाया, जो दोनो मतों के मिलाने को निकला, यद्यपि उसका यह अभिप्राय सिद्ध न हुआ। सूफ़ी-मत की महत्ता जायसी आदि सुकवियों द्वारा सर्व-साधारण पर भासित की गई, यद्यपि इस प्रयत्न के भी धार्मिक विभाग का फल अंत में कुछ न हुआ। पूर्व-माध्यमिक काल में हिंदू मुसलमानों के मिलाने का प्रयत्न कई संतों द्वारा हुआ अच्छा, किंतु खोदा-वाद की कट्टरता, हिंदू-धर्म के मान एवं राजनीतिक स्थिति के कारण वह सफल न हुआ। नामदेव (९७) ने भी इस प्रयत्न में अच्छा योग दिया।

सूफ़ियों के अतिरिक्त वैष्णवता का मान इस काल बहुत ही अच्छा उठा। इसकी राम और कृष्ण-संबंधिनी दो शाखाएँ थीं। राम की शाखा स्वामी रामानंद के प्रभाव से अयोध्या में स्थापित होकर अवध, उसके दक्षिण तथा पूर्व में प्रभावशालिनी हुई। इसमें सीताराम के संबंध में शुद्ध दक्षिण मार्गस्थ भक्ति का मान हुआ। कई राजे-महाराजे तथा अन्य महात्मा इस शाखा में आए, तथा इसके द्वारा समाज-संगठन में भक्ति ने प्रचुर सहायता दी। शूद्रों को भी अपने संप्रदाय में लेकर रामानंद ने सारे समाज का ऐक्य दिखलाया, यद्यपि

लोक-सग्रह के लिये गृहस्थों में समता-सिद्धांत चलाकर खलबली न डाली। इस प्रकार बल-पूर्वक बढ़नेवाले मुसलमानी धर्म के प्रभाव को रोकने के लिये अपने हिंदू-समाज को सुव्यवस्थित करके उसे ऐक्य के सूत्र में बाँधा। पश्चिमी युक्त-प्रात में वल्लभीय संप्रदाय बहुत चला, तथा शेष युक्त प्रांत एवं मध्य-भारत में रामानंदी। चैतन्य के गौड़ीय सम्प्रदाय का प्रभाव बंगाल में रहा। वल्लभीय सम्प्रदाय मारवाड़ तथा गुजरात में भी फैला, विशेषतया वैश्यों में। वल्लभ ने शुद्धाद्वैत भी चलाया। महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु के कथन ऊपर आ चुके हैं। वल्लभ द्वारा मथुरा-प्रात में हिंदी-साहित्य की समय पर अच्छी अभिवृद्धि हुई। चैतन्य महाप्रभु का भी वृंदावन में रूप सनातन द्वारा प्रभाव पड़ा, विशेपतया अन्य सम्प्रदायों में अपने विचार विस्तृत करके। चैतन्य और वल्लभ के विचारों में वाम मार्ग का मान था ही।

कबीर साहब थे तो स्वामी रामानंद के शिष्य, किंतु इनका पथ अलग ही चला, जैसा ऊपर कहा जा चुका है। इनकी कविता में अद्वैतवाद की प्रधानता थी। पथ के संबध मे आपके विचार गुरु गोरखनाथ तथा अन्य सतों के सिद्धांतों से मिलते है, जैसा ऊपर कहा जा चुका है। आपकी शिक्षाओं में परमोच्च विचारवाले तथा बहुत असाधारण पाठक ही आनद पा सकते हैं, साधारण श्रेणी के नहीं। उधर उच्च विचारवाले लोग पंथों में तो जाते नहीं, क्योंकि अपने ही धर्म-ग्रंथों में उच्च भावों की क्या कमी है, सो वे लोग केवल मानसिक आनद के लिये ऐसे ग्रथ पढ़ते है। फल यह हुआ कि गोरख-पंथ की भाँति केवल निम्न श्रेणी के लोग उल्टवाँसी आदि से प्रसन्न होकर कबीर-पंथ में आए। आजकल इसमें प्राय १२ लाख लोग हैं। कबीर की ऊँची रचनाओं का प्रभाव तो उत्तरी भारत में बहुत पड़ा, किंतु उनका पंथ चला नहीं। हाँ, उस काल गोरख और कबीर-पथों से भी हिंदू-समाज की कुछ रक्षा हुई।

बंगाल और युक्त प्रातादि की तो उपर्युक्त दशा रही। उधर पजाब में महात्मा नानक का गुरु पथ सिक्ख-धर्म के रूप में फैला। हिंदी का भारत पर सबसे बड़ा प्रभाव यही सिक्ख-धर्म है। कुछ लोगों का विचार है कि बाबा नानक कबीरदास को गुरुवत् मानते थे। हमारा मत इस कथन के बिलकुल

प्रतिकूल है। गुरु नानकदेव बड़े ही निरभिमान एव शुद्ध चित्त के सत थे। उन्होंने अपने ग्रथ साहब में कबीर के, अतिरिक्त नामदेव, रैदास, धना आदि अनेकानेक भक्तों की रचना रक्खी है। इसमें कोई गुरु भाव नहीं, वरन् सतों का माहात्म्य मानना-मात्र है। गुरु नानक ने घोर तपस्या, देशाटन, चिंतवन आदि करके नानक-पथ खास अपने मस्तिष्क से निकाला। अतएव जब तक सिक्ख-ग्रथों से ऐसा सिद्ध न हो, तब तक कबीर आदि किसी में इनका गुरु भाव समझना बहुत अनुचित है। हमारे यहाँ निर्गुण भक्ति की शाखा का प्रचार कबीर, नानक, दादू, सुंदरदास के द्वारा हुआ।

हम देखते हैं, पूर्व-मध्य-काल में रामानद, नानक, वल्लभ, चैतन्य, कबीर तथा सूफ़ी कवियों ने देश पर काफी धार्मिक प्रभाव डाला। गत अध्याय में तो तुगलक सम्राटों का समय हम १४५५ पर्यंत देख आए हैं। इसी अंतिम संवत् में तैमूरलंग मगोल का प्रसिद्ध आक्रमण दिल्ली पर हुआ, जिसमें मार काट, लूट-खसोट आदि की कोई सीमा न रही। वह तो अपना काम करके चल दिया, और यहाँ बल-हीन तुग़लक-राज्य का अंत होकर सं० १४७१ तक षोडशवर्षीय अराजकता रही, जिसके पीछे ३६ वर्षों तक (१४७१-१५०७) बल-हीन सैयद-वश तथा ७६ वर्षों तक (१५०७-१५८३) लोदी-वंश का साम्राज्य दिल्ली में रहा। इस काल से बहमनी-साम्राज्य भी अगभंग होने लगा। अब निम्नलिखित राज्य स्थापित हुए—

(१) बीजापुर (आदिलशाही)—१४४७ से १७४३ तक।
(२) गोलकुंडा (कुतुबशाही)—१५६९ से १७४४ तक।
(३) अहमदनगर (निज़ामशाही)—१५४७से १६९४ तक।
(४) बीदर (बारीदशाही)—१५४९ से १६६६ तक।
(५) बरार (इमादशाही)—१५४१ से १६३२ तक।
(६) खानदेश (फारूकशाही)—१४४५ से १६५६ तक।
(७) मालवा (गोरी-वंश)—१४५८ से १६२१ तक।
(८) गुजरात (तुर्क वंश)—१४५८ से १६३० तक।
(९) बंगाल (पठान-वश)—१३९७ से १६३३ तक।

(१०) जौनपुर (तुर्क-वंश)—१४५६ से १५३३ तक।

(११) कश्मीर (स्वतंत्र वंश)—१३८२ से १७४३ तक।

इनमें से पहले पाँच बहमनी-साम्राज्य से निकले, तथा शेष छः दिल्ली-साम्राज्य एवं अन्य प्रांतों से। बुंदेलखंड तथा राजपूताना प्रायः सदैव स्वतंत्र रहे, बहमनी-साम्राज्य था तो मुसलमानी, किंतु ब्राह्मण-प्रभाव-युक्त होने से उसके द्वारा देश पर धार्मिक दबाव नहीं के बराबर था। उसके स्थान पर नवीन राज्य स्थापित होने से यह दबाव उत्तर की भाँति तो नहीं, किंतु फिर भी कुछ पड़ने ही लगा। अतएव महाराष्ट्र-प्रांत के वास्ते यह वही समय आया, जो हमारे लिये गोरी-विजय से आन पड़ा था। फिर भी इतना भेद था कि हमारे यहाँ अफ़ग़ानिस्तान आदि से मुसलमान आया ही करते थे, सो दिल्ली का साम्राज्य केवल मुस्लिम-बल पर स्थित था, किंतु दाक्षिणात्य मुसलमानों को ऐसे सिपाही समुचित संख्या में अप्राप्त थे, सो उधर की मुसलमान-शक्तियों को हिंदू-सेना से भी सहारा लेना पड़ता था, जिससे धार्मिक दबाव सीमित रहता था। फिर भी यह थोड़ा-बहुत पड़ने ही लगा, और हम आगे देखेंगे कि जैसे नव पराजय के समय हमारे यहाँ संतों ने खड़े होकर धार्मिक प्रयत्नों से समाज का संगठन किया था, कुछ-कुछ वही दशा महाराष्ट्र-प्रान्तकी कुछ आगे चलकर हुई।

हमारे कई हिंदी-ऐतिहासिक धार्मिक प्रयत्नों में हमारी निराशा का चिह्न पाते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि यदि हमारा समाज निराश के गर्त में पड़ा होता, तो पाँच सै वर्षों के मुस्लिम-शासन से हिंदुओं का नाम-निशान भी न रह गया होता, जैसा कश्मीर में कई कारणों से हुआ। यों तो संहिता-काल के पीछे से धार्मिक निराशा का समावेश चला आता है, किंतु कोई वास्तविक नैराश्य मुसलमानकाल में नहीं आया। हमारे यहाँ वास्तव में राजकीय तथा शेष समाज की दो पृथक् संस्थाएँ थीं। सामाजिक संस्था राजकीय पतनोत्थान से अपना विशेष संबंध न समझती थी, और न मुसलमानों के पूर्ववर्ती सात-आठ विजयिनी धाराओं ने यहाँ के राज्य मिटाकर भी समाज पर धार्मिक या सामाजिक हस्तक्षेप किया। जब मुसलमानों ने पहलेपहल समाज पर बल-पूर्वक धर्म फैलाकर एक प्रकार से राजकीय संस्था से इतर हमारी सामाजिक संस्था से भी

युद्ध छेड़ा, तब पहलेपहल समाज ने अपनी भूल देखी, किंतु भाँति-भाँति के अत्याचार सहकर भी उसने दवना पसंद न करके साढ़े तीन सै वर्षों के शांतिवाले इस समर में अपना रूप जैसे-का-तैसा स्थापित रक्खा, और उसे अणु-मात्र बिगड़ने न दिया। हमारे किसी ग्रंथ से समाज की निराशा नहीं प्रकट होती। इस साढ़े तीन शताब्दियों के लंबे, धार्मिक युद्ध में हानि सहन कर, जजिया देकर, अपमान झेलकर, राज्य से उचित न्याय न पाकर एवं अनेकानेक अन्य कष्ट सहकर समाज अपने निश्चय पर डटा ही रहा, और अंत में विजयी हुआ, जैसा आगे प्रकट होगा। इस युद्ध में हमारी अंग-रक्षा हमारे ग्राम्य संगठन, जाति एवं सत-शिक्षा ने की। पूर्व-मध्य-काल में महाराष्ट्र देश भी इस युद्ध में आ गया। राजपूताना और बंगाल बहुत करके इससे बाहर रहे। युक्त प्रांत और पंजाब में इसका केंद्र रहा। मदरास पर कोई ऐसा दबाव न पड़ा, न ठेठ दक्षिण के अन्य प्रांतों पर। महाराष्ट्र देश, मध्यदेश तथा पाश्चात्य प्रांत भी थोड़े ही दबाव में आए। मुख्य प्रभाव उत्तरी भारत पर पड़ा। उपर्युक्त राजवंशों की स्थितियों, समयों, आदि पर विचार करने से इस प्रश्न के संबंध में विविध प्रांतों की स्थिति ज्ञात हो सकती है।

———

प्रौढ़ माध्यमिक प्रकरण

प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी

(१५६१—१६८०)

छठा अध्याय

अष्टछाप (१५६१—१६३०)

इस समय तक भाषा में कितने ही कवि हो गए, पर चंद वरदाई, अमीर खुसरो, विद्यापति और कबीरदास को छोड़कर कोई ऐसा नहीं हुआ, जो परमोत्तम कवि कहा जा सके ; हाँ, जल्हन से लेकर सेन कवि तक हिंदी उन्नति अवश्य करती गई, और जैसे जल्हन की भाषा चंदीय भाषा से पृथक् न थी, वैसे ही सेन कवि की भाषा सौर काल की भाषा से भी बहुत पृथक् नहीं समझ पड़ती। उन्नति करते-करते हिंदी ने ब्रजभाषा के सहारे अब वह रूप ग्रहण कर लिया था, जो प्राय ३०० वर्षों-पर्यंत बहुत करके जैसा-का तैसा रहा, और खड़ी बोली की कुछ कविता छोड़ वस्तुत अद्यावधि वही वर्तमान है। इतने बृहत् काल के कवियों की भाषाओं में सामर्थ्यानुसार बहुत बड़ा अंतर भी पाया जाता है, पर वह अंतर कवियों की योग्यता के अनुसार है न कि भाषा-संबंधी किसी भारी परिवर्तन के कारण। १५६० के लगभग ब्रजभाषा कुछ-कुछ परिपक्व हो चुकी थी, और अच्छा समय था कि शक्ति-संपन्न कविगणश्रेष्ठ कविता बनाते। उत्कृष्ट रचना के लिये सुदर भाषा ही की आवश्यकता नहीं है, वरन् सबसे बड़ी शक्ति जो होनी चाहिए, वह तल्लीनता है। जब तक कवि लोक लाज और आपे तक को भूलकर किसी विषय में मस्त न हो, तब तक उसकी कविता पर-

मोत्कृष्ट नहीं हो सकती। तल्लीनता प्राय प्रेम में विशेष पाई जाती है, चाहे वह ईश्वरीय हो, या कोई अन्य विषय-सबंधी। भाग्य-वश इसी समय बंगाल में चैतन्य महाप्रभु ने और युक्त प्रांत में महाप्रभु वल्लभाचार्यजी एवं महात्मा श्रीहितहरिवंशजी ने कृष्ण-भक्ति की नदी का अनुपम तथा विस्तीर्ण स्रोत प्रवाहित किया। इन तीनो ऋषियों के साथ समस्त उत्तरी भारत में भक्ति का वह अद्भुत समुद्र उमड पडा, जिसकी तरंगों ने समस्त देश को प्लावित कर दिया। वल्लभाचार्यजी के पुत्र स्वामी विट्ठलनाथजी भी अपूर्व भक्त थे। इन दोनो ऋषियों ने काव्य का इतना आदर किया कि स्वयं भी कविता की। स्वामी वल्लभाचार्यजी ने वन-यात्रा-नामक एक हिंदी-ग्रंथ भी बनाया। संवत् १६०० के लगभग स्वामी हरिदासजी ने भी एक वैष्णव-संप्रदाय चलाया, और हिंदी का बहुत अच्छा समादर किया। इन पाँचो महात्माओं के शिष्यवर्ग में उस समय सैकड़ों भक्त-शिरोमणि हो गए। बिट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजी ने ८४ और २५२ वैष्णवों की वार्ता-नामक गद्य में जो दो बृहत् ग्रथ लिखे, उनके देखने से विदित होता है कि ये भक्तगण सदैव कृष्णानंद में ही निमग्न रहते थे। यही बात उस पद्यमय ग्रथ के देखने से विदित होती है, जो हित-संप्रदाय के अनुयायियों के वर्णनों में लिखा गया था। यह अप्रकाशित ग्रंथ हमने दरबार छतरपुर में देखा है। इसमें इस मत के प्राय डेढ़-दो सौ महात्माओं के वर्णन है। अत यह अच्छा समय था कि कविता की उन्नति होती। इसी समय तीन उत्कृष्ट कवियों का काव्य-काल प्रारंभ हुआ। महात्मा सूरदासजी वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य थे। मीराबाई भी भक्त-शिरोमणि थीं। १५६० संवत् से सूरदासजी का कविता-काल प्रारभ होता है, और उनकी लेखनी ने १६२० तक पीयूष-वर्षा की। मीराबाई एव श्रीहितहरिवंशजी ने लगभग इसी समय में कविता की। इन्हीं तीनो कवियों की कविता इस समय का शृंगार है। जायसी और कृपाराम न ऐसे भक्त थे, और न रसिया ही, अत· उनकी कविता उस दर्जे को नहीं पहुँची। कृपाराम ने १५९८ में हित-तरगिनी बनाई, और जायसी ने १५७५ से १६०० तक पद्मावत की रचना की। इसके कुछ ही पीछे, अर्थात् संवत् १६०० के लगभग सैकड़ों भक्तजनों ने श्रेष्ठ भजनों में कृष्ण-यश-गान

किया। श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी ने वल्लभीय संप्रदाय के कवियों में से आठ उत्कृष्ट कवि छाँटकर उनकी गणना अष्टछाप में की। उनमें से प्रधान श्रीसूरदास-जी थे। कहना पड़ेगा कि शेष सात कवियों की रचना मनोहर होने पर भी सौर कविता मे किसी अंश में भी समानता नहीं कर सकती। उपर्युक्त वर्णन से प्रकट है कि वैष्णवता का हमारी कविता पर भारी प्रभाव पड़ा है। अतः अधिक स्पष्टीकरण के विचार से सूक्ष्मतया उसका भी कुछ हाल यहाँ लिखा जाता है। इसका सविस्तर कथन ऊपर स्थान-स्थान पर आ गया है, किंतु सूक्ष्मता के साथ यहाँ एकत्र भी लिखा जाता है।

वैष्णव-मत में चार प्रधान शाखाएँ हैं, जो माध्वा, विष्णु, निंबार्क और रामानुज-नाम से प्रसिद्ध है। इन चारो सम्प्रदायों में राम और कृष्ण की उप-शाखाएँ हैं, जिनमें मुख्यतया इन्हीं अवतारों की उपासना होती है। माध्व में नारायण की प्रधान उपासना है। चैतन्य महाप्रभु इसी में थे। इन्होंने श्रीकृष्ण-चंद्र की भक्ति को प्रधानता दी, और नाम-कीर्तन को मुख्य माना। यह महा-प्रभुजी महाप्रभु वल्लभाचार्य के सहपाठी थे। ये दोनों महाशय भारी विद्वान् थे, और श्रीकृष्ण के अवतार समझे जाते हैं। ये उनके अटल भक्त थे। चैतन्य महाप्रभु वृंदावन को भी एक बार गए थे, पर विशेषतया बंगाल और जगन्नाथ-पुरी में रहे। यह ऐसे महान् प्रेमी थे कि भक्ति की उमंग में आपे को भूल जाते थे। इनका संप्रदाय माध्व के अंतर्गत गौड़ीय कहलाता है। इसके अनु-यायी बंगाल की ओर बहुत हैं, परतु एतद्देश में भी पाए जाते हैं। चैतन्य महाप्रभु की प्रगाढ़ भक्ति का प्रभाव जन-समूह पर बहुत पड़ा। इस संप्रदाय के भी कुछ कवि थे, जिनका नाम इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर मिलेगा। इन कवियों में ललितकिशोरीजी (कुंदनलाल) तथा ललितमाधुरीजी (फुंदनलाल) प्रधान थे। चैतन्यजी नदिया के ब्राह्मण थे, और वल्लभजी दाक्षिणात्य।

विष्णु-संप्रदाय में श्रीकृष्ण की भक्ति प्रधान है। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी इसी में थे। इन्होंने कृष्ण-सेवा पर विशेष ध्यान दिया। इनके अनुयायी वल्ल-भीयवाले कहलाते हैं। ८४ एवं २५२ वैष्णवों की वार्ताओं में इन्हीं महात्माओं के वर्णन हैं। इसमें बहुत-से कवि हुए हैं, जिनमें अष्टछाप मुख्य है। निबार्क-

संप्रदाय में भी श्रीकृष्ण का पूजन प्रधान है। महाकवि घनानंदजी इसी में थे। महात्मा हरिदासजी निंबार्क में थे। आपने टट्टियोंवाली शाखा-संप्रदाय चलाई, और विरक्ति एवं ब्रह्मचर्य पर विशेष ध्यान दिया, तथा मूर्ति-पूजन का बल कम किया। इसमें भी बहुत-से कवि और महात्मा हुए हैं, जिनके नाम इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर मिलेंगे। प्रसिद्ध कवि महाराजा नागरीदासजी एवं महंत सीतल दास इसी में थे।

रामानुज-संप्रदाय में नारायण-भक्ति प्रधान है। इसमें ईश्वर के शरण होने एवं यज्ञादिक पर विशेष ध्यान रहा है। महात्मा रामानंदजी इसी में हुए। आपने राम-भक्ति पर बहुत ध्यान दिया, और इस प्रकार रामानुज-संप्रदाय की शाखा-स्वरूप रामानंदी संप्रदाय चलाया। गोस्वामी तुलसीदासजी इसी में थे, तथा अयोध्या के महंत आदि प्रायः इसी में हैं। इसमें भी बड़े-बड़े कवि हुए हैं, किंतु उनका अस्तित्व सौर काल के पीछे है। इसी से रामानंद का कथन यहाँ नहीं के बराबर है।

गोस्वामी हितहरिवंशजी को राधाजी ने स्वप्न में मंत्र दिया, और तब से यह अपने को उन्हीं का शिष्य मानने लगे। हितजी ने एक पृथक् संप्रदाय चलाया, जिसे हित-संप्रदाय कहते हैं। यह अनन्य, हित अनन्य तथा राधावल्लभीय भी कहलाता है। इसमें विशेषतया राधाजी की प्रधानता है। इसमें स्वयं हितहरिवंशजी एक परमोत्तम कवि थे, और कितने ही अन्य उत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनमें हितध्रुवजी एवं चाचा वृंदावनजी प्रधान थे। गणना में इस संप्रदाय एवं वल्लभीय के कवि प्रायः बराबर थे, और उत्तमता में भी सूर को छोड़-कर दोनो के कवि समान कहे जा सकते हैं, क्योंकि हित में भी स्वयं हितजी तथा चाचाजी सुकवि थे। रामानन्द में स्वयं तुलसीदासजी तथा अन्य श्रेष्ठ कविगण थे, सो यह भी काव्योत्कर्ष में उन्हीं दोनो संप्रदायों के समान था। टट्टी में भी अच्छे अच्छे कवि थे, परंतु गणना तथा उत्तमता, दोनो में वह इन तीनों की समानता नहीं कर सकता। ये बातें केवल काव्योत्कर्ष के अनुसार लिखी जाती हैं। भक्ति-भाव एवं धार्मिक महत्त्व के विषय में हम कुछ भी

तुलना नहीं करते। गौड़-संप्रदाय की विशेषता बंगाल में रही, और हिंदी में उसके बहुत कवि नहीं हुए।

इस स्थान पर भक्ति के विषय में भी कुछ बातें लिखना उचित जान पड़ता है। भक्ति पाँच भावों से की जाती है, अर्थात् शांत, दास, वात्सल्य, सख्य एवं श्रृंगार-भाव से। प्रह्लाद की भक्ति शांतभाव की थी, तथा हनुमान, रामानंद, तुलसीदास आदि की दासभाववाली। वल्लभीय सम्प्रदायवाले वात्सल्याव की भक्ति रखते थे, परंतु इसमें सूरदास एवं बहुतेरे अन्य कवियों ने वात्सल्य के साथ सख्यभाव भी मिला दिया था। श्रृंगारभाव की भक्ति में प्राय भक्तजन अपने को प्रियाजी की सखी समझते हैं। हरिदासजी, हितहरिवंशजी, चैतंय महाप्रभु आदि की भक्ति इसी सखीभाव की थी। जितने भक्तों के नामों के साथ अली नाम लगा है, उन सबकी भक्ति सखीभाव की प्रसिद्ध है। सखीभाव का तात्पर्य यह है कि केवल ईश्वर पुरुष है, और सब भक्त उसके आश्रित हैं, सो उनमें स्त्री-भाव है। कृपानिवास, अग्रदास, नाभादास आदि का भी सखीभाव था। रामसखे श्यामसखे, आदि का सखाभाव था। यही सब भाव इन भक्तों की कविताओं से भी प्रकट होते हैं। वैष्णव-संप्रदायों की रामानंदी शाखा में दासभाव मुख्य है, और वल्लभीय में सखी, सखा तथा वत्सल्यभाव। शेष संप्रदायों में सखीभाव का ही प्राधान्य है। इनके कारण हिंदी-साहित्य का प्रचार अच्छा हुआ, किंतु उसमें श्रृगार की प्रधानता हो गई। मुगल-दरबार की विलासिता से समय पर श्रृंगार-काव्य की ओर भी वृद्धि हुई।

वैष्णव-सम्प्रदायों में सबसे पहले वल्लभीय का प्रभाव हिंदी-साहित्य पर पड़ा। जैसा ऊपर कहा गया है, इसके वैष्णवों में बहुत-से महात्माओं ने साहित्य-सेवा की। इन सबमें अष्टछापवाले कविगण सर्वप्रधान माने गए हैं। इस अष्टछाप में सूरदास कृष्णदास, परमानंददास तथा कुंभनदास श्रीस्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे, और शेष तत्पुत्र विट्ठल स्वामी के। इन कवियों का सूक्ष्म हाल नीचे लिखा जाता है।

(१२६) महात्मा श्रीसूरदासजी

इनका जन्म दिल्ली के पास सीही-ग्राम-निवासी रामदास-नामक एक

दरिद्र सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ, लगभग सं० १५४० के, हुआ। यह महाशय श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे, और जीवन-पर्यंत सदैव कृष्णानंद में मग्न रहे। आठ वर्ष की अवस्थ से अपने माता-पिता को छोड़ आप श्रीमथुराजी में रहने लगे थे, और अंत तक व्रजमंडल ही में रहे। इनका शरीर-पात संवत् १६२० के आस-पास, पारासोली-ग्राम में, हुआ। इनका निवास-स्थान विशेष-तया गऊघाट पर था। इन्होंने सूरसागर, सूरसारावली, साहित्यलहरी, ब्याहलो और नल-दमयंती नामक पाँच ग्रंथों की रचना की। चौथी त्रैवार्षिक खोज में इनका एक ग्रंथ प्राणप्यारी-नामक मिला है। सब ग्रंथों में से सूरसागर प्रौढ़तम और परमोत्कृष्ट है। कहा जाता है, इसमें प्रायः एक लाख पद हैं, परंतु आज-कल जितनी प्रतियाँ सूरसागर की मिलती हैं, उनमें पाँच-छः हज़ार से अधिक पद नहीं मिलते। इसमें गौण रूप से भागवत की कथा कही गई है, परंतु विस्तार-पूर्वक व्रजवासी कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। सूरसारावली सूरसा-गर का सारांश है, और साहित्य-लहरी में सूर-कृत दृष्टकूटों का संग्रह है। ब्या-हलो और नल-दमयंती की कथाओं के विषय उनके नाम ही प्रकट करते हैं। कैटालागस कैटालागोरम में इनकी हरिवंश-टीका नाम की एक और पुस्तक लिखी है। पद-संग्रह, दशम स्कंध-टीका एवं नाग-लीला, ये तीन ग्रंथ खोज में इनके और मिले हैं। तृ० त्रै० रि० में इनके भागवत तथा सूरपचीसीनामक ग्रंथ भी मिले हैं।

सूर कविता में भक्ति का गुण सर्वप्रधान है। इनकी भक्ति वात्सल्य, सखा और सखीभाव की थी। यह महाशय एक ईश्वर के उपासक थे, और राम, कृष्ण तथा विष्णु को एक ही समझते थे। इन्होंने शुद्ध व्रजभाषा में कविता की, और उपमा, रूपक, नख शिख, प्रबंधध्वनि एवं अन्य काव्यांगों का अपनी कविता में अच्छा सन्निवेश किया। आपने अपने प्रिय विषयों के वर्णन बहुत ही सांगोपांग और विस्तार से किए। इस गुण में शायद संसार-साहित्य में आपकी समानता करनेवाला कोई भी कवि नहीं हुआ। श्रीकृष्णचंद्र की बाल-लीला का वर्णन इन्होंने विस्तार-पूर्वक और ऐसा विशद किया, जिसे देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। माखन-चोरी, ऊखल-बंधन, रास-लीला, मथुरा-गमन और उद्धव-संवाद

आदि इनके परमोत्कृष्ट और प्रभाव-पूर्ण वर्णन हैं, जिनके देखने से इनकी कविता का महत्त्व पाठक को विदित होता है। इनका मथुरा-गमन बड़ा ही हृदय-द्रावक है। वर्णन-पूर्णता, साहित्य-गौरव, बारीकबीनी, रंगों का सम्मिश्रण एवं तत्प्रभाव तथा भाव-गरिमा की सूरदास में अच्छी बहार है। भक्ति-गांभीर्य के साथ इन्होंने ऊँचे विचारों, प्रकृति-निरीक्षण एवं मानव-शील-गुणावलोकन के अनुभवों को खूब मिलाया है। आपने चरित्र-चित्रण में अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनके वर्णनावलोकन से मनुष्य में उच्च भावों का संचार होगा। 'हिंदी भाषा और साहित्य' कार को सूरदास के कृष्ण में पराक्रम और नीतिज्ञता का अभाव-सा देख पड़ता है, तथा लोकादर्शों की ओर कवि का ध्यान नहीं समझ पड़ता। सूर के कृष्ण ने केशी, बकासुर, तृणावर्त, कुवलयापीड़, मल्ल, कंस आदि को जीता, सो पराक्रम का अभाव उनमें नहीं आरोपित हो सकता। नीति पर उन्होंने कोई व्याख्यान तो दिए नहीं, किंतु उसका विरोध कभी नहीं किया। सूरवाली शृंगारिक लीलाएँ धार्मिक एवं माधुर्यमयी हैं। आगे चलकर कवियों के ऐसे वर्णन अनुचित शृंगार में आ गए हैं, किंतु सूर की भक्ति सात्त्विक थी। लोकादर्शों से भी सूर च्युत नहीं हुए। हमारी समझ में इनके विषय में ऐसी समालोचना अनुपयुक्त है। सूर विलासी कवि न होकर संत थे। वह भगवान् की लीलाएँ गाते थे। उन पर उन्होंने बल अवश्य नहीं लगाया। हाँ, लोक-संग्रह की ओर वह अधिक न थे। सूरदासजी के गुण-गण का दिग्दर्शन-मात्र यहाँ कराया गया है। जिन पाठकों को विस्तार-पूर्वक इनकी समालोचना पढ़नी अभीष्ट हो, वे हमारा हिंदी-नवरत्न देखने की कृपा करें।

उदाहरण—

अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल।
काम, क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत निंदा सिबद रसाल,
भरम भरयो मन भयो पखावज चलत कुसंगति चाल।
तृष्णा नाच करति घट भीतर नाना बिधि दै ताल;
माया को कटि फेटा बाँधे लोभ तिलक दै भाल।

कौरिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल,
सूरदास की सबै अबिधा दूरि करौ नँदलाल।

अब कै राखि लेहु गोपाल!
दसहु दिसा ते दुसह दवागिनि उपजी है यहि काल।
पटकत बाँस कास कुस चटकत लटकत तालतमाल,
उचटत अति अगार फुटत झर झपटत लपट कराल।
धूम धुंध बाढ़ी धर अंबर चमकत बिच-बिच ज्वाल;
हरिन बराह मोर चातक पिक जरत जीव बेहाल।
जनि जिय डरहु नैन मूँदहु सब हँसि बोले गोपाल,
सूर अनल सब बदन समानी अभय करे ब्रजबाल।

देखु सखि, सुंदरता को सागर।
बुधि-बिबेक-बल पार न पावत मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि कटि पट पीत तरंग;
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भँवर परत सब अंग।
नैन मीन मकराकृत कुंडल भुजबल सुभग भुजंग,
मुक्त-माल मिलि मानहु सुरसरि दोय सरित लिय संग।
मोर-मुकुट मनि नग आभूषन कटि किंकिनि नख चंद,
मनु अडोल वारिधि मैं बिंबित राका उडुगन बृंद।
वदन चंद मंडल की सोभा अवलोकनि सुख देत,
जनु जलनिधि मथि प्रकट कियो ससि श्री अरु सुधा समेत।
देखि सरूप अमल गोपीजन रहीं बिचारि-बिचारि,
तदपि सूर तरि सकीं न सोभा रहीं प्रेम पचि हारि।

स्याम कर मुरली अतिहि बिराजत।
परसत अधर सुधा-रस प्रकटत मधुर-मधुर सुर बाजत।
लटकत मुकुट भौंह छबि मटकत नैन-सैन अति छाजत,
ग्रीव नवाय अटकि बंसी पर कोटि मदन-छबि लाजत।
लोल कपोल झलक कुंडल की यह उपमा कछु लागत;

मानहुँ मकर सुधा-सर क्रीडत आपु-आपु अनुरागत।
वृंदावन विहरत नँद-नदन ग्वाल-सखन सँग सोहत ;
सूरदास प्रभु की छवि निरखत सुर-नर-मुनि मन मोहत।

हरि-मुख निरखत नैन भुलाने ।
ए मधुकर रुचि पकज-लोभी ताही ते न उड़ाने।
कुंडल मकर कपोलन के ढिग मनु रबि रैनि बिहाने,
भ्रुव सुंदर नैननि गति निरखत खंजन मीन लजाने।
अरुन अधर ध्वज कोटि बज्र दुति ससिगन रूप समाने,
कुंचित अलक सिलीमुख मानहुँ लै मकरंद निदाने।
तिलक ललाट कठ मुकुतावलि भूपन मनिमय साने ;
सूरदास स्वामी अंग नागर ते गुन जात न जाने।

प्रिया-मुख देखौ स्याम निहारि ।
कहि न जाय आनन की सोभा रही बिचारि-विचारि।
छीरोदक घूँघट हातो करि सनमुख दियो उघारि ।
मनहुँ सुधाकर छीरसिंधु तैं कढ़यो कलंक पखारि।
मुकता माँग सीस पर सोभित राजति यहि आकारि ;
मानहुँ उड़गन जानि नवल ससि आए करन जुहारि।
भाल लाल सिंदूर विंदु पर मृगमद दियो सुधारि ;
मनौं बँधूक-कुसुम ऊपर अलि बैठो पंख पसारि।
चंचल नैन चहूँ दिसि चितवत जुग खंजन अनुहारि,
मनहुँ परसपर करत लराई कार बचाई रारि।
बेसरि के मुक्ता मैं झाँई वरन विराजत चारि,
मानहुँ सुरगुरु सुक्र भौम सनि चमकत चद मँझारि।
अधर बिंब दसनन की सोभा दुति दामिनि चमकारि ;
चिबुक बिंद विच दियो विधाता रूप सींव निरवारि।
जोति पुंज पटतर करिबे को दीजै कह अनुहारि ;
जनु जुग भानु दुहू दिसि उगए तम दुरि गयो पतारि।

लाल सु भाल हार कुचमंडल सखियन गुहि सुढारि,
मनु दस दिसि निरधूम अगिनि करि तप बैठे त्रिपुरारि।
सनमुख डीठि परे मनमोहन लजित भई सुकुमारि,
लीन्हीं उमगि उठाय अंक भरि सूरदास बलिहारि।
लखियत चहुँ दिसि ते घन घोरे।
मानहुँ मत्त मदन के हथियन बल करि बंधन तोरे।
श्याम सुभग तन चुवत घंडमद बरसत थोरे-थोरे,
रुकत न पौन महावत हू पै मुरत न अंकुस मोरे।
पल बरुनी बल निकसि नैन-जल कुचकचुकि बँद-बोरे,
मनो निकसि बगपाँति दंत उर अवधि सरोवर फोरे।
तब तेहि समय आनि ऐरावत ब्रजपति सों कर जोरे,
अब सुनि सूर कान्ह केहरि बिन गरत गात जिमि ओरे।

महात्मा सूरदास की भाषा एकाध पूर्वी शब्द लिए हुए शुद्ध ब्रजभाषा है, जो बहुत ही प्रौढ़, परिपक्व और सुव्यवस्थित है। पूर्वी-भाषा के कुछ शब्दों के स्वागत ने भी इन्हें चमत्कार ही प्रदान किया है। आपकी भाषा सभी भावों, दशाओं, विचारों, हावों आदि का बहुत ही पूर्णता के साथ चित्रण करती है, और इनकी इच्छा के अनुसार लचीली, मधुर और सुगठित है। तुलसीदास के समान अर्थव्यक्त तो उसमें नहीं है, किंतु गांभीर्य और सामर्थ्य पूरे हैं। पदावली अलंकृत है, शब्द-संगुफन बहुत ही सोहावना है, काव्य सशक्त है, भावों में मौलिकता है और कल्पना में अपूर्व कोमलता। भावव्यंजना में स्वाभाविकता एवं मार्मिकता है, तथा बाल-लीला, रास, मथुरा-गमन, उद्धव-संवाद आदि में सच्ची अनुभूति के भावुक उदाहरण धारावाहिता के साथ मिलते हैं। वर्णन-पूर्णता के आप उस्ताद हैं, और लाक्षणिक मूर्तिमत्ता सुगमता-पूर्वक सामने रखते रहते हैं। लोकोक्तियों का भी संचार पाया जाता है। इनकी रचना में हावों के सुंदर विधान तथा चेष्टाओं के मनोरम चित्रण प्रचुरता से पाए जाते हैं। संचारियों की व्यंजना भी स्निग्ध मधुर पदावली में प्रस्तुत है। श्रेष्ठ वर्णनों में रस निचुड़ा पड़ता है, और हृदय-पक्ष का चमत्कार-कौशल देखते ही बनता है।

कला-पक्ष का भी आरंभ है। सूर ने संयोग और वियोग दोनो प्रकार के शृंगार में कथन-शक्ति का कमाल दिखलाया है। मानुष-जीवन की मधुरिमा का चित्रण आप ही का काम है। सा-ही-साथ प्रेम की पीर भी ख़ूब ही निवाही है। वात्सल्य और शृंगार दोनो भावों से भक्ति सूरसागर में भरी हुई है। व्रजभाषा का इनके हाथ में अपूर्व नृत्य देख पड़ता है। शृंगार का वर्णन करते हुए भी आर्ष आदर्शों से आप च्युत नहीं हुए हैं। वल्लभीय सम्प्रदाय की महत्ता सबसे अधिक आप ही की लेखनी पर अवलंबित है।

(१२७) कृष्णदास

यह महाराज वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे। आपके कोई ग्रंथ हमने नहीं देखे, परंतु १०४ पद हमारे पास वर्तमान हैं। इन्होंने अधिकतर भक्ति-पूर्ण शृंगार-रस का वर्णन किया है। यह महाशय जाति के शूद्र थे, पर तो भी आचार्यजी के शिष्य और सच्चे वैष्णव होने से श्रीनाथजी के मंदिर के सर्वप्रधान प्रबंधकर्ता नियत हुए। एक बार विट्ठलनाथजी से चिढ़कर इन्होंने श्रीनाथजी में उनकी ड्योढ़ी बंद कर दी, जिससे गोस्वामीजी को अत्यंत कष्ट हुआ। यह हाल सुनकर महाराज बीरबल ने कृष्णदासजी को क़ैद कर दिया। इस पर गोस्वामी विट्ठलनाथजी ही को इनके कष्टों पर इतना खेद हुआ कि उन्होंने अन्न-जल छोड़ दिया। यह देख बीरबल ने इन्हें कारागार से मुक्त किया। गोस्वामीजी ने फिर भी इन्हें श्रीनाथजी के प्रबंध पर बहाल रक्खा। कृष्णदास ने जुगल मानचरित्र, भक्तमाल पर टीका, भ्रमरगीत और प्रेमसत्त्वनिरूप-नामक चार ग्रंथ बनाए। कहते हैं, इन्होंने श्रीभागवत का एक अनुवाद भी किया। इनका काल १५७० के लगभग है। कविता में यह सूरदासजी से लाग-डाट रखते थे। आपका वैष्णववंदन-नामक ग्रंथ खोज में मिला है। इनका बानी-नामक एक और ग्रंथ सुन पड़ता है, तथा सरोजकार ने प्रेमरस-रास-ग्रंथ का नाम भी इनके संबंध में दिया है। इस नाम के कई महात्मा कवि भी थे, सो यह निश्चय नहीं होता कि ये सब ग्रंथ इन्हीं के हैं, अथवा कुछ औरों के भी। कृष्णदास पयअहारी इनसे इतर महाशय थे।

इनकी कविता अच्छी होती थी। आपने भी श्रेष्ठ व्रजभाषा का प्रयोग

किया। आपकी रचना निर्दोष, भाव-पूर्ण और मोहावनी है। उसमें अनूठेपन की अच्छी बहार है। आपकी गणना अष्टछाप में था, और आपका चरित्र ८४ वैष्णवों की वार्ता में लिखा हुआ है।

उदाहरण—

रासरस गोबिंद करत बिहार।
सूरसुता के पुलिन रम्य मह फूले कुंद मँदार।
अद्भुत सतदल बिकसित कोमल मुकुलित कुमुद कल्हार,
मलय पवन बह सारद पूरन चंद मधुप झंकार।
सुवर राय सगीत कलानिधि मोहन नंदकुमार,
व्रजभामिनी सँग प्रमुदित नाचत तन चरचित घनसार।
उभै स्वरूप सुभगता सीवाँ कोक कला सुख सार,
कृष्णदास स्वामी गिरिधर पिय पहिरे रस मैं हार।

(१२८) परमानंददास

यह महाशय कान्यकुब्ज ब्राह्मण कन्नौज के रहनेवाले थे। इनकी भी गणना अष्टछाप में थी। यह महाराज श्रीस्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनकी कविता बहुत मनोरंजक बनती थी। आपने बालचरित्र और गोपियों के प्रेम का बहुत अधिक और बढ़िया वर्णन किया है। इनका एक पद खड़ी बोली में भी हमने देखा है। आपका रचा हुआ एक परमानंदसागर सुनने में आया है, और स्फुट छंद बहुत-से यत्र-तत्र पाए जाते हैं। इनका एक पद सुनकर वल्लभाचार्यजी एक बार ऐसे प्रेमोन्मत्त हो गए कि कई दिनों तक देहानुसंधान-रहित रहे। इससे एवं छंदों के पढने से विदित होता है कि इनमें तल्लीनता का गुण खूब था। इनके बनाए हुए 'परमानंददासजी का पद, और 'दानलीला' १९०२ की खोज में मिले हैं। आपका समय १५८० के लगभग था। प्र० त्रै० खोज में इनका एक ग्रंथ ध्रुव-चरित और मिला है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता में भी आपका वर्णन किया गया है। इनकी रचना में धारावाहिता भी है।

उदाहरण—

देखो री यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है,

सुंदर बदन कमल-दल-लोचन देखत चंद लजाया है।
पूरन ब्रह्म अलख अबिनासी प्रगटि नंद-घर आया है;
परमानंद कृष्ण मनमोहन-चरन-कमल चित लाया है।

राधेजू हारावलि टूटी।

उरज कमल-दल माल मरगजी बाम कपोल अलक लट छूटी।
बर उर उरज करज पर अंकित बाहु जुगुल वलयावलि फूटी,
कंचुकि चीर विविध रँग रंजित गिरिधर अधर माधुरी घूटी।
आलस बलित नैन अनिनारे अरुन उनींदे रजनी खूटी,
परमानँद प्रभु सुरति समै रस मदन नृपति की सेना लूटी।

कहा करौं बैकुंठहि जाय।

जहँ नहिं नंद जहाँ न जसोदा जहँ नहिं गोपी-ग्वाल न गाय।
जहँ नहिं जल जमुना को निरमल और नहीं कदमन की छाय,
परमानँद प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रज-रज तजि मेरि जाय बलाय।

(१२६) कुंभनदास

यह महाराज वल्लभाचार्यजी के शिष्य अपने समय के पूरे ऋषि थे। एक बार अकबर के बुलाने पर इन्हें फतेहपुर सीकरी जाना पड़ा, और यह अकबर शाह द्वारा सम्मानित भी हुए, परंतु फिर भी इन्हें वहाँ जाना समय का नष्ट करना-मात्र समझ पड़ा। इनकी कविता में शृंगार-रस का प्रधान्य समझ पड़ता है, परंतु वह कृष्ण-भक्ति से पूर्ण है। हम कविता की दृष्टि से इनकी गणना साधारण श्रेणी में करेंगे। इनकी भी गिनती अष्टछाप में थी। आपका कोई ग्रंथ देखने में नहीं आया, परंतु प्राय ४० पद हमारे पास हैं। यह महाशय सदैव परम दरिद्री रहे, परतु इन्होंने कभी किसी राजा या बादशाह से धन लेना स्वीकार न किया। इनका कविता-काल १५८२ के लगभग था। कुंभनदासजी की कथा ८४ वैष्णवों की वार्ता में वर्णित है। यह महाशय गोरवा ब्राह्मण थे। इनके सात पुत्रों में चतुर्भुजदास भी एक थे। कुंभन के पौत्र राघवदास भी अच्छे कवि थे।

ग्राम में पहुँचे, और वहाँ एक खत्री की स्त्री पर आसक्त हो गए। उस स्त्री के संबंधी इनसे पिंड छुटाने को गोकुल चले गए, पर यह भी पीछे लगे रहे। अंत में बिट्ठलनाथजी के उपदेश से इनका मोह भंग हुआ, और अगाध प्रेम कृष्ण भगवान् में लग गया। यह हाल २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है। बाबू राधाकृष्णदास ने भक्तनामावली में लिखा है कि नंददासजी का २५२ वार्ता में सनाढ्य ब्राह्मण होना लिखा है, पर वार्ता देखने से प्रकट हुआ कि उसमें नंददास का केवल ब्राह्मण और तुलसीदासजी का भाई होना कहा गया है। इस विषय में हमारा तुलसीदास-विषयक प्रबंध हिंदी-नवरत्न में देखिए। इनकी कविता धाराप्रवाह-युक्त, बड़ी ही ओजस्विनी, गंभीर एवं मनोहारिणी होती थी। रासपंचाध्यायी पढ़कर चित्त परम प्रसन्न हो जाता है। हम इनकी गणना उच्च श्रेणी में करेंगे।

उदाहरण—

परम दुसह श्रीकृष्ण बिरह दुख व्याप्यो तिनमें,
कोटि बरस लगि नरक भोगदुख भुगते छिन में।
सुभग सरित के तीर धीर बलबीर गए तहँ,
कोमल मलय समीर छबिन की महा भीर जहँ।
कुसुम धूरि धूँधरी कुंज छबि पुंजनि छाई;
गुंजत मंजु मलिंद बेनु जनु बजति सोहाई।
इत महकति मालती चारु चंपक चित चोरत;
उत घनसारु तुसारु मलय मंदारु झकोरत।
नव मर्कत-मनि स्याम कनकमनिमय ब्रजबाला,
बृंदावन गुन रीझि मनहु पहिराई माला।

इनकी कविता के विषय में कहावत प्रसिद्ध है कि "और सब गढ़िया, नंददास जड़िया", अर्थात् और सब कवि गहने गढ़ते थे, पर नंददास उन्हें जड़ते थे, अर्थात् पच्चीकारी का महीन काम नंददास ही के भाग पड़ा था। इतना ऊँचा पद तो अयोग्य है, किंतु है इनकी रचना बहुत प्रशंसनीय। इनका एक गद्य-ग्रंथ भी छतरपुर में हमने देखा है। यह विज्ञानार्थप्रकाशिका-नामक

संस्कृत-ग्रंथ की ब्रजभाषा में टीका है। इसके अतिरिक्त नासकेतुपुराण का भाषानुवाद गद्य में इन्होंने किया, जैसा कि ऊपर लिखा गया है। कहते हैं, मथुरावाले व्यासों के आग्रह से इन्होंने रासपचाध्यायी से इतर अपनी भागवत-कविता यमुनाजी में डुबो दी। व्यासों को यह भय हुआ था कि भाषा भागवत सभी पढ़ लेंगे, जिससे उनकी संस्कृतभाषा में कथाओं का माहात्म्य घट जायगा।

(१३३) गोविंदस्वामी

यह महाशय अंतरी के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। वहाँ से आकर यह महावन में रहे और लोगों को शिष्य करते रहे। अंत में यह स्वयं स्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य हो गए, और तब से गोवर्द्धन पर श्रीनाथजी की सेवा में रहने लगे। यह कवि होने के अतिरिक्त गान-विद्या में बहुत निपुण थे, और तानसेन भी इनके गाने से मोहित हो जाते थे। इनकी कविता केवल अच्छे गवैए ही गा सकते हैं। इन्होंने गोवर्द्धन के पास कदंब का एक उपवन लगाया, जो अब तक वर्तमान है, और गोविंदस्वामी की कदंब-खंडी कहलाता है। इनके कोई ग्रंथ देखने में नहीं आए, परंतु स्फुट पद बहुत इधर-उधर देखे-सुने गए हैं। इनकी कविता साधारणत. सरस और मधुर है, और अष्टछाप के अन्य कवियों की भाँति कृष्ण-भक्ति से भरी है। हम इनकी गणना साधारण श्रेणी में करेंगे। इनकी श्रेष्ठता का समय १६२४ के लगभग था।

उदाहरण—

प्रात समै उठि जसुमति जननी गिरिधर सुत को उबटि न्हवावति,
करि शृंगार बसन-भूषन सजि, फूलन रचि-रचि पाग बनावति।
छूटे बँद बागे अति सोभित बिच-बिच चोव अरगजा लावति,
सूथन लाल फूँदना सोभित आजु कि छबि कछु कहति न आवत।
बिबिध कुसुम की माला उर धरि श्रीकर मुरली बेंत गहावति,
लै दरपन देखे श्रीमुख को गोबिंद प्रभु चरननि सिर नावति।

अष्टछापवाले कवियों के हाथ में ब्रजभाषा ने अपूर्व उन्नति की। उसमें प्रांजलता, कोमलता, माधुर्य, भाव-व्यंजना की शक्ति, प्रवाह, अठखेलियाँ, मर्मस्पर्शी वेदनाओं के यथावत् व्यक्त करने की शक्ति आदि सब देख पड़ीं।

शृंगार, वात्सल्य, भाव-समुच्चय, शोभा, वंशी, रास, राग, प्रगाढ़ भक्ति, उछल-कूद, कथा-प्रसग आदि सब कुछ उसने सफलता-पूर्वक व्यक्त किए। भाषा उन्नत पहले ही हो चुकी थी, किंतु इस काल उस उन्नति की सिद्धि भी देख पड़ी।

वास्तव में उच्च साहित्य का जन्मकाल हमारे यहाँ अष्टछाप से ही हुआ।

सातवाँ अध्याय

सौर काल

(१५६१ से १६३० तक)

यह अपूर्व समय हिंदी-कविता के लिये परम सौभाग्य का था। हिंदी की उत्पत्ति हुए प्राय आठ सौ वर्ष बीत गए थे, परंतु सिवा दो-चार के कोई भी प्रथम श्रेणी का कवि अब तक नहीं हुआ था। संख्या में भी पिछले आठ सौ वर्षों में इन ७० वर्षों की अपेक्षा थोड़े कवि उत्पन्न हुए थे। चद वरदाई, ख़ुसरो कबीर और विद्यापति को छोड़कर यह भारी सात-आठ सौ साल का समय कविता-बाहुल्य और साहित्य-सौंदर्य, दोनो के वास्ते बाल-काल समझना चाहिये। साहित्य की उत्तमता सर्वतोभावेन उमंग,, उत्साह आदि पर निर्भर है। यही गुण साहित्य-देवी की चित्ताकर्षिणी मूर्ति को और भी मनोहर बना सकते तथा उसकी प्रतिभा को देदीप्यमान करते हैं। परंतु ये गुण साधारण व्यक्तियों में नहीं पाए जाते। इसी से उनकी कविता में वह सौंदर्य नहीं आ सकता, जो बरबस चित्त को अपनी तरफ खींच ले, और उसमें उस संजीवनी शक्ति का संचार नहीं होता, जो दिल की मुरझाई हुई कली को विकसित कर दे। ये गुण प्रधानतया तल्लीनता से प्राप्त होते हैं, चाहे वह ईश्वर-सबधी हो या किसी और विषय पर।

चंद बरदाई पृथ्वीराज द्वारा सम्मानित होने एवं अन्य कारणों से उनके गुणों पर इतने मुग्ध थे कि वह चौहानराज की प्रशंसा मुक्त कठ से करने को

बरबस उत्साहित होते थे, और उनकी बहुत-सी बातों से सहमत भी थे। उसके सुविशाल अनुभव और भाषा के प्रगाढ़ अधिकार ने उसकी कवित्व-शक्ति को और भी स्फूर्ति दे दी थी। इन्हीं कारणों से वह उत्तम कविता रच सके, परंतु तब तक और कोई कवि तादृश प्रतिभा प्राप्त करने में समर्थ नहीं हुआ। क्षेपक-बाहुल्य के चंदीय काव्य पर दृढ़ता-पूर्वक कुछ कथन भी बहुत ठीक नहीं है। महात्मा गोरखनाथ की शिष्य-मंडली का रुझान कविता की ओर कम हुआ। महर्षि रामानुज दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे, सो हिंदी-भाषा पर उनके विशेष अधिकार होने की आशा भी नहीं की जा सकती थी। उनके दूरस्थ होने के कारण उत्तरी भारत पर कुछ समय तक उनकी भक्ति का विशेषतया प्रभाव नहीं पड़ा। महात्मा कबीरदास की रचनाएँ अनूठेपन एवं आधिक्य में अवश्य प्रशंसनीय हैं, परंतु फिर भी उनकी शिष्य-मंडली में किन्हीं कारणों से साहित्य का सिक्का न जम सका। इन महात्माओं के शिष्य-वर्ग की तल्लीनता का बल कविता की ओर नहीं लगा।

भाषा के सौभाग्य से श्रीमहात्मा वल्लभाचार्य, श्रीचैतन्य महाप्रभु, हितहरिवंशजी, हरिदासजी आदि ने उत्तरी भारत में भक्तितरंगिनी की प्रकांड धारा को इस वेग से प्रवाहित किया कि सारा देश उसके अकथनीय आनंदांबु में एकदम निमग्न हो गया। इनके अनुयायियों में भक्ति-भाव तल्लीनता की मात्रा का अच्छा विकास हुआ। तल्लीनता एक भारी बल है, जिसके सम्मुख कोई भी वस्तु असंभव नहीं है। इसी के वश प्रेमीजन अपनी प्रेमिका पर पतंग की भाँति निछावर हो जाते हैं। इसी के वश योगीजन कंचन को पत्थर के ढेले की भाँति समझकर ईश्वरानंद में निमग्न रहते और कठिन-से-कठिन तपस्या में भी परमानंद का अनुभव करते हैं। इसी के वश शूरवीर रणक्षेत्र में तिल-तिल अंग कट जाने पर मुँह न मोड़कर सहर्ष स्वर्ग-यात्रा करते हैं। उपर्युक्त महानुभावों ने इस अमोघ बल को साहित्य की ओर लगा दिया। फिर क्या था? इसने कृष्ण-भक्ति के साथ विकास पाकर भाषा-भांडार को मनोमोहिनी एवं प्रचुर कविता से भर दिया।

इन महानुभावों की भक्ति लीला-संबंधी होने के कारण इन संप्रदायों के

कवियों में शृंगार-विषयक कविता ही विशेषतया प्रचलित हुई, जिसके कारण भाषा-काव्य के कविगण का रुझान शृंगार ही की ओर हो गया, और इस रस ने हमारी कविता पर ऐसा अधिकार जमा लिया कि और रस मुँह ताकते ही रह गए। ये संप्रदाय-प्रचारक एवं पहले के महात्मा लोग विशेष त्यागी, निर्विकार तथा विरक्त थे। अत. इनकी रचनाओं में भक्ति का प्राधान्य देख पड़ता है। परंतु आगे चलकर विकारी कवियों द्वारा भक्ति का तिरोभाव हो गया, और भाषा-साहित्य में भक्ति-हीन शृंगार-रस ने बल पाया। इससे इतनी हानि अवश्य हुई, परंतु कुल मिलाकर भाषा-साहित्य को लाभ ही हुआ। यदि वैष्णव महात्मागण तथा उन महात्माओं के अनुयायी भाषा-साहित्य पर इतना श्रम न किए होते, तो आज दिन इतनी परिपूर्णता कदापि देखने को नसीब न, होती। फिर गोस्वामी तुलसीदासजी को छोड़कर ये सब महात्मा अपने को कवि समझते ही न थे, और न कभी कवि कहते थे। ये लोग तो भजनानंद और कृष्ण-गुण-गान के लिये ही छंदों की रचना करते थे। छंद-रचना से उत्तम कवि कहलाने का इनका सचमुच अभिप्राय न था। पर इस अभिप्राय के न होने से भी इन महानुभावों से साहित्योन्नति बहुत अच्छी हुई, और इनकी भक्ति के कारण यह समय कविता के लिये बड़ा उपयोगी हो गया।

यह अपूर्व समय हिंदी-कविता का कल्प वृक्ष था। हिंदी ने इसी समय में ऐसे-ऐसे महाकवि उत्पन्न किये जिनके जोड़ के अन्यत्र कठिनता से मिलेंगे। महात्मा श्रीसूरदासजी, गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी, हरिदासजी मीराबाई आदि ने इसी समय को सुशोभित किया, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं। इनके अतिरिक्त भी कवि-शिरोमणि रसखान, गंग, नरोत्तम, भक्त-शिरोमणि निपटनिरंजन, दादूदयाल आदि इसी अमूल्य समय में हुए हैं। इसी समय में अकबर शाह आदि बड़े-बड़े बादशाहों तक ने हिंदी का ऐसा आदर किया कि वे स्वयं कविता करने लगे। फ़ैज़ी, अबुलफ़ज़ल, महाराजा वीरबल (वीरवर) (ब्रह्म), महाराज टोडरमल आदि ने इसी समय कविता करके हिंदी का समादर किया। वास्तव में व्रजभाषा-संबंधी प्रौढ़ हिंदी-कविता का इसी समय जन्म हुआ। इसी समय सूरदास ने पदों में कथा लिखने की प्रणाली चलाई। इस अनमोल काल में

श्रीकृष्ण-संबंधी कथाओं का विशेषतया पदों द्वारा पूर्ण साम्राज्य रहा, तथा जायसी ने कथा-प्रसंग की एवं कृपाराम ने रीति-ग्रंथोंवाली प्रणाली की नींव डाली, पर इस समय कवियों में इन शैलियों का कुछ विशेष समादर न हुआ। पंडितों का विचार है कि जायसीवाले समय के लगभग कुछ साधारण कवियों ने भी उसी प्रकार की कविता की थी, पर उत्कृष्ट न होने के कारण वह संसार-चक्र में दबकर लुप्त अथवा लुप्तप्राय हो गई।

संवत् १५६१ से १६३० तक अष्टछाप की कविता के ढंग पर अनेकानेक भक्तवरों ने पदों में कृष्ण-भक्ति की मनमोहनी कविता की, जो भक्तकल्पद्रुम, रागसागरोद्भव, सूरसागर आदि ग्रंथों में संगृहीत है। दामोदामोदर, वासुदेवलाल, गोपालदास, केशवदास (दूसरे), नारायण, खेम, निर्मल, पद्मनाभ, माधवदास कल्यानदास, मदनमोहन, मुरारिदास, श्याम, धोंधे, श्रीभट्ट, अग्रदास, जगन्नाथ, तानसेन (प्रसिद्ध गानेवाले), जगजीवन, द्वारिकेस, विष्णुदास त्रैलोक, चतुर-बिहारी, नरसैयाँ, रसिक विहारिनदास, श्रीस्वामी हरिदास (बड़े भक्त तथा धर्मप्रचारक), व्रजपति, व्यास, श्रीस्वामी बिट्ठलनाथजी, कान्हरदास, भगवान-हित, बिट्ठल विपुल, गदाधर, आसकरन, रामदास, वृंदावनदास, माधवदास, गोपालदास, दामोदरदास, रामराय, नरवाहन, केवलराम, रघुनाथ, बंसीधर, चंद्रसखी, रसरंग, बलराम, माणिकचंद, सगुनदास, करुनानिधि, अजानानंद, विद्यादास, परशुराम, नवलसखी, संतदास, ललितकिशोरी इत्यादि भिन्न-भिन्न समयों में इसी प्रकार के कवि हुए हैं। इन सबों ने अष्टछाप के कवियों से मिलती जुलती कविता की है, और कृष्णानंदसागर की तरंगें लहराई हैं। स्वामी हरिदास ने संस्कृत-गर्भित भी कविता की और भगवानहित ने नख-शिख अच्छा कहा। परमप्रसिद्ध गायक तानसेन की कविता से जान पड़ता है कि यह कृष्ण-भक्त थे। इनका मुसलमान होना इनकी रचना से नहीं प्रकट होता। प्रसिद्ध गायनाचार्य बैजू बावरे और सदारंग भी तानसेन से समकालिक थे। इनका भी नाद-शास्त्र पर अगाढ़ अधिकार था। कहते हैं, बैजू बावरे तानसेन के गायन-शास्त्र के गुरु थे। ग्वालियरवाले शेख मुहम्मद गौस भी तानसेन के गाने में गुरु थे। महाराज नरसैयाँ ने पंजाबी-मिश्रित भाषा में भी रचना की। कविता

का समादर वैष्णव-संप्रदायों में इतना था कि स्वयं वल्लभाचार्यजी, हितजी, हरिदासजी तथा विट्ठलदास स्वामी ने भी कविता की। उपर्युक्त पद-निर्मायकों में सब इसी समय में न थे, पर अधिकांश थे। इसी प्रकार अन्य विषयों के कहनेवाले भी इसमें हुए हैं। वैष्णव-संप्रदायवालों के ही प्रेम के कारण भारत में कृष्ण-लीला और रास की चाल पड़ी है, और इसी समय से राम-लीला आदि होने लगीं।

एक बार तानसेन के साथ वेष बदलकर अकबर स्वामी हरिदास के दर्शन करने गए। कुंभनदास को उन्होंने सीकरी बुलाया। तुलसीदास से भी मिलने की उन्हें इच्छा हुई। अकबरी दरबार में हिंदी के विशेष समादर से उस समय अन्य हिंदू और मुसलमान बड़े मनुष्यों के यहाँ भी हिंदी का अच्छा मान होने लगा। यह मान भी तुलसीदास के समयवाले कवियों में हिंदी की वृद्धि का एक कारण हुआ। अकबर के पीछे शाहजहाँ के काल तक उत्तरी भारत में पूर्ण शांति रही। इस कारण भी कविता की इस समय बहुत अच्छी उन्नति हुई। हिंदुओं और मुसलमानों का विशेष संघट्ट भी हो रहा था, सो जिस प्रकार आसुरी भाषा और देश-भाषा के मेल से पाली की उत्पत्ति पूर्व काल में हुई थी, उसी प्रकार फारसी और हिंदी के सम्मिश्रण से एक नई भाषा दृढ़ हो रही थी, जिसने समय पाकर उर्दू का रूप ग्रहण किया, और जो अब फ़ारसी-अक्षरों में लिखी जाने तथा अरबी-फ़ारसी-शब्दों की प्रचुरता के कारण पुस्तकों में हिंदी से एक पृथक् भाषा-सी देख पड़ती है, यद्यपि साधारण जन-समूह के बोलचाल में कोई ऐसा भेद नहीं है। यह भाषा बहुत दिनों से बन रही थी और अकबर-काल में इसकी कुछ उन्नति हुई तथा कविता भी विशेष होने लगी। स्वयं अकबर ने इसमें कुछ रचना की और खानखाना रहीम ने भी समादर किया। इसी संघट्ट के कारण हिंदी में फारसी के शब्द तथा भाव भी इस काल बहुतायत से आ गए, जिनसे हिंदी को एक नया चमत्कार प्राप्त हुआ। हिंदी का ऐसा ही प्रभाव विदेशी भाषा और कविता पर भी आ पड़ा।

ख़ानखाना (रहीम) ने फ़ारसी-मिश्रित, उर्दू-मिश्रित, व्रज, ग्रामीण भाषा आदि सभी प्रकार की हिंदी में इस समय कविता की, तथा बीरबर (ब्रह्म)

ने व्रजभाषा में प्रशंसनीय छंद रचे। अकबर ने उपर्युक्त भाषा के अतिरिक्त व्रजभाषा में भी रचना की।

उदाहरण—

> साहि अकब्बर बाल की बाँह अचिंत गही चलि भीतर भौने ;
> सुंदरि द्वारहि दीठि लगाय कै भागिवे को भ्रम पावत गौने।
> चौंकत-सी चहुँओर विलोकत संक सकोच रही मुख मौने,
> यों छवि नैन छबीली के छाजत मानो बिछोह परे मृग-छौने।

अन्य उन्नतियों के साथ अकबर के काल में हिंदी को यह हानि भी पहुँची कि इसका प्रचार सरकारी दफ्तरों से उठ गया। सं० ७६९ में सिंध जीतने पर अरबों ने पहले मंत्री को राजकाज सौंप कार्यालय में ब्राह्मण कर्मचारी नियत किए। उसमें हिंदी का चलन बना रहा। महमूद ग़ज़नवी तथा मोहम्मद गोरी ने भी हिसाब तथा दफ्तर का काम हिंदी और हिंदुओं में रहने दिया। यही प्रणाली अकबर-काल तक चली आई थी। अब महाराजा टोडरमल को यह समझ पड़ा कि दफ़्तरों में हिंदी-प्रचार के कारण हिंदू लोग फ़ारसी कम पढ़ते हैं, और इस प्रकार उन्हें सरकारी पद बहुतायत से नहीं मिलते। इस विचार से उन्होंने हिंदी उठाकर फारसी चलाई, जिससे हिंदुओं को भी वह विद्या पढ़नी पड़ी। इस प्रकार साधारण जन-समुदाय में फ़ारसी के नूतन भाव फैले, जिनका प्रभाव हिंदी-कविता पर भी शृंगार एवं विविध विषय-वर्द्धन में पड़ा। अत॰ टोडरमल की इस आज्ञा ने हिंदी-प्रचार को हानि पहुँचाई, परंतु साहित्य-विषय प्रस्फुरण को इससे भी कुछ लाभ ही हुआ। स० १६४० से १७७२ तक समस्त मुसलमानी राज्यों से हिंदी निकल अवश्य गई। फिर भी अकबर का छ साल का पौत्र खुसरो हिंदी पढ़ने बिठलाया गया। भूदत्त ब्राह्मण उसे हिंदी पढ़ाता था।

अकबर और जहाँगीर के समय मोटे प्रकार से तुलसी-काल से मिलते हैं। तुलसी-काल हमने १६३१ से १६८० तक माना है। यद्यपि सूरदास १६२० में स्वर्गवासी हो चुके थे, तथापि अष्टछापवाले कवियों ने उसके पीछे तक उसी प्रकार की कविता की। अत मोटे प्रकार से बहुत करके १६३० तक सौर कविता का ढंग स्थिर रहा।

इस समय मुसलमानों के प्रेम-पूर्ण संसर्ग से हिंदी को,नए शब्दों और भावों से एक नवीन ज्योति मिल रही, थी, जो हिंदी-साहित्य की भाव-व्यंजना को व्यापक बना रही थी। अकबरी दरबार का प्रारंभ सं० १६१३ में हुआ था और चलता वह १६६२ तक रहा। अतएव उसके प्रभाव का आरंभ सौर काल में हुआ, और विदग्धता तुलसी-काल में। अकबर ने महाराजा बीरबल को कविराय की उपाधि दी तथा शाहजहाँ ने नरहरि और हरनाथ को महापात्र की। सौर काल में राजकीय दशा निम्न-लिखित थी—

लोदी - वंश—सं० १५०७ से १५८३ तक।
मोगल पहले—सं० १५८३ से १५९७ तक।
सूर - वंश—सं० १५९७ से १६१२ तक।
मोगल दूसरी बार—सं० १६१२ से १९१५ तक।

शेष रियासतों के कथन गत अध्याय में हो चुके हैं। सौर काल लोदी-वंश के समय प्रारंभ हुआ। उस काल भारत में मुसलमानी शक्ति बल-हीन थी। पहले बार मोगल केवल १४ वर्ष राज्य कर सके। सूर-वंश ने हिंदुओं के साथ अच्छा व्यवहार किया, और हम उसके लिये अपने हेमू बक्काल को अकबर से लड़कर प्राण देते देखते हैं। सूरों के पूर्व मुसलमान सम्राटों के लिये कोई प्रधान हिंदू न कभी लड़ा, न मरा। कोई भी मुसलमानी वंश बना या मिटा, इससे हिंदुओं को कोई प्रयोजन न था।

उनके विजयी और विजित दोनो समान शत्रु थे। सौर काल में मुसलमानों की प्राचीन नीति १५९७ तक चलती रही। अनंतर शेरशाह सूर ने उसे बदला तथा हिंदुओं को बड़े पदों पर भी प्रतिष्ठित किया। जब तक इस नीति का कोई प्रभाव देश पर पड़े, तब तक यह वंश ही राज्य-च्युत हो गया, किंतु अकबर ने सोच-समझकर शांति में भी हिंदुओं से धार्मिक युद्ध की प्रणाली बदल दी। उन्हें सबसे बड़ा प्रश्न यही देख पड़ा कि साढ़े तीन सौ वर्षों में कोई मुसलमान-वंश इतना सबल क्यों न हो सका कि उसका साम्राज्य थोड़े से ही धक्के से पत्ते की भाँति न उलट जाता। अकबर की कुशाग्र बुद्धि ने इस प्रश्न का उत्तर तुरंत ही दे दिया। वह समझ गए कि हिंदुओं से यह धार्मिक

संग्राम ही मुसलमानी साम्राज्य की बल हीनता का कारण था। उन्होंने तुरत इसे उठाकर हिंदुओं से प्रेमपूर्ण व्यवहार किया, और वैवाहिक संबंध तक खोला। इस लंबे समर का अंत हुआ। धार्मिक झगड़ा गया। हिंदू-समाज विजयी हुआ। मोगल-बल बढ़ा, और देश में स्वराज्य-सा आ गया। बड़े-बड़े हिंदू प्रांतीय शासक सेनापति एवं अन्य उच्च अधिकारी होने लगे। उनका मुसलमानों से भेद बढ़ा। देश में शांति विराजी। साहित्य की अभूतपूर्व अभिवृद्धि हुई, तथा सभी प्रकार की उन्नति दृष्टिगत होने लगी। हिंदुओं ने अकबर को हिंदूपति के पवित्र नाम तक से पुकारा। अब सौर काल के कवियों में से कुछ के मुख्य एवं इतरों के चक्र द्वारा वर्णन किए जाते हैं। कुछ चक्रासीन कवि भी उत्कृष्ट हैं, किंतु उनके ग्रंथ हमारे द्वारा भली भाँति अधीत न होने से समुचित ज्ञानाभाव से भी उन्हें चक्र ही में स्थान मिल गया है। चक्र में स्थित कवियों की दशा इसी प्रकार आगे के अध्यायों में भी होगी।

सूरदास—अष्टछाप में गए (न० १२६)।

नाम—(१३४) ईश्वर सूरि जैन।

ग्रंथ—ललितांग-चरित्र।

रचनाकाल—१५६१।

विवरण—शांति सूरि के शिष्य थे।

उदाहरण—

सालंकार समत्थं सच्छंद सरस सुगुण संजुत्तं;
ललि यंग कुम चरियं ललणा ललि यव निसुणेह।
महि महति मालव देश, धण कणय लच्छि निवेस,
तिंह नयर माडव दुग्ग, अहि नवउ जाणकि सग्ग।
नव रस विलास उलोल; नवगाह गेय कलोल,
निज बुद्धि बहुअ विनाणि; गुरु धम्म फल यहु जाणि।
इय पुण्य चरिय प्रबंध; ललि अंग नृप संबंध।
पहु पास चरियह चित्त; उद्धरिय एह चरित्त।

(१३५) चंद-नामक किसी कवि ने सं० १५६३ में हितोपदेश ग्रंथ बनाया ।

उदाहरण—

सवत पद्रह सै जव भयऊ, तिरसठि बरस अधिक चलि गयऊ।
फागुन मास पाख उजियारा, सुभ नछत्र सातैं शुभ बारा।
तेहि दिन कवि आरंभेऊ चंद चतुर मन लाय;
हित उपदेश सुनत सुख दुख वैराग्य नसाय।

(१३६) गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी

रचनाकाल—१५६४ के लगभग ।

यह महाराज देवबद (अथवा देवनगर) सहारनपुर के निवासी गौड ब्राह्मण व्यास मिश्र के पुत्र थे। इनके पिता का उपनाम हरिराम मिश्र तथा माता का नाम तारारानी था। हरिवंशजी का जन्म मिती बैसाख-बदी ११ संवत् १५३० का था। इनके रुक्मिणी नाम्नी स्त्री से तीन पुत्र और एक कन्या हुई। फिर यह महाशय वृंदावन पहुँचे, और वहाँ कातिक-शुक्ल तेरसि संवत् १५६५ को इन्होंने श्रीराधावल्लभजी की मूर्ति स्थापित की। इन संवतों का हाल इनके संप्रदाय में विदित है। इनके शिष्यों में ध्रुवदास के होने से हमें इनके समय के विषय में प्रथम भ्रम हो गया था, पर पीछे जान पड़ा कि संवत् १६४० के लगभग जन्म पानेवाले ध्रुवदास इनके तीसरे पुत्र गोपीनाथ के शिष्य स्वप्न द्वारा हुए थे। हित-जी ने स्वप्न में राधाजी से मंत्र पाया, और तब से आप उन्हीं के शिष्य हो गए।

यह महाशय अनन्य (राधावल्लभीय)-संप्रदाय के संस्थापक थे। यह मत परम प्रसिद्ध है, और बहुत मनुष्य अब भी इस संप्रदाय में हैं। कितने ही बड़े-बड़े भक्त इनके शिष्य थे। इनके वंशधरों को एक भारी गद्दी है, और वल्लभ-संतानों की भाँति वे भी पूजे जाते हैं। इनके शिष्य सेवकजू अच्छे कवि थे। स्वामीजी के कुल चार पुत्र थे। यह महाशय बड़े भक्त थे, और इनका जीवन बड़ा ही पुनीत था। यह संस्कृत और भाषा के कवि थे। संस्कृत में इन्होंने राधा-सुधानिधि-नामक २७० श्लोकों का ग्रंथ बनाया। भाषा में आपने (८ पद कहे,) जिनके संग्रह का नाम शिवसिंहजी ने 'हित चौरासी धाम' लिखा

है, और हमारे पास वही 'प्रेमलता'-नामक पुस्तक के नाम से वर्तमान है। बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है कि उन्होंने इन ८४ पदों के अतिरिक्त कुछ और भी इनके पद देखे हैं। यद्यपि यह महाशय संस्कृत के भी कवि थे, तथापि इनकी भाषा-कविता में अव्यवहृत प्राय एक भी संस्कृत का पद अथवा श्रुति-कटु शब्द नहीं आने पाया है। इनकी भाषा बड़ी ही मृदुल और सुष्टु है। इन्होंने अनु-प्रास, यमकादि का आदर नहीं किया है। फिर भी इनकी भाषा परम मनोहर है। गोस्वामीजी ने इन थोड़े-से पदों में ही अपनी श्रेष्ठ कवित्व-शक्ति का परिचय दे दिया है। इन्होंने संगीत और काव्य, दोनो का अच्छा स्वरूप दिखाया है। इन महाराज द्वारा नख-शिख का रूप कहीं-कहीं एक-ही-एक पद में विलक्षण प्रकार से दिखा दिया गया है, और उपमाएँ भी अच्छी-अच्छी दी गई हैं। गोस्वमीजी का रासवर्णन बड़ा ही विशाद है। इनकी रचना में शृंगार को मात्रा उचित से अधिक बढ़ी हुई है। प्रकृष्ट पदों की मात्रा इनकी कविता में विशेष है, और वह बहुत आदरणीय है। इनके पद बड़े गंभीर हैं। उनमें मधुर भाव-व्यजना, धारा-प्रवाह, भावुकता, कल्पना की कोमलता, मार्मिकता, अर्थव्यक्त, सच्ची अनुभूति आदि देखने में आती हैं। हम इन्हें सेनापति की श्रेणी में रखते हैं। यह महाशय काव्य-रसिकता के कारण काव्य नहीं करते थे, वरन् इन्होंने भक्तिप्रचुरता के कारण ऐसा किया है। कविता इनके पवित्र जीवन का एक अंश-मात्र थी, और यह इसी कारण कविता करते थे कि वह इनकी भक्ति-मार्ग में सहायक थी। इन महाशय ने भक्तिप्रगाढ़ता के कारण ही श्रीकृष्णचंद्र के विषय में शृंगार-कविता भी की है। खोज में इनका एक ग्रंथ स्फुट नाम का मिला है। इनकी कविता से कुछ पद नीचे लिखे जाते हैं —

राग देवगंधार

व्रज-नव-तरुनि-कदंब-मुकुट-मनि स्यामा आजु बनी ;
नख-सिख लौं अँग-अंग माधुरी मोहे स्याम धनी।
यों राजत कबरी गूँथित कच कनक-कंज-वदनी ;
चिकुर चंद्रिकनि बीच अरध बिधु मानहुँ ग्रसत फ़नी।

सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी,
भृकुटि काम-कोदंड नैन सर कज्जल रेख अनी।
तरल तिलक ताटंक गंड पर नासा जलज मनी,
दसन कुंद सरसाधर-पल्लव पीतम मन-समनी।
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि साँवल बिंदु कनी,
पीतम प्रान-रतन-संपुट कुच कंचुकि कसित तनी।
भुज मृनाल बल हरत बलय-जुत परस सरस स्रवनी,
स्याम सीस तरु मनु मिड़वारी रची रुचिर रवनी।
नाभि गँभीर मीन मोहन मन खेलन कौं ह्रदिनी,
कृस कटि पृथु नितंब किंकिनि ब्रत कदलि-खंभ जघनी।
पद-अंबुज जावक जुत भूषन पीतम उर अवनी।
नव-नव भाय बिलोभ भाम इभ विहरत वर करनी।
हितहरिबंस प्रसंसि स्यामा कीरति बिसद घनी,
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर बिस्व-दुरित-दवनी।

चलहि किन मानिनि कुंज-कुटीर,
तो बिन कुँवर कोटि बनिता-जुत मथत मदन की पीर।
गदगद सुर बिरहाकुल पुलकित स्रवत विलोचन नीर,
क्वासि क्वासि वृषभानुनंदिनी बिलपत विपिन अधीर।
बसी बिसिख व्याल मालावलि पंचानन पिक कीर,
मलयज गरल हुतासन मारुत साखामृग रिपुचीर।
हितहरिबंस परम कोमल चित चपल चली पिय तीर,
सुनि भय भीत बज्र को पिंजर सुरत सूर रनवीर।

आजु बन नीको रास बनायो,
पुलिन पवित्र सुभग जमुना-तट मोहन बेनु बजायो।
कल-कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि खग-मृग सचुपायो;
जुवतिनु मंडल मध्य स्यामघन सारँग राग जमायो।
ताल मृदंग उपंग मुरंज डफ मिलि रस सिंधु बढ़ायो,

बिविध बिसद वृषभानुनंदिनी अंग सुगंध दिखायो।
अभिनय-निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनंग नचायो,
तातायेइ तायेइ धरि नवगति पति ब्रजराज रिझायो।
सकल उदार नृपति, चूड़ामनि सुख-वारिद बरखायो,
परिरंभन चुंबन आलिंगन उचित जुवति जन पायो,
बरखत कुसुम मुदित नभ-नायक इंद्र निसान बजायो,
हितहरिवंस रसिक राधापति जस-बितान जग छायो।

स्वामी हितहरिवंशजी की जीवन-यात्रा प्राय ७९ वर्ष की अवस्था में समाप्त हुई। इनके मतानुयायियों में सैकड़ों अच्छे कवि और भक्त हो गए हैं। जैसे स्वामी वल्लभाचार्य के भक्तों में सैकड़ों कवि होने से वह महाशय हिंदी के परमोपकारक हैं, उसी भाँति श्रीहितहरिवंशजी का भी कविता पर बड़ा भारी ऋण है, क्योंकि इन्होंने स्वयं कविता की, और इनके शिष्यों ने भी ऐसाही किया। उनमें कितने ही सत्कवि थे। इनके बहुत-से शिष्य थे, और इनके सम्प्रदायवाले इन्हें श्रीकृष्ण की भाँति सदैव से मानते चले आते हैं। गोस्वामीजी का जीवन धन्य है।

नाम—(१३७) नरवाहनजी, भैगाँव-निवासी।
जन्म-काल—१५३० के लगभग। रचनाकाल—१५६५ के लगभग।
विवरण—तोष-श्रेणी। यह महाशय गोस्वामी श्रीहितहरिवंश के शिष्य थे।

नाम—(१३८) हितकृष्णचंद्र गोस्वामी।
ग्रंथ—(१) आशाशतक, (२) सारसंग्रह, (३) अर्थकौमुदी, (४) कर्णानंद, (५) राधानुनय-विनोद, (६) काव्य-अष्टपदी और (७) स्फुट पद।
जन्म-काल—१५४७। रचनाकाल—१५६७।
विवरण—गोस्वामी हितहरिवंश के द्वितीय पुत्र थे।

नाम—(१३९) श्रीगोपीनाथ प्रभु। ग्रंथ—स्फुट पद।
जन्म-काल—१५४८। रचनाकाल—१५६८।

विवरण—गोस्वामी हितहरिवंशजी के तृतीय पुत्र तथा ध्रुवदासजी के गुरु थे।

नाम—(१४०) बीठलदासजी। जन्म-काल—१५४० के लगभग।

रचनाकाल—१५६८। ग्रंथ—स्फुट पद।

विवरण—हिताचार्य महाप्रभु के शिष्य थे।

नाम—(१४१) अजबेस भट्ट। रचनाकाल—१५६९।

विवरण—जोधपुर या रीवाँ के राजा वीरभानु के आश्रित थे। तोष-श्रेणी के कवि। इन्होंने अकबर की बाल्यावस्था का वर्णन किया है।

नाम—(१४२) मेहेराज केशव, लुआणा नवानगर (गुजरात प्रांत)।

रचनाकाल—लगभग १५६९। ग्रंथ—स्फुट कविताएँ।

विवरण—महाशय भालेराव ने इनका काल सौराष्ट्र के इतिहास-लेखक श्रीयुत मोडक के कथनानुसार अपने लेख 'गुजरात का हिंदी-साहित्य' में १६ वीं शताब्दी लिखा है। इनकी कविता ब्रजभाषा छंदों में कही जाती है, किंतु वह हमारे देखने में नहीं आई है।

कृष्णदास—अष्टछाप में गए (नं० १२७)।

(१४३) मंझन-कृत मधुमालती का कथन जायजी ने किया है, जिससे इसका उनसे पहले होना सिद्ध है। मझन की कल्पना और वर्णन रोचक हैं। इनका समय १५७५ या १५९७ से पूर्व बैठता है। आपने उपनायक तथा उप-नायिका भी रखकर आदर्श चित्रण के सहारे कथा को गौरव दिया है।

उदाहरण—

देखत ही पहिंचनेउँ तोही, यही रूप जेहिं छँदरेउ मोही।
यही रूप बुत अहै छपाना, यही रूप रब सृष्टि समाना।
यही रूप सकती औ सीऊ, यही रूप त्रिभुवन कर जीऊ।
यही रूप प्रकटे वहु भेसा, यही रूप जग रक नरेसा।

(१४४) मलिक मोहम्मद जायसी

इन्होंने अखरावट और पद्मावत-नामक दो ग्रंथ बनाए, जो हमारे पास प्रस्तुत हैं। अखरावट में सन्-सवत् का कुछ ब्योरा नहीं दिया हुआ है, परंतु

पद्मावत में यह लिखा है कि वह सन् ९२७ हिजरी में आरंभ की गई, जो समय संवत् १५७५ में पड़ता है, परंतु उस काल के बादशाह का नाम इन्होंने यों कहा है कि "सेरसाह दिल्ली सुलतानू, चारिउ ओर तपा जस-भानू।" शेरशाह ने हिंदुओं को भी राज्य में उच्च पद दिए, सो वह एक लोक-प्रिय शासक था भी। बादशाह के नाम लिखने की यह आवश्यकता पड़ी कि फ़ारसी-नियमानुसार ग्रंथ बनाने में ख़ुदा, रसूल और ख़लीफ़ाओं की स्तुति करके उस समय के बादशाह की भी तारीफ़ की जाती है। शेरशाह संवत् १५९७ में गद्दी पर बैठा था, और संवत् १६०० में उसका देहांत हुआ। इस हिसाब से २२-२३ साल का गड़बड़ दीखता है। जान पड़ता है, जायसी ने कथा बनाना संवत् १५७५ में प्रारंभ कर दिया था, और फिर ग्रंथ समाप्त हो जाने पर शेरशाह के समय में उसकी वंदना बनाई। उसके प्रभाव के आधिक्य से जान पड़ता है, यह ग्रंथ शेरशाह के अंतिम संवत् में समाप्त हुआ। खोज सन् १९०३ से पद्मावत का रचना-काल १५९५ आता है। कदाचित् इस अंतर का कारण सन् ९२७ हिजरी-विषयक पाठ-भेद है। हमारी प्रति में रचना-काल सन् ९२७ हिजरी है। कुछ और प्रतियों में भी यही बात है। जायसी की प्राचीन प्रतियाँ बहुधा उर्दू में मिलती थीं। कहा जाता है, उर्दू लेख के कारण सैंतालीस का सत्ताईस पढ़ लिया गया होगा। सत्ताईस तथा सैंतालीस की उर्दू-लिखावटों में बड़ा भेद है, सो यह युक्ति समझ में कम बैठती है, विशेषतया इस कारण से कि किसी भी प्राचीन प्रति में सैंतालीस का होना कहा भी नहीं जाता। जो हो, इस झमेले से भी समय में २० वर्ष से अधिक का भ्रम भी नहीं पड़ता। पद्मावत में लिखा है कि "जायस नगर धरम अस्थानू, तहाँ आय कवि कीन्ह बखानू।" जायस अवध-देश के जिला रायबरेली का एक प्रसिद्ध क़स्बा और रेलवे-स्टेशन है। इसमें मुसलमान बहुतायत से रहते हैं। पूर्वोक्त चौपाई से विदित होता है कि जायस इस कवि का जन्म-स्थान न था, किंतु निवास स्थान था। महामहोपाध्याय प० सुधाकरजी द्विवेदी ने इनके ग्रंथों पर विशेषतया श्रम किया, और पद्मावत को टिप्पणी-सहित प्रकाशित किया। आपने लिखा है कि बहुत लोग जायसी का जन्म-स्थान ग़ाज़ीपूर मानते हैं। जायसी ने अपने को

काना लिखा है, और यूसुफ़ मलिक, सालार कादिम, मियाँ सलोने और शेख़ बड़े नामक चार व्यक्तियों को मित्र और सैयद अशरफ़ को पीर बताया है। यह भी लिखा है कि लोग कुरूप होने के कारण इनको हँसा करते थे। इन्होंने चारो खलीफ़ाओं की वंदना की है। इससे जान पड़ता है कि ये सुन्नी थे। जायसी ने पद्मावत की रचना जायस-नगर में की। सुधाकरजी ने लिखा है कि इनके आशीर्वाद से राजा अमेठी के पुत्र उत्पन्न हुआ था। इस कारण वह इन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। अत जायसी के मरने पर गढ़अमेठी के फाटक के सामने इनकी क़ब्र बनवाई गई। इनका नाम मोहम्मद था, मलिक पद इनके नाम के आगे सम्मान-सूचक लगा दिया गया है, और जायस में रहने के कारण ये जायसी कहलाने लगे। इस प्रकार इनका पूरा नाम मलिक मोहम्मद जायसी पड़ गया। आप बहुश्रुत और बहुज्ञ थे। हठयोग, वेदांत, रसायन, गोरख-पंथ तथा सूफ़ी-मत से इन्हें परिचय था।

बहुत लोगों का मत है कि यह महाशय वर्तमान भाषा के वस्तुत. प्रथम कवि हैं। हमारा इस मत से विरोध है पद्मावत बनने के १५ वर्ष पूर्व संवत् १५५८ में दादर-ग्राम-निवासी हरप्रसाद-पुरुषोत्तम ने 'धर्मास्वमेध'-नामक बड़ा ग्रथ बनाया। गोस्वामी सूरदासजी का जन्म-सवत् १५४० के लगभग हुआ था, और सवत् १६०७ में उन्होंने अपना अ तिम ग्रथ साहित्यलहरी सगृहीत किया। इसके प्रथम एक लक्ष पदों का अपना सूरसागर-नामक ग्रंथ वह बना चुके थे। ६७ वर्ष की अवस्था में उन्होंने सूरसारावली-नामक सूरसागर की सूची भी समाप्त कर दी थी। इन तीन ग्रंथों के निर्माण में कम-से-कम ४०-४५ साल अवश्य लगे होंगे। अत सूरदास की कविता का समय लगभग संवत् १५६० से सवत् १६२० तक होता है, और जायसी की कविता का समय संवत् १५७५ से १६०० तक का है। तब सूरदासजी कम-से-कम जायसी के समकालीन अव-श्य थे। इसके अतिरिक्त यह स्मरण रखना चाहिए कि जायसी के पहले बहुतेरे कवि हो गए थे, जिनमें से कितनों ही की भाषा वर्तमान हिंदी से जायसी की अपेक्षा अधिक मिलती है। जायसी की भाषा ग्रामीण होने के कारण भी बहुत लोगों ने इन्हें प्रथम कवि समझ रक्खा है। उनके विचार में सूरदास के समय

तक भाषा ने उन्नति की, और इसी कारण सूरदास तथा जायसी की भाषाओं में अंतर है। सन्-संवत् पर ध्यान देने से यह मत बिलकुल अशुद्ध ठहरेगा, क्योंकि यदि मान भी लेवें कि जायसी सूरदास से पहले के थे, तो भी भाषा दस-पाँच बरस में इतनी नहीं सुधर सकती, जितना अंतर कि इन दोनो कवियों की भाषाओं में है। यथार्थ बात यह है कि इन दोनो कवियों ने अपने-अपने निवास-स्थानों की भाषा में कविता की है, और सूर की भाषा बहुत उत्कृष्टतर है।

पद्मावत की कथा यह है कि सिंहल-द्वीप के राजा गंधर्वसेन के एक परम रूपवती कन्या हुई, जो लक्षण और नाम दोनो में पद्मिनी थी। उसके यहाँ हीरामणि-नामक एक बड़ा चतुर तोता था, जो किसी प्रकार से चित्तौर के महाराना रतनसेन के हाथ बिका। उसने रतन सेन से पद्मिनी के रूप की इतनी प्रशंसा की कि वह इसकी खोज में योगी बनकर सुए के साथ घर से निकल पड़ा। बड़ी कठिनता से राजा गंधर्वसेन ने पद्मिनी का विवाह रतनसेन के साथ किया। महाराना बहुत दिन तक सुख-पूर्वक चित्तौर में रहते रहे। अंत में पद्मिनी के रूप का वर्णन सुनकर अलाउद्दीन बादशाह उस पर मोहित हुआ। वह १२ वर्ष तक चित्तौर का घेरा किए रहा। पर दुर्ग विजय न कर सका, और न पद्मिनी ही को पा सका। केवल एक बेर दर्पण द्वारा शाह ने उसका स्वरूप देख पाया। अंत में छल से वह रतनसेन को बंदी करके दिल्ली ले गया। रानी पद्मिनी के संबंधी गोरा और बादल ने ससैन्य दिल्ली जाकर बड़ी चालाकी से राजा को छुड़ाकर चित्तौर पहुचा दिया, परंतु रास्ते में, बादशाह से युद्ध में, गोरा बड़ी वीरता-पूर्वक लड़कर मारा गया। तत्पश्चात् पद्मिमी के कारण रानाजी और राजा देवपाल से युद्ध हुआ, जिसमें राना और राजा दोनो मारे गए, और पद्मिनी पति के साथ सती हो गई। इसके पीछे बादशाह ने फिर चित्तौर घेरा, जिसमें बादल भी बड़ी शूरता से लड़कर मारा गया। पद्मावत में २९७ पृष्ठ हैं। इस ग्रंथ की कथा मन-गढ़त नहीं है, वरन् सिवा दो-एक छोटी-छोटी बातों के और सब इतिहास से मिलती है।

इस बृहद् ग्रंथ में स्तुति, राजा-रानी, नख-शिख, षट्ऋतु, बारहमासा, ज्योतिष, स्त्रियों की जाति, राग-रागिनी, रसोई, दुर्ग, फकीर, प्रेम, युद्ध दुख,

सुख, राजनीति, विवाह, बुढ़ापा, मृत्यु, समुद्र, राजमंदिर आदि सभी विषयों के वर्णन हैं, और प्रत्येक विषय को जायसी ने बढ़िया रीति से बड़े विस्तार-पूर्वक कहा है। इतने भिन्न-भिन्न विषयों को समुचित प्रकार से सफलता-पूर्वक कहना किसी साधारण कवि का काम नहीं है। महर्षि वाल्मीकि का यह ढंग था कि वह जिस विषय को लेते, उसे बहुत ही विस्तार-पूर्वक और यथातथ्य कहते थे। इस कारण उनकी कविता से तत्कालीन रहन-सहन का अच्छा पता लगता है। यही गुण कुछ-कुछ जायसी में भी वर्तमान है। सिवा स्वाभाविक कवियों के और किसी में यह गुण नहीं पाया जाता। इसके लिये यह आवश्यक है कि कवि अपने प्रत्येक विषय का पूर्ण ज्ञाता हो, और उससे सहृदयता भी रखता हो। जायसी ने रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अच्छी कही हैं, और अपने ग्रंथ में उचित स्थान पर सदुपदेश भी दिए हैं। इनकी कविता में उद्दंडता का भी अभाव नहीं है। इन्होंने स्तुति, नख-शिख, रसोई, युद्ध और प्रेमालाप के वर्णन विशेष सफलता से किए हैं। जायसी की कथा में सूफ़ी-रहस्यवाद के अद्वैत सिद्धांत भी मिले हुए हैं।

अखरावट में ३६ पृष्ठों द्वारा परमेश्वर की स्तुति और संसार की असारता कही गई है, तथा इसमें क से लेकर प्राय: सभी अक्षरों पर कविता की गई है, और हर एक वर्ण पर कई चौपाइयाँ दी गई हैं। यह ग्रंथ पद्मावत के पीछे बना होगा। इस बात का अनुमान इसके विषय से होता है। मालूम होता है, जिस समय इनकी पीर की भाँति पूजा होने लगी थी। उस समय यह बना। उदाहरणार्थ इनकी कविता के दोनो ग्रंथों से कुछ छंद नीचे लिखे जाते हैं—

वंदना

कीन्हेसि मानुस दिहिसि बड़ाई, कीन्हेसि अन्न भुगुति तहँ पाई।
कीन्हेसि राजा भोजहिं राजू, कीन्हेसि हस्थि घोर तहँ साजू।
कीन्हेसि तेहि कहँ बहुत बिरासू, कीन्हेसि कोइ ठाकुर कोई दासू।
कीन्हेसि दरबि गरबु जेहि होई, कीन्हेसि लोभु अघाइ न कोई।
कीन्हेसि जियन सदा सबु चाहा, कीन्हेसि मीचु न कोई रहा।

कीन्हेसि सुख अरु कोटि अनदू , कीन्हेसि दुख चिंता औ' ददू ।
कीन्हेसि कोइ भिखारि कोइ धनी , कीन्हेसि सँपति बिपति पुनि घनी ।
कीन्हेसि राकस भूत परेता , कीन्हेसि भूकस देव दएता ।
कीन्हेसि वनखँड औ' जड़ मूरी , कीन्हेसि तरवर तार खजूरी ।
कीन्हेसि सात समुदर पारा , कीन्हेसि मेरु खखड पहारा ।

कीन्हेसि कोइ निमरोसी कीन्हेसि कोइ बरियार ;
छारहि वे सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार ।

दिक्शूल-विचार

आदिक सुक पच्छिम दिसि राहू , बीफै दखिन लंक दिसि दाहू ।
सोम सनीचर पुरुब न चालू , मंगर बुध उत्तर दिसि-कालू ।

× × × ×

परी रेनु होइ रविहि गरासा , मानुख देखि जेइँ फिरि वासा ।
भुइँ उडि अतरिच्छ मृत मंडा , ऊपर होइ छावा महि मंडा ।
डोलइ गगन इंद्र डर काँपा , बासुकि जाय पतारहि चाँपा ।
मेरु धसमसइ समुद सुखाई ; बनखँड टूटि खेह मिलि जाई ।

नख-शिख

कहउँ लिलार दुइज की जोती , दुइजइ जोति कहाँ जग ओती ।
सहस किरन जो सुरज दिपाए , देखि लिलार बहउ छिपि जाए ।
का सिर बरनउँ दिपइ मयंकू , चाँदु कलंकी वह निकलंकू ।
आव चाँदु पुनि राहु गरासा , वह बिन राहु सदा परगासा ।
तिहि लिलार पर तिलकु बइठा , दुइज पास मानहु धुव दीठा ।
कनक पाट जनु बइठेउ राजा , सब्रइ सिंगार अस्त्र लइ साजा ।

युद्ध-वर्णन

गोरइ दीख साथु सब जूझा , अपन काल नेरे भा बूझा ।
कोपि सिंह सामुह रन मेला , लाखन सन ना मरइ अकेला ।
लियउ हाँकि हस्तिन कइ ठटा , जइसइ सिंघ बिदारइ घटा ।
जेइ सिर देइ कोपि तरवारू , सइँ घोड़े टूटई असवारू ।

टूटि कध सिर परइँ निरारी, माठ मँजीठ जानु रन ढारी।
सबइ कटक मिलि गोरइ छेंका, गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका।
जेइँ दिसि उठइ सोइ जनु खावा, पलटि सिंघ तेई ठाँउ न जावा।
तुरक बोलावइँ बोलइ नाहीँ, गोरइ मीचु धरी मन माहीँ।
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा, मुए पीछ्र कोऊ घिसि आवा।
कहि अस कोपि सिंघु अस धावा, सुरजा सारदूल पहँ आवा।

अखरावट

था थापहु बहु ग्यान विचारू, जेहि महँ सब समाय ससारू।
जइसे अहइ पिरथिमी सगरी, तइसहि जानहु काया मगरी।
तन महँ पिर अउ वेदन पूरी, तन महँ बरनउ. औखद मूरी।
तन महँ बिख औ अमरितु बसई, जानइ सोइ जु कसौटी कसई।
का भा पढ़े-गुने अउ लीखे, करनी साथ किए अउ सीखे।
आाउइ खोई उहइ जो पावा, सो बीरउ मन माइ जनावा।
जो वहि हेरत जाय हिराई, सो पावइ अमिरितु फल खाई।

जायसी की भाषा कुछ तत्सम शब्द-युक्त ठेठ ग्रामीण पूर्वी हिंदी है, परंतु इसमें इस कवि ने "उकुति विशेषो कव्वो भाषा जाहो साहो" की यथार्थता सिद्ध कर दी है। इससे यह विदित होता है कि स्वाभाविक कवि भाषा का मोहताज नहीं, और वह किसी भाषा में मन-मोहिनी कविता कर सकता है। जायसी की भाषा गोस्वामी तुलसीदास से बहुत कुछ मिलती है, गोस्वामीजी ने केवल अपनी अवधी में बहुत-से तत्सम शब्द मिलाकर उसे भारी दीप्ति दे दी है। जायसी ने दोहा-चौपाइयों मे काव्य-रीति पर कथा कही है। इनका काव्य तोष कवि की श्रेणी का है। जायसी ने पद्मावत की वंदना और समस्त अखरावट में मुसलमानी धर्मानुसार वर्णन किया है, और हिंदुओं के किसी देवी देवता का नाम नहीं लिया। परतु उन्होंने मुसलमानों की भाँति हिंदू-धर्म या रस्म-रिवाजों पर कहीं भी अश्रद्धा नहीं प्रकट की। कथा-वर्णन में से उचित स्थलों पर बड़ी श्रद्धा के साथ हिंदू-देवतों का वर्णन किया है। मुसलमानों और राजा के युद्ध तथा अन्य. स्थानों पर उचित रीति पर राजा या बादशाह

की यथोचित स्तुति या निंदा की है। इनकी सहानुभूति राना ही की ओर रही है, क्योंकि न्याय उन्हीं की तरफ़ था। इस बात से इनकी महानुभावता का परिचय मिलता है। इन्होंने अपनी समस्त कविता में ऐसा कोई भी फ़ारसी-शब्द व्यवहृत नहीं किया है, जो हिंदी में प्रचलित न हो। इनकी वंदना बड़ी ही उत्कृष्ट है।

जायसी की भाषा सुव्यवस्थित, सशक्त, स्वच्छ और प्रसाद-गुणयुक्त है। कल्पना उच्च श्रेणी की है, और भाव-व्यंजना में स्वाभाविकता है। उस काल हिंदू-मुसलमानों में मेल आवश्यक था। इसी बात पर प्रयत्न करके जायसी प्रतिनिधि कवि हुए हैं। पद्मावत में सच्ची अनुभूति के उदाहरण मिलते हैं, और लाक्षणिक मूर्तिमत्ताभी देखने में आती है। रचना में मौलिकता लाकर आपने अच्छा प्रकृति-विश्लेषण किया है। कला-पक्ष पर विशेष ध्यान न देकर जायसी ने हृदय-पक्ष पर परिश्रम किया है। इनमें मानुष जीवन के विश्रांति की छाया देख पड़ती है। प्रबंध-कौशल, तथ्य निरूपण, शांति और सुषमा के बहुत उदाहरण मिलते हैं। हास्य विनोद है और चेष्टाओं के मनोहर चित्रण भी। रचना में रस छलकता है। वियोग-वेदना की पीर भी देख पड़ती है। उच्च आदर्श खूब पाए जाते हैं। गोरा-बादल की राजभक्ति से भली शिक्षा मिलती है। कथा-भर में कल्पना और इतिहास दोनो का अच्छा ही मिश्रण है।

कुतबनशेख के पीछे जायसी ने ही पद्मावत द्वारा सूफ़ी-वादात्मक रहस्यवाद-पूर्ण प्रेम-कहानी कही। सूफ़ी-मत मनुष्य में नफ़स (इंद्रिय), रूह (आत्मा), क़ल्ब (हृदय) और बुद्धि (अक़्ल) मानता है। नफ़स का दमन श्रेय है। क़ल्ब और रूह द्वारा साधन का कार्य किया जाता है। क़ल्ब पर सभी वस्तुओं का प्रतिबिंब पड़कर उनका ज्ञान होता है। बुद्धि ज्ञान की मुख्य साधन करनेवाली है। सूफ़ी लोग चार जगत् भी मानते हैं, अर्थात् आलमे-नासूत (भौतिक जगत्), आलमे-मलकूत या अरवाह (चित् जगत्), आलमे-जबरूत (आनंदलोक), आलमे-लाहूत (सत्ससार या ब्रह्मलोक)। क़ल्बवाला सिद्धांत हमारे यहाँ के बिंब-प्रतिबिंब से मिलता है। अरब के विद्वान् इब्न ने आत्मा और परमात्मा को ब्रह्म की सत्ता के दो पटल माने हैं। पहले कथात्मक

रहस्यवादी मुख्य कवि कुतबनशेख़ (सं० १५६०) थे, दूसरे जायसी। इन्होंने आध्यात्मिक रहस्यवाद कहा है, जिसमें कथा चलती तो लोक-पक्ष को लिए हुए है, किंतु लोकोत्तर आध्यात्मिक रहस्य भी व्यंजित रहते हैं। फारसी में मसनवी भी इसी ढंग पर चलती है। मंझन का कथन जायसी ने किया है। मंझन ने मधुमालती की प्रेम-कथा में नायक-नायिका के साथ उपनायक तथा उपनायिका को भी रक्खा है। इस प्रकार आदर्शवाद भी यहाँ आ गया है। इसकी रचना स० १५५९ से ९५ तक कभी हुई होगी। उसमान कवि (न० १८७) ने सं० १६७० में चित्रावली बनाई। इन्होंने सूफ़ी-रहस्यवाद के साथ अपने ग्रथ में पौराणिक पुट भी रक्खा है। शेख नबी ने ज्ञानदीप स० १६७५ में कहा। कासिम शाह ने सं० १७८८ के लगभग हंसजवाहिर बनाया। नूरमोहम्मद ने सं० १८०१ में इंद्रावती नाम्नी बढ़िया साहित्य-पूर्ण कथा कही। ये सारी कथाएँ सूफी-रहस्य-वादात्मिका हैं।

इसी प्रकार की कथाएँ, जो हिंदू-कवियों ने कहीं, उनमें दामोकृत लक्ष्मण-सेन पद्मावती (सं० १५१६), पुहकर-कृत रसरतन काव्य (स० १६७३), काशीराम-कृत कनकमंजरी (स० १७१५), हरसेवक मिश्र-कृत कामरूप की कथा प्रेम-पयोनिधि (स० १९१२) आदि गिनाई गई हैं। इनमें सीधा-सादा प्रेम-मार्ग है, किंतु रहस्यवाद नहीं।

सूफ़ियों का परमेश्वर निर्गुण-निराकार होकर भी अनंत प्रेम का भांडार है। धार्मिक प्रतिबंध के कारण सूफी-कवियों ने रहस्य-वादात्मक कल्पित कथाओं द्वारा ईश्वरीय प्रेम नए प्रकार से व्यंजित किया। उनके कथानक हिंदू-समाज से सहिष्णुता रखते हैं, और बहुधा उसी पर अवलंबित हैं। इतने पर भी भाषा-शैथिल्य, साहित्यिक उच्चता की कमी खोदाबाद के अत्याचारों से तत्कालीन मुसलमानों के प्रति हिंदू-द्वेष रहस्यवाद की गूढ़ता, लोगों का साधारणतया उस पर ध्यान न जाना एवं पौराणिक सिद्धांतों की भारी लोक-प्रियता के कारण मुसलमान रहस्यवादी कवियों का हिंदू जनता पर कोई कहने योग्य भाव न पड़ा। उधर हिंदुओं के प्रति बहुत बढ़ी हुई सहानुभूति एवं हिंदी-

रचना होने के कारण इसे मुसलमानों ने भी न अपनाया। अतएव यह उच्च सिद्धांत-गर्भित कुछ अंशों में श्रेष्ठ कविता संसार में उचित मान न पा सकी।

(१४५) छीहल कवि ने संवत् १५७५ में पंचसहेली-नामक एक पुस्तक बनाई, जिसमें पाँच अबलाओं की विरह-वेदना का वर्णन हुआ है, और फिर उनके संयोग का भी कथन है। इनकी भाषा राजपूतानी पुराने ढर्रे की है, और इनकी कविता में छंदोभंग भी है। इनकी रचना से जान पड़ता है कि यह मारवाड़ की तरफ के रहनेवाले थे, क्योंकि इन्होंने तालाबों इत्यादि का वर्णन बड़े प्रेम से किया है।

उदाहरण—

देख्या नगर सोहावना अधिक सुचंगा थानु,
नाउँ चँदेरी परगटा जनु सुरलोक समानु।
ठाईं-ठाईं मंदिर सित्ति खिना सोनेलहीया लेहे,
छीहल तिनकी ऊपमा कहत व आवै छेहे।
ठाईं-ठाईं सरवर पेषिहँ सूभर भरे निवांण,
ठाईं-ठाईं कुवा-बावरी सोहइ फटिक सिवांण।
पंद्रह सै पचहत्तरे पूनिम फागुण मास;
पंचसहेली वर्णई कवि छीहल परगास।

नाम—(१४६) गौरवदास जैन।

ग्रंथ—यशोधर-चरित्र। रचनाकाल—१५८०।

विवरण—फफोंदू ग्राम-निवासी। नाम—(१४७) ठकुरसी।

ग्रंथ—कृपण-चरित्र। रचनाकाल—१५८०।

विवरण—घेल्ह के पुत्र।

उदाहरण—

इसौ जाणि सोहु कोई मरम मूरख धन सच्यौ,
दान-पुण्यउपगारि दित धणु किवैण रच्यौ।
मैं पंद्रा सौ असइ पौष पाँचै जगि जाण्यौ,
जिसौ कृपणु इक दीठु तिसौ गुण तासु वखाण्यौ।

कवि कहइ ठकुरसी घेल्ह तणु मैं परमत्थु बिचारियौ ,
खरचियौ त्याइ जीत्यौ जनमु जिह सँच्यौ तिह हारियौ ।

परमानंददास—अष्टछाप में गए (नं० १२८) ।

नाम—(१४८) बालचंद जैन ।

ग्रंथ—राम-सीता-चरित्र । समय—१५८० ।

कुम्भनदास—अष्टछाप में गए (नं० १२९)

नाम—(१४९) लालदास हलवाई, रायबरेली ।

ग्रंथ—(१) भागवत दशम स्कंध की भाषा (१५८७),
(२) हरि-चरित्र (१५८५) । कविता-काल—१५८५ ।

विवरण—यह पुस्तक लाला भगवानदीनजी 'दीन' अध्यापक हिंदी, हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी के पास है । उन्हीं से हमको इसकी सूचना मिली है । काव्य की दृष्टि से यह साधारण श्रेणी की है, परंतु पुरानी होने से संग्रह करने योग्य है । उदाहरण लीजिए—

पंद्रह सौ सत्तासी जहियाँ, समै बिलंबित बरनो तहियाँ ।
मास असाढ़ कथा अनुसारी , हरिबासर रजनी उजियारी ।
सकल संत कहँ नावइँ माथा , बलि-बलि जइहौं जादवनाथा ।
रायबरेली बरनि अवासा , लालच राम-नाम कै आसा ।

(१५०) महापात्र नरहरि बंदीजन

इनका जन्म संवत् १५६२ में हुआ । कहते हैं, इन्होंने १०५ वर्षों की अवस्था पाई । यह महाशय असनी-फतेहपुर के रहनेवाले थे, और अकबर के दरबार में इनका अच्छा मान था । अकबर ने इन्हें महापात्र की उपाधि दी । इनके बनाए हुए रुक्मिणी-मंगल और छप्पय-नीति-नामक दो ग्रंथ सुने जाते हैं । खोज में इनका कवित्त-संग्रह-नामक ग्रंथ मिला है ।

उदाहरण—

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नहिं मारि सकत कोइ ;
हम संतत तिन चरहिं वचन उच्चरहिं दीन होइ ।
अमृत पय नित स्रवहिं बच्छ महि थंभन जावहि ।

हिंदुहिं मधुर न देहि कटुक तुरकहि न पियावहिं।
कह कवि नरहरि अकबर सुनहु बिनवत गउ जोरे करन,
अपराध कौन मोहिं मारियत मुए चाम सेवै चरन।

इनका कविता-काल लगभग स० १५८८ से प्रारंभ होता है।

(१५१) मीराबाई

यह बाईजी मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री राव ईदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की प्रपौत्री थीं। इन्होंने संवत् १५७३ में चोकड़ी-नामक ग्राम में जन्म लिया, और इनका विवाह उदयपुर के महाराना कुमार भोजराज के साथ हुआ। इनकी भक्ति इतनी प्रगाढ़ थी कि यह सांसारिक संबंधों को तुच्छ जानकर श्रीकृष्णचंद्र को अपना पति मानती थीं। यद्यपि इनके मायके और ससुराल, दोनो स्थानों में किसी बात की कमी न थी, तथापि यह कभी पलंग पर नहीं शयन करतीं, और सदैव पृथ्वी पर मृगचर्म बिछाकर रहती थीं। इसी प्रकार हर बात में यह ऋषियों का-सा आचार रखती थीं, और आनंद-मग्न होकर प्राय. मंदिर में श्रीकृष्णचंद्र के सामने नाचती और गाती थीं। इनके ऐसे आचरणों से इनके स्वजन रुष्ट रहते थे, और उन्होंने इनके मारने के भी प्रयत्न कई बार किए, परंतु परमेश्वर ने इनकी सदा ही रक्षा की। भजनानंद में उन्मत्त होकर यह दूर-दूर निकल जाती थीं, और इन्होंने द्वारिकाजी तथा वृंदावन के प्रत्येक मंदिर को अपने भजनों द्वारा सम्मानित किया। जहाँ गईं, वहीं इनका बड़ा सत्कार हुआ, क्योंकि भक्तजन एवं और लोग इनको बड़े आदर की दृष्टि से देखते और साक्षात् देवी की भाँति इनकी पूजा करते थे। ये सब बातें जानकर राणाजी को अपने कुव्यवहारों के कारण बड़ा पश्चात्ताप होता था। एक बार इनके पति ने भिक्षुकों की भाँति गेरुआ वस्त्र धारण करके वृंदावन में जिस मंदिर में मीराबाई थीं, वहीं जाकर मीराजी से भिक्षा माँगी। मीराजी ने उत्तर दिया—"एक भिक्षुक-स्त्री के पास सिवा आशीर्वाद के और क्या है, जो वह आपको दे?" भोजराज ने कहा—"नहीं, केवल तुही मुझे दान दे सकती है।" मीरा ने पूछा—"किस प्रकार?" इस पर उत्तर पाया—"मुझे क्षमा करके।" इतना कह भोजराज ने गेरुआ

वस्त्र उतार डाला। अपने पति को पहचानकर बाईजी उन्हें तुरंत चमा करके उनके इच्छानुसार फिर चित्तौर वापस गई। इन्होंने नरसीजी का मायरा, गीतगोविंद की टीका, राग सोरठा के पद और रागगोविंद-नामक चार ग्रथ बनाए। ये ग्रंथ अवश्य ही अच्छे होंगे, परतु हमारे देखने में नहीं आए। 'भजन मीराबाई'-नामक ३१ पृष्ठों का इनके भजनों का सग्रह हमारे पास है। इसमें चौंतीस बड़े-बड़े पद हैं। इनमें से बहुत-से कल्पित जान पड़ते हैं, परंतु जो असली है, उनमें मीरा की प्रगाढ़ भक्ति का चित्र प्रत्यत्त देख पड़ता है। हम इसे सग्रह इस कारण कहते है कि इसमें स्वतत्र ग्रथ की भाँति वदना, कवि का वर्णन, संवत्, इतिश्री आदि कुछ भी नहीं है, और मुशी देवीप्रसादजी ने भी मीरा के तीन ही ग्रथ माने हैं। इनके पति कुमार भोजराजजी अपने पिता के सामने ही परलोक-वासी हो गए थे। सुना जाता है कि जिस समय मीराबाई की भक्ति के कारण उनके स्वजन रुष्ट थे, उस समय मीराजी ने श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी से अनुमति माँगी। इस पर गोस्वामीजी ने यह उत्तर भेजा—

जिनके प्रिय न राम-बैदेही ,
ते छाँडिए कोटि बैरी-सम, यद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता पहलाद, बिभीषन बधु भरत महतारी ,
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजबनितन, भे सब मगलकारी।

कहते है, इसी के पीछे मीराबाई ने और भी स्वतत्र आचरण ग्रहण किया, परतु यह किंवदती अशुद्ध जान पड़ती है, क्योंकि मीराबाई का देहात द्वारिकाजी में, सवत् १६०३ में, हुआ, और तुलसीदासजी का सवत् १६८० में, सो गोस्वामीजी को चाहे जितना दीर्घजीवी मानें, किंतु उनका और मीराजी की कविता का काल किसी समय में एक नहीं हो सकता। गोस्वामीजी का उपर्युक्त पद मीराबाई की जीवन-सबधी घटनाओं से मिलता-जुलता है, अत लोगों ने इसके सहारे यह कथा गढ़ ली होगी। पहले बहुतों का मत था कि मीराबाई राणा कुंभकरण की स्त्री थी, और बाईजी का जन्म-काल स० १४७७ का लोग मानते थे, परतु जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी ने मीराबाई के बाबत उपर्युक्त बातों का पता लगाया है, जो अब सर्वसम्मत भी है। चमा-

वाला साहित्यिक वर्णन श्रीमती एनीबेसेंट के लेख के आधार पर लिखा गया है। साधारण हिंदू-समाज पर कुछ पौराणिक स्त्रियों को छोड़कर और भारतवर्ष की किसी स्त्री का प्रभाव मीराबाई के बराबर नहीं पड़ा है। इस महिला-रत्न के अपूर्व गुणों का भारतवासियों ने मुक्त कंठ से गान किया है। भक्तशिरोमणि नाभादास एवं ध्रुवदास तथा व्यासजी, भगवतरसिक मलूकदास, राजा नागरीदास आदि सभी महाशयों ने बड़े आदर के साथ भक्तों में मीराबाई का नाम लिखा है, और उनके जीवन-चरित्र का वर्णन किया है। जैसा इस स्त्री-रत्न का प्रभाव हिंदू-समाज पर पड़ा, वैसी ही इसकी प्रगाढ़ भक्ति भी थी। कुछ लोगों का विचार है कि मीराबाई के वास्तविक कुमारी अवस्था में ही इनके पति का परलोक-वास हो गया था, और इनके पति के स्वजनों ने इनके यहाँ साधुओं की भीड़ जुड़ती देख लोकापवाद के भय से इन्हें मारने का प्रयत्न किया, तथा अन्य कष्ट दिए, जिस पर यह वृंदावन चली गईं, और फिर द्वारिकाजी को इनके बुलाने को राणाजी की ओर से ब्राह्मण भेजे गए, जिन्होंने इनके यहाँ जाकर धरना दिया। उसी समय इनका शरीरपात हो गया। रणछोरजी के मंदिर के साथ मीराबाई की भी पूजा होती है। जो हो, मीराबाई अचल भक्ति की थाप कर गई है। वह कलियुग में देवी होकर जन्मी थीं।

इनकी कविता में अखंड भक्ति का प्रवाह बहता है। आपकी भाषा राजपूतानी-मिश्रित ब्रजभाषा है, और वह सर्वतोभावेन सराहनीय है। इनके पदों में कहीं-कहीं कुछ अश्लीलता भी आ गई है, किंतु वह पूर्णतया सात्त्विक है। विष्णु स्वामी तथा निंबार्क स्वामी के मतों का भी प्रभाव इन पर कहा जाता है। हम इनके कुछ पद नीचे उद्धृत करते हैं—

बसो मेरे नैनन में नंदलाल। (टेक)
मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने रसाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल अरुन तिलक दिए भाल,
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नूपुर शब्द रसाल,
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भक्तबछल गोपाल।

भजि मन चरन-कमल अबिनासी । (टेक)
जेतइ दीसे धरनि गगन बिच तेतइ सब उठि जासी ।
कहा भयो तीरथ ब्रत कीने कह लिए करवट कासी ।
इस देही का गरब न करना माटी में मिलि जासी ;
यो ससार चहर की बाजी साँझ पड्याँ उठ जासी ।
कहा भयो है भगवाँ पहर्याँ घर तज भए सन्यासी ,
जोगी होय जुगुति नहिं जानी उलटि जनम फिरि आसी ।
अरज करें अबला कर जोरे श्याम तुमारी दासी ,
मीरा के प्रभू गिरिधर नागर काटौ जम की फाँसी ।

मन रे परसि हरि के चरन । (टेक)
सुभग सीतल कमल-कोमल त्रिविध-ज्वालाहरन ,
जे चरन पहलाद परसे इंद्रपदवी-धरन ।
जिन चरन ध्रुव अटल कीनो राखि अपने सरन ,
जिन चरन ब्रहमंड भेट्यो नखसिखौ श्रीभरन ।
जिन चरन प्रभु परसि लीने तरी गौतम-घरन ,
जिन चरन कालीहि नाथ्यो गोपलीला करन ।
जिन चरन धारयो गोवरधन गरव-मघवा-हरन ;
दास मीराँ लाल गिरिधर अगम तारन तरन ।

यद्यपि इनके ग्रंथ हमने नहीं देखे हैं, तथापि इनकी स्फुट कविता श्रवण करके हम यह कह सकते है कि इनकी रचना बहुत ही भक्तिपूर्ण तथा ऊँचे दर्जे की है। विशद कविता बनाने के वास्ते सहृदयता और तल्लीनता की सबसे अधिक आवश्यकता है, और ये ही गुण श्रेष्ठ कविता के प्रधान कारण हैं। ये गुण इनमें पूर्ण रूप से थे। इन्होंने जयदेव-रचित गीतगोविंद की टीका बनाई। इससे अनुमान होता है कि यह सस्कृत की भी पडिता थीं।

(१५२) स्वामी निपट निरंजन

यह महाशय भाषा के प्रकृष्ट कवि और प्रसिद्ध सिद्ध हो गए है। खोज में इनका समय १५९५ लिखा है। इनकी कविता बडी ज़ोरदार और यथार्थ कहने-

वाली होती थी। सतसरसी और निरंजन-संग्रह-नामक इनके दो ग्रंथ मिले हैं। इन्होंने कबीरजी की भाँति साधारण बातों में भी प्रभाव-पूर्ण ज्ञान का कथन किया है। इनका साहित्य वास्तविकता के साथ प्राबल्य से भी सुपुष्ट है। अन्योक्ति भी यह परम मनोहर कहते थे। इन्होंने खड़ी बोली की भी कविता कुछ-कुछ की। सुना जाता है, अकबर बादशाह ने इनसे भेंट की थी।

उदाहरण—

हे जग मूत औ' मूतहि को बन्यो मूत को भाजन मूत में पाग्यो,
खेत में मूत खतान में मूत औ' मूतहि मूत दसौ दिसि जाग्यो।
भाषै निरंजन अमृत मूत है मूत ही सों जग है अनुराग्यो,
तात को मूत औ' मात को मूत तें नारि को मूत लै चाटन लाग्यो।

छन मद छका जाके छके ते अछक होत,
अछक छका है घूम घूमत खुमारी का;
दिन निसि, निसि दिन जब सुधि आवति है,
तब उपजावै सुधि साहेब सुमारी का।
निपटनिरंजन अमर मरने का नहीं,
एक बार मारू नाम आवै न दुबारी का,
हौं तो मतवाला ओछे मद का न लेनवाला,
पूर करु प्याला खोज रहै न खुमारी का।

(१५३) श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी श्रीस्वामी वल्लभाचार्यजी महाप्रभु के शिष्य तथा पुत्र थे। इन्होंने ४ कवि अपने और चार अपने पिता के शिष्यों में से छाँटकर प्रसिद्ध अष्टछाप स्थिर की। इनके बनाए हुए स्फुट पद देखने में आते हैं, परंतु कुछ लोगों का मत है कि वे पद इसी नाम के अन्य कवि के हैं। जो हो, शृंगार-रस-मंडन-नामक एक गद्य-ग्रंथ साधारण व्रजभाषा में इन्होंने राधाकृष्ण-विहार-वर्णन में ५२ पृष्ठों का लिखा। इनके और इनके पिता श्रीमहाप्रभु के कारण भाषा-साहित्य की बहुत बड़ी उन्नति हुई। इनका जन्म चुनार में, सं० १५७२ में, हुआ, और मृत्यु सं० १६४२ में। यह महाराज गद्य के प्राचीन लेखक हैं। तृतीय त्रैवार्षिक खोज-रिपोर्ट में इनके दो और ग्रंथों

यमुनाष्टक तथा नवरत्न सटीक—का पता चलता है। इनका रचनाकाल सं० १५९६ के लगभग है।

उदाहरण—

प्रथम की सखी कहत है जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूबिके इनके मद हास्य ने जीते हैं। अमृतसमूह तो करि निकुंज विषै शृंगार रस श्रेष्ठ रचना कीनी सो पूर्ण होत भई, या कारण ते भाव-बोध में साचो दामोदरदास हरसाणी चाचा हरिबंसजी राखो।

विट्ठलजी के सात पुत्र हुए, अर्थात् गिरिधरजी, गोविंदजी, बालकृष्णजी, गोकुलनाथजी, रघुनाथजी यदुनाथजी, और घनश्यामजी। वल्लभाचार्यजी के सात ठाकुरजी मुख्य सेव्य थे। ये एक-एक इन पुत्रों में बँट गए, और इस प्रकार गोकुलस्थ सम्प्र- दाय की सात गद्दियाँ स्थापित हुईं, जो अब तक स्थिर हैं, और जिनमें से प्रत्येक की वार्षिक आय पचास-साठ हज़ार रुपए है। इनमें से तीन मेवाड-राज्य में हैं, दो कामवन में, एक गोकुल में और एक कोटा-राज्य में।

(१५४) कृपाराम

इस कवि के नाम से रत्नाकरजी ने इसे पश्चिमी ब्राह्मण माना है। इन्होंने संवत् १५९८ में हिततरंगिनी-नामक एक रस-रीति का ग्रंथ बनाया। इसमें रसों का विषय विस्तार-पूर्वक और मनोहर छंदों द्वारा कहा गया है। इस कवि की भाषा सुष्ठु ब्रजभाषा है। उसमें मिलित वर्णों का प्रयोग बहुत कम हुआ है, और उसे मनोहर बनाने में कवि ने पूरा प्रयत्न किया। इस ग्रंथ में ३९ छंद हैं, और वे सब प्राय दोहे हैं, केवल दो-चार बरवै छंदादि कहीं-कहीं मिलेंगे। इस कवि ने मानवीय प्रकृति के दिखाने में बड़ी कृत-कार्यता पाई है। इन्होंने लिखा है कि अन्य कवि बड़े छंदों में शृंगार-रस का वर्णन करते हैं, परंतु मैंने दोहों में इस कारण लिखा कि उसमें थोड़े ही अक्षरों में बहुत अर्थ आ जाता है। इस कथन से प्रकट होता है कि उस समय बहुत-से कवि थे, परंतु दुर्भाग्य-वश उनके ग्रंथ अब नहीं मिलते। रीति में लोग केशवदास को प्रथम आचार्य समझते हैं, परंतु रस-रीति के प्रथम आचार्य कृपाराम ही ठहरेंगे आप सुकवि थे।

सिधि निधि सिवमुख चद्र लखि माघ शुद्ध तृतियासु ,
हिततरंगिनी हौं रची कवि हित परम प्रकासु ।
वरनत कवि सिंगार रस छंद वड़े विस्तारि ;
मैं वरन्यो दोहानि विच याते सुघर विचारि ।
लोचन चपल कटाच्छ सर अनियारे विष पूरि ,
मन मृग वेधैं मुनिन के जग जन सहित विसूरि ।
आजु सवारे हौं गई नंदलाल हित ताल ,
कुमुद कुमुदिनी के भट्ट निरखे औरै हाल ।
पति आयो परदेश ते ऋतु वसंत की मानि ;
झमकि-झमकि निज महल में टहलैं करैं सुरानि ।

इस कवि के पद कहीं-कहीं विहारीलाल से मिल जाते हैं, जिससे यह भी संदेह किया जा सकता है कि यह कवि विहारी से पीछे हुआ, परंतु अन्य प्रमाणों के अभाव में इसके ग्रंथ का ठीक संवत् अप्रामाणिक नहीं माना जा सकता, और यही कहना पड़ेगा कि या तो विहारी ने इसकी चोरी की या पद दैवात् मिल गए।

सं० १६०० के लगभग का उदाहरण—

राजि श्रीसीहीजी कनवज-हुँती आइ खेड़रहीयौ । पछै श्रीद्वारका जीरी जातनुँ हालीयौ । सुविचालै पाटण मूलराज सोलङ्कीरी रजवार सु लाखौ फूलाणी उजाड़ घणां कीया । सु तेरे लीयैं सी है जीनुँ राखै । पछै सीहैंजी कह्यौ जु जात करिनै घिरतौ आइस । पछै विरता आया ताहरा लाखौ फुलाणीं मारीयौ । पछै सीहैजी नुँ मूलराज परनाइनै खेड़ मेल्हीया ।

(हिंद-एकेडेमी ति० प० जुलाई, १९२५)

(१५५) नरोत्तमदास)

विसवाँ-कवि मंडल के भूतपूर्व मंत्री स्वर्गीय पंडित देवीदत्त त्रिपाठी ने लिखा कि यह महाशय क़स्बा वाड़ी, ज़िला सीतापुर के रहनेवाले थे, और संवत् १६०२ तक वहीं वर्तमान थे। उन्होंने यह भी वतलाया कि नरोत्तमदास ने संवत् १५८२ में सुदामा-चरित्र-नामक प्रसिद्ध ग्रंथ वनाया । खोज (१९००)

में भी इसका पता चलता है। यह नरोत्तमदास-कृत ध्रुव-चरित्र-नामक एक द्वितीय ग्रंथ का भी नाम लिखते हैं। ठाकुर शिवसिंहजी ने भी इनका संवत् १६०२ लिखा है। जान पड़ता है, नरोत्तमदास कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, क्योंकि सीतापुर में ये ही ब्राह्मण रहते हैं।

इनका सुदामा-चरित्र ३४ पृष्ठों का एक छोटा-सा, परंतु परम मनोहर ग्रंथ है। इसमें सुदामा की दरिद्रता और संपत्ति, दोनो के बड़े बढ़िया वर्णन किए गए हैं। उनके संतोष और उच्च विचारों का भी इसमें अच्छा चित्र अंकित है। इस छोटे-से ग्रंथ में नायकों का शीलगुण खूब रक्खा गया है। इनके स्फुट छंद बहुत कम देखने में आते हैं, परंतु शृंगार-रस का भी एक अच्छा छंद हमारे पास है। इनकी भाषा व्रज-भाषा एवं काव्य परम प्रशंसनीय है। इन्होंने कई विषयों के प्रबल एवं स्वाभाविक वर्णन किए हैं। मित्र-भाव के विचार से सुदामा का संकोच और दरिद्रता के कष्ट से स्त्री का हठ इस ग्रंथ के जीव हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी सुदामा को कुछ न देकर उनकी स्त्री को ही धन दिया, क्योंकि वही धन चाहती थी, न कि स्वयं सुदामा, जो केवल शुद्ध मित्रता के उत्सुक थे। नरोत्तमदास की भाषा प्रभावशालिनी, लोचदार, स्वच्छ और प्रसाद तथा माधुर्य-युक्त है। कल्पना की कोमलता देखते ही बनती है। भाव-व्यंजना में स्वाभाविकता है, और कथन पूरी मार्मिकता के साथ हुए हैं। छंदों से रस निचुड़ा पड़ता है। वर्णन में धारावाहिता का चमत्कार है। भावुकता और लालित्य से वह सौरभित है। वर्णन में मौलिकता अच्छी मिलती है। सारा वर्णन हृदय-पक्ष का चमत्कार दिखलाता है। भगवान् के दान में गुप्त हास्य की पुट बहुत श्रेष्ठ रक्खी गई है। प्रबंध-कौशल की भी बहार है। नरोत्तमदास ने छोटे-से ही ग्रंथ में कलम तोड़ दी है विभूति, शक्ति और शांति की कथा ही मनोहर सुषमा का चित्र ग्रंथ में खड़ा है। ऊहा के बल पर भी स्वभावोक्ति की प्रेरणा हुई है। ग्रंथ कथा है, कौशल के चमत्कार का कोष है। हास्य-विनोद भी अच्छा लाया गया है। मूर्ति की कल्पना प्रत्यक्ष प्रस्तुत है। उदाहरणार्थ इनके कुछ छंद नीचे लिखते हैं—

कोदौं सवाँ जुरतो भरि पेट, तौ चाहती ना दधि-दूध मठौती ;

सीत वितीत भयो सिखियातहि हौं हठती पै तुम्हैं न हठौती ।
जो जनती न हितू हरि से तुम्हैं काहेक द्वारिकै पेलि पठौती ;
या घर ते कबहू न टरे पिय, टूटो तवा अरु फूटी कठौती ।
प्रीति मैं चूक नहीं उनके उठि मोको मिलैं हरि कंठ लगायकै ;
द्वार गए कछु देहैं पै देहैं वे द्वारिकानायक है सब लायकै ।
बातन बीति गए पन द्वै अब तौ पहुँचो बिरधापन आयकै ;
जीवन केतिक जाके लिये हरि के अब होहुँ कनावड़ो जायकै ।

तैं तो कहै नीकी सुनु मोसों बात ही की यह,
रीति मित्रई की नित प्रति सरसाइए ;
चित के मिले ते वित चाहिये परस्पर,
जेंइए जु मीत के तौ आपने जिमाइए ।
वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यहि रूप जाय कहा सकुचाइए ;
दुखै सुखै अब तौ बनत दिन भरे भूलि
विपति परे ते द्वार मीत के न जाइए ।

सीस पगा न भँगा तन में प्रभु जानै को आहि बसै केहि गामा ;
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु पायँ उपानह की नहिं सामा ।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रहो चकि सो बसुधा अभिरामा ;
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ।
कैसे बिहाल बेंवाँइन सों भए कंटक-जाल गड़े पग जोए ;
हाय महादुख पाए सखा तुम आए इतै न कितै दिन खोए ।
देखि सुदामा कि दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोए ;
पानी परात को हाथ छुयौ नहिं नैनन के जल सों पग धोए ।
काँपि उठी कमला जिय सोचत मोते कहा हरि को मन ओंको ;
सिद्धि छपैं, नव निद्धि चपैं, बसु ऋद्धि कँपै यह बाँभन धोंको ।
सोर परयो सुरलोकहु में जब दूसरी बार लियो भरि झोंको ;
मेरु डरै बकसैं जनि मोहिं कुबेर चबात ही चावर चोंको ।

है, और यह कहा गया है कि यह सनाढ्य ब्राह्मण थे, परंतु इनके वंशधर इन्हें सारस्वत ब्राह्मण मुल्तान के निकटस्थ उच्चगाँव का निवासी बताते हैं।

(१५९) बलबीर कवि तिरहुत-निवासी क्षत्रिय थे। आपने स० १६०८ में डंगव पर्व ग्रंथ बनाया, जो विशेषतया दोहा-चौपाइयों में है। रचना साधारण श्रेणी की है।

नाम—(१६०) हरिवंसअली। समय—स० १६१०।

ग्रंथ—हिताष्टक प्रथम व द्वितीय।

विवरण—इन्होंने स्वामी हरिवंशजी के दो अष्टक सवैया व कवित्तों में रचे, जिनमें १८ छंद हैं। इनकी कविता साधारण श्रेणी की है। ये ग्रंथ हमने दरबार छतरपुर में देखे। यह हरिवंशजी के समकालिक सुने जाते हैं।

उदाहरण—

बिथुरी सुथरी अलकैं झलकैं बिच आनि कपोल परीं जु छली,
मुसुकात जबै दसनावलि देखि लजात तबै तब कुंद-कली।
अति चंचल नैन फिरैं चहुँघा नित पोखत लाल हैं भाँति भली,
तिनके पद-पंकज को मकरंद सुनित्य लहै हरिवंसअली।

नाम—(१६१) प्रपन्नगेसान द वैष्णव।

ग्रंथ—भक्तिभावनी।

रचनाकाल—स० १६११।

विवरण—ग्रंथ-संख्या ४८६ श्लोकों के बराबर।

(१६२) टोडरमल महाराजा खत्री संवत् १५८० में उत्पन्न हुए थे, और इनकी मृत्यु संवत् १६४६ में हुई। यह महाशय शेरशाह सूर के समय में भी उच्च पदाधिकारी थे, और अकबर-काल में तो भारत के प्रधान अमात्य हो गए। माल-गुज़ारी-विभाग में इनका विशेषतया बंदोबस्त था, पर एक बार बंगाल की गवर्नरी करके भी इन्होंने उसे ठीक कर दिया और पठानों का बल चूर्ण करके विद्रोह शांत किया। भारत में सदैव से दफ्तरों में नागरी-अक्षरों का प्रचार था,

एक क्षति भी थी कि हिंदू लोग फ़ारसी नहीं पढ़ते थे, सो साधारण हिंदू सरकारी उच्च पद कम पाते थे। यह सोचकर टोडरमल ने सरकारी दफ्तरों से हिंदी उठाकर उनमें फ़ारसी का प्रचार कराया। इससे हिंदुओं का लाभ अवश्य पहुँचा, पर इतनी हानि भी हुई कि हिंदी का प्रचार सरकार से उठ गया। महाराजा टोटरमल हिंदी के कवि भी थे, पर इनकी कविता साधारण श्रेणी की है। आपके नीति संबंधी स्फुट छंद मिलते हैं।

रचनाकाल—लगभग सं० १६१२।

उदाहरण—

सोहै जिन सासन में आतमानुसासन सु,
जीके दुखहारी सुखकारी साँची सासना,
जाको गुन भद्रकार गुन भद्र जाको जानि,
भद्र गुनधारी भव्य करत उपासना।
ऐसे सार सास्त्र को प्रकास अर्थ जीवन को,
बनै उपकार नासै मिथ्या भ्रम वासना।
ताते देश-भाषा अर्थ को प्रकास करु जाते,
मद बुद्धि हू के हिय होवै अर्थ भासना।

(१६३) बीरबल (ब्रह्म) महाराजा

महाराजा बीरबल का जन्म सवत् १५८५ में तिकवाँपुर ज़िला कानपुर में एक साधारण कान्यकुब्ज ब्राह्मण गगादास के यहाँ हुआ। इसका उल्लेख अशोक-स्तंभ प्रयाग में है। उस पर खुदा हुआ है—"संवत् १६३२ शाके १४९३ मार्ग वदी ५ सोमवार गगादास सुत महाराज बीरबल श्रीतीरथराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखितं।" इनके जन्म-स्थान के विषय में इतिहासज्ञों में कुछ मतभेद है, पर हमने उपर्युक्त कथन भूषण कवि के आधार पर किया है।

द्विज कनौज कुल कस्यपी रतनाकर-सुत धीर;
बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनि-तनूजा-तीर।
बीर बीरबल-से जहाँ उपजे कवि अरु भूप;
देवबिहारीश्वर जहाँ विश्वेश्वर तद्रूप।

(शिवराजभूषण)

महाराज बीरबल का बसाया हुआ गांव अकबरपुर-बीरबल भी वहां से करीब दो मील पर है। एक साधारण दशा से अपने बुद्धि-बल द्वारा उन्नति करते हुए यह महाशय अकबर शाह के नवरत्नों में हो गए, और शाही दरबार से इन्होंने एक बड़ी जागीर तथा महाराजा की पदवी पाई। यह अकबर के सेनानायकों में से थे, और युद्ध में भी जाते थे। यहां तक कि इनका शरीर-पात भी संवत् १६४० में, रणक्षेत्र ही में, हुआ। यह महाराज सदैव कविता के प्रेमी रहे, और ब्रजभाषा की बहुत अच्छी रचना करते थे। इन्होंने छंदों में उपमाएँ बहुत अनूठी कहीं, और प्राय उपमाओं के लिए छंद कहे। अर्थात् एक अच्छी उपमा सोची, और छद में उसका सामान बाँधकर अत में उसे कह दिया। इनकी कविता सानुप्रास, सालकार, ललित और मनोहर होती थी। इनकी गणना तोष कवि की श्रेणी में है। कवि होने के अतिरिक्त यह महाशय हाज़िर-जवाब भी बड़े भारी थे। इनके मज़ाक बहुत मार्के के होते थे, जो प्राय अकबर शाह से हुआ करते थे, जिसका सविस्तर वर्णन बीरबल-विनोद-नामक ग्रंथ में है। इनकी हाज़िर-जवाबी का केवल एक उदाहरण यहां दिया जाता है। कहते हैं, इनके पिता मूर्ख थे, सो दरबारियों ने बादशाह द्वारा उन्हे एक बार दरबार में बुलाकर उनकी मूर्खताओं से बीरबल को झेपाना चाहा। बीरबल ने उन्हें सलाम करने तथा शाही आदाब के साथ उचित रीति से बैठने के नियम सिखा दिए, पर समझा दिया कि वह अन्य एक शब्द भी उच्चारण न करें और किसी के साधारण-से-साधारण प्रश्न तक का उत्तर न दें। उनके दरबार में जाने पर लोगों ने उनसे कई साधारण प्रश्न किए, पर वह एकदम मौन ही धारण किये रहे। इस पर बादशाह ने कहा कि अगर बेवकूफ से साबिका पड़े, तो कोई क्या करे? बीरबल ने बादशाह की ओर इंगित करके कहा, जहाँपनाह! खामोशी अख्यार करें। यह उत्तर "जवाबे जाहिलाँ बाशद खामोशी" के आधार पर दिया गया।

इनकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी, तथा उदारता बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी। यह कवियों के बहुत बड़े सहायक थे। केशवदास को इन्होंने एक बार एक छंद पर छ लाख मुद्रा दिए, तथा ओड़छा-नरेश पर एक कोटि का जुर्माना माफ करा

दिया। अकबर शाह के यहाँ इनका बड़ा सन्मान था। स्थानाभाव से इनकी रचना में से केवल दो छंद यहाँ दिए जाते हैं।

एक समय हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मंजु रसालहि ;
डीठि गई चलि मोहन की बृजभानुसुता उर मोतिन मालहि।
सो छवि ब्रह्म लपेटि हिए कर सों कर लैकर कंज सनालहि ;
ईस के सीस कुसुम्म की माल मनौ पहिरावति व्यालिनि व्यालहि।

उछरि-उछरि भेकी झपटैं उरग पर,
उरग पै केकिन के लपटैं लहकिहैं ;
केकिन के सुरति हिए को ना कछु है भए,
एकी करी केहरि न बोलत बहकिहैं।
कहै कवि ब्रह्म बारि हेरत हरिम फिरैं,
बैहर बहत बड़े जोर सों जहकि है,
तरनि के तावन तवा-सी भई भूमिर ही,
दसहू दिसान में दवारि-सी दहकिहै।

इनके रचित किसी ग्रंथ का पता नहीं मिल सका, पर पं० मायाशंकरजी याज्ञिक के पास इनके कई सौ छंद मौजूद हैं तथा भरतपुर में भी कहे जाते हैं। इनका कविता-काल संवत् १६१५ से प्रारंभ होता है। इनकी मृत्यु पर अकबर शाह ने यह सोरठा कहा—

दीन देखि सब दीन एक न दीन्हों दुसह दुख ;
सो हम कहँ अब दीन कछु नहिं राख्यो बीरबल।

(१६४) विट्ठल विपुल की बानी हमने छतरपुर में देखी। वह प्रति संवत् १८७४ की लिखी हुई है। जाँच से इनकी कविता का संवत् १६१५ जान पड़ा। इनके ४० पद बानी में हैं। इनकी कविता साधारण श्रेणी की है। यह महाशय अपने भाजे स्वामी हरिदास के शिष्य थे, और राजा मधुवन के यहाँ रहते थे। इनका जन्म संवत् १५८० खोज में लिखा है। कहते हैं, यह अपने गुरु के ऐसे प्रेमी थे कि उनके मरने पर तुरंत इन्होंने अपनी आँख में पट्टी बाँध ली।

उदाहरण—

सजनी नवल कुंज बन फूले ,
अलि-कुल संकुल करत कुलाहल सौरभ मनमथ मूले ।
हरषि हिंडोरे रसिक रासबर जुगुल परस्पर झूले ,
विट्ठल बिपुल बिनोद देखि नभ देव बिमानन भूलें ।

कहते हैं, इनकी आँखों की पट्टी स्वयं श्रीकृष्णचंद्र ने एक रास में खोली। स्वामी हरिदास के पीछे यही उनकी गद्दी के अधिकारी हुए। एक बार रास में यह ऐसे प्रेमोन्मत्त हुए कि वहीं इनका शरीर छूट गया।

नाम—(१६५) व्यासजी, ओड़छा (बुंदेलखंड)।

ग्रंथ—बानी, रास के पद, ब्रह्मज्ञान, मंगलाचार के पद, पद (३०० पृष्ठ छोटे), रागमाला, साखी ।

रचनाकाल—१६१५ ।

विवरण—इनके ग्रंथ (नंबर २, ४ और ५) हमने छतरपुर में देखे। इनकी कविता उत्कृष्ट श्रेणी की थी।

पहले आप शास्त्रार्थ बहुत किया करते थे, यहाँ तक कि एक बार हितहरिवंशजी को शास्त्रार्थ के लिये प्रचार भेजे, जिस पर स्वामीजी ने निम्न-लिखित पद पढ़ा—

यह जो एक मन बहुत ठौर करि कहि कौने सचुपायो ,
जहँ-तहँ बिपति जार जुवती ज्यों प्रगट पिंगला गायो ।

इस पर व्यासजी हितजी के शिष्य होकर श्रीवृंदावन ही में रहने लगे। कुछ दिनों बाद महाराज श्रीमधुकरशाहजी आपको बुलाने स्वयं वृंदावन पधारे, किंतु यह न गए। व्यासजी ने श्रीकृष्ण-भक्ति पर स्तुत्य कविता की। लोक-संग्राह को भी नहीं भुलाया। खलों आदि पर भी गोस्वामीजी की भाँति आपने भी कथन किए हैं। रचना प्रशंसनीय है ।

उदाहरण—

जैसे गुरु तैसे गोपाल ,
हरि तौ तबहीं मिलिहैं जबहीं श्रीगुरु होयँ कृपाल ।

गुरु रूठे गोपाल रूठिहैं वृथा जात है काल ;
एक पिता बिन गनिका-सुत को कौन करै प्रतिपाल ।

(१६६) गंग

रचनाकाल—प्राय. १६१६

इनका नाम भाषा-साहित्य-प्रेमियों में बहुत प्रसिद्ध है, और आपकी कविता भी लोग बहुत पसंद करते आए हैं, परंतु खेद का विषय है कि इनके चरित्र एवं काव्य दोनो ऐसे लुप्तप्राय हो गए हैं कि पता तक नहीं लगता। हर्ष की बात है कि पं० मायाशंकरजी याज्ञिक ने इनके कई सौ छंद परिश्रम से ढूँढ़कर एकत्र किए हैं। आशा है, वह उनके प्रकाशित करने का भी प्रबंध करेंगे। इनकी जाति के विषय में भी संदेह है। बहुत लोग इन्हें ब्राह्मण कहते हैं, परंतु कुछ लोगों का यह भी मत है कि यह ब्रह्मभट्ट थे। जनश्रुतियों द्वारा प्रसिद्ध है कि यह महाशय बादशाही दरबारों में भी बड़ी निर्भयता से बातचीत करते थे। इनकी मौत के विषय में भी मतभेद है बहुतों का विचार है कि यह महाशय किसी बड़े आदमी की आज्ञा से हाथी द्वारा चिरवा डाले गए। वे लोग अपने कथन के प्रमाण में गंग का एक दोहा और अन्य छंद पेश करते हैं। उनके मुख्यांश नीचे दिए जाते हैं—

मारग में हाथी कियो झपटि गंग-तन भंग,

× × ×

कबहुँ न भँडुवा रन चढ़े कबहुँ न बाजी बंब,
सकल सभाहि प्रनाम करि बिदा होत कवि गंग।

+ + +

गंग-ऐसे गुनी को गयंद सों चिराइए।

+ + +

सब देवन को दरबार जुरयो तहँ पिंगल छंद बनाय कै गायो ;
जब काहू ते अर्थ कह्यो न गयो तब नारद एक प्रसंग चलायो।
मृतलोक में है नर एक गुनी कहि गंग को नाम सभा में बतायो ;
सुनि चाह भई परमेसुर को तब गंग को लेन गनेस पठायो।

देव कवि ने भी "अकबर काल बरबीर केसोदास चारु गंग की सुकबिताई गाई रसपाथी ने, एक दल सहित बिलाने एक पल ही में, एक भए प्रेत एक मींजि मारे हाथी ने" कहकर गंग के हाथी द्वारा मारे जानेवाले कथन का समर्थन किया है। इतिहासवेत्ता स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी ने लिखा है कि गंग का अकबर या किसी अन्य मनुष्य की आज्ञा द्वारा चीरा जाना अशुद्ध है, क्योंकि गंग के छंद जहाँगीर की प्रशंसा में भी मिलते हैं। इतिहास से उनके चीरे जाने का हाल "साबित नहीं होता" और गंगजी औरंगज़ेब के समय तक जीवित रहे हैं। इन बातों के प्रमाण में वे निम्नलिखित छंद लिखते हैं—

तिमिर लंग लइ मोल चली बब्बर के हलके,
साह हुमाऊँ साथ गई फिर सहर बलक्के।
अकबर करी अजाच भारत जहँगीर खवाए,
साहजहाँ सुलतान पीठि को भार छुड़ाए।
उन छोड़ि दई उद्यान बन भ्रमी फिरत है स्यार टर,
औरंगजेब बखसीस किय अब आई कवि गंग घर।

यह छंद मुंशीजी ने दिसंबर सन् १९०७ ई० की सरस्वती में निकाला था। इसमें कई अशुद्धियाँ जान पड़ती हैं। 'हलके' का तुकांत 'बलक्के' बुरा है। दूसरे, हथिनी का अजाच करना भी अयुक्त है। तीसरे, जब हथिनी इतनी वृद्धा हो गई थी कि उससे रोट तक दाँतों से काटा नहीं कटता था, और इस कारण जहाँगीर को उसे रोट के स्थान पर भात खिलाना पड़ा, क्या तब भी वह बोझा लादने के योग्य बनी हो रही कि दूसरी पुश्त में शाहजहाँ उसकी पीठ का भार छुड़ाते? चौथे, गंग को जिस समय वह हथिनी मिली, तब तो उन्होंने कुछ भी न कहा, परंतु जब बुड्ढी होने के कारण जंगल में छोड़ना पड़ा, तब यह भँड़ौवा बनाया। कविजन ऐसे अनुचित दान पाकर तत्काल भँड़ौवा बनाते हैं, न कि घर जाकर सोच-विचारानंतर ऐसा करें। फिर गंग का-सा उग्र कवि तो ऐसा अवश्य करता। पाँचवें, गंग अकबर के समय से मुगलों में सम्मानित रहे, तब ऐसे वृद्ध और मानी कवि को औरंगज़ेब इतना बड़ा बादशाह होकर ऐसी वृद्धा हस्तिनी कैसे देता? यदि कहिए कि उसने मज़ाक़ में ऐसा किया

होगा, तो गंग इतने मज़ाक़िए होकर ऐसी मूर्खता क्यों करते कि उसके मज़ाक़ को सच समझकर उसका भँडौवा बनाने लगते? यदि कहिए कि मजाक़में भँड़ौवा भी बना होगा, तो हम कहेंगे कि इतने बड़े और संजीदा बादशाह से ऐसे विकराल भँड़ौवा द्वारा कोई मज़ाक़ नहीं कर सकता, और बादशाह की चार पीढ़ियों का नमक खाकर एक वयोवृद्ध मनुष्य गंग इतनी कृतघ्नता कभी न करते कि एक अनुचित व्यवहार पर भी बादशाह का ऐसा भँड़ौवा बना डालते। इन विचारों से हमको निश्चय है कि यह छंद गंग का बनाया हुआ नहीं है। हमको यह छंद आठ-दस साल से कंठस्थ है, और हमने मुंशीजीवाले इस लेख के छपने के प्रायः दो मास पूर्व, सन् १९०७ के देवनागर के चतुर्थ अंक में, यह छंद प्रकाशित भी करा दिया था। उसका पाठ मुंशीजी के पाठ से बहुत भिन्न है, और उस पाठ में उपर्युक्त दूषण भी नहीं हैं। वह यों है—

तिमिर लंग लइ मोल चली बाबर के हलके,
रही हुमायूँ संग गई अकबर के दलके।
जहाँगीर जस लियो पीठि को भार हटायो,
साहिजहाँ करिन्याव ताहि पुनि माड़ चटायो।
बल-रहित भई, पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर,
औरंगजेब करिनी सोई लै दीन्ही कबिराज कर।

इसमें गंग का नाम नहीं है। यह किसी अन्य कवि का बनाया है। फिर हमारे मत में गंग का औरंगजेब के समय तक जीवित रहना भी असंगत है। गंग ने अकबर के पालक बैरमखाँ के (जिसको अकबर बैरम बाबा कहते थे) पुत्र अब्दुलरहीम खानखाना की प्रशंसा में बहुत-से छंद बनाए। इससे एवं जनश्रुतियों द्वारा समझ पड़ता है कि गंग अकबर की सभा में रहते थे। कोई नवयुवक कवि ख़ानेखाना-ऐसे गुणी और सत्कवि को कविता द्वारा ऐसा प्रसन्न तो कर ही नहीं सकता था कि उनसे अच्छा सम्मान पाता, सो इस ऊँचे दर्जे पर पहुँचने के लिये गंग को बहुत समय लगा होगा। इससे विचार होता है कि गंग अवस्था में यदि रहीम से बड़े नहीं, तो उनके बराबर अवश्य होंगे। रहीम का जन्म संवत् १६१० में हुआ था, और उनकी मौत संवत् १६८२ में हुई।

तब उसी समय संभवत. ७५ वर्ष के होकर गंग का सवत् १७१४ तक जीवित रहना (जब कि औरंगज़ेब गद्दी पर बैठा) प्राय असभव जान पड़ता है।

गंग यद्यपि बहुत बढ़िया कवि थे, और उन्होंने हज़ारों छद कहे होंगे, तथापि उनकी कविता ऐसी लुप्तप्राय हो गई है कि एक भी ग्रंथ नहीं मिलता। बहुत ढूँढने पर हमें उनके तीस-पैंतीस छदों से अधिक न मिल सके। दास-सदृश महाकवि ने गग को कवियों का सरदार माना है, यथा—"तुलसी गंग दुवौ भए सुकबिन के सरदार, इनके ग्रथनि मैं मिली भाषा बिबिध प्रकार।" इस दोहे के लिखते समय दास ने हिंदी के कई प्रसिद्ध कवियों के नाम लिखे, परंतु सूर, केशव, देव और बिहारी-ऐसे धुरंधर कवियों तक को छोड़ केवल गंग और तुलसी की स्तुति की। श्रीपति-ऐसे महाकवि ने भी गंग का 'रही न निसानी कहूँ महि मैं गरद की'-वाला पद उठाकर अपने शरद्-वर्णन के एक छद में यथातथ्य रख दिया। इनका लोक में इतना आदर था कि सुना जाता है कि यह सदैव शाही दरबार में रहे, और खानखाना ने इन्हें एक ही छद पर छत्तीस लाख रुपए दिए।

गंग की जो कुछ कविता मिलती है, उससे विदित होता है कि यह बड़े ही धुरधर कवि थे। तृ० त्रै० खो० से इनके खानखाना कवित्त-नामक ग्रंथ का पता चलता है। इन्होंने व्रजभाषा को प्रधान रक्खा, परंतु इनके काव्य में "मिली भाषा विविध प्रकार" इन्होंने एक छद फ़ारसी-मिश्रित कहा है, जैसा कि इनके आश्रयदाता खानखाना किया करते थे। इस कवि में उद्दंडता की मात्रा विशेष है, और एक स्थान पर इन्होंने अतिशयोक्ति की भी टाँग तोड़ दी। यह हास्य-रस के आचार्य थे, और इन्होंने शृगार तथा युद्ध-कविता भी बड़ी ही उत्कृष्ट की। इनकी समस्त रचना में कुछ ऐसा अनूठापन देख पड़ा है कि ठाकुर आदि दो-चार कवियों को छोड़कर किसी में भी उसका पता नहीं लगता। इनकी कुछ अन्योक्तियाँ भी अच्छी कही जाती हैं। उपर्युक्त कथनों के उदाहरणार्थ गग के कुछ छंद हम नीचे लिखते हैं। गंग को हम सेनापति की श्रेणी का कवि समझते है।

बैठी ती सखिन संग पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूह में वियोग-आगि भरकी ;
गंग कहै त्रिविध सुगंध लै पवन बह्यो,
लागत ही ताके तन भई बिथा जर की ।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहँ,
लागत ही औरै गति भई मानसर की ;
जलचर जरे औ' सेवार जरि छार भयो,
जल जरि गयो, पंक सूख्यो, भूमि दरकी ॥ १ ॥
नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास,
भागे देसपती धुनि सुनत निसान की ;
गंग कहै तिनहूँ को रानी राजधानी छाँडि,
फिरैं बिललानी सुधि भूली खान-पान की ।
तेऊ मिलीं करिन हरिन मृग बानरन,
तिनहूँ की भली भई रक्षा तहाँ प्रान की ;
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरिन,
मृगन कलानिधिकपिन जानी जानकी ॥ २ ॥
प्रबल प्रचंड बली बैरम के खानखाना,
तेरी धाक दीपन दिसान दह-दहकी ;
कहै कवि गंग तहाँ भारी सूर बीरन के,
उमडि अखंड दल प्रलै पौन लहकी ।
मच्यो घमसान तहाँ तोप तीर बान चलैं,
मंडि बलवान किरवान कोपि गहकी ;
तुंड काटि मुंड काटि जोसन जिरह काटि,
नीमा जामा जीन काटि जिमीं आन ठहकी ॥ ३ ॥
मुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान,
एकन ते एक मनो सुखमा जरद की ,
कहै कवि गंग तेरे बल की बयारि लगे,

फूटी गज-घटा घनघटा ज्यों सरद की।
एते मान सोनित की नदियाँ उमड़ि चलीं,
रही न निसानी कहूँ महि में गरद की ;
गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गही गौरी,
गौरीपति गह्यो पूँछ लपकि बरद की ॥ ४ ॥

इन्होंने नवाब खानख़ाना को नवल नवाब कहा है, इससे भी यह वयोवृद्ध समझ पड़ते हैं।

नाम—(१६७) तानसेन, ग्वालियर।

ग्रंथ—(१) संगीतसार (१६१७), (२) रागमाला (१६१७) और (३) श्रीगणेशस्तोत्र।

रचनाकाल—१६१७।

विवरण—यह महाशय प्रथम ग्वालियर के ब्राह्मण और स्वामी हरिदास के शिष्य थे, पर पीछे मुसलमान हो गए। यह अद्वितीय गानेवाले थे, और कविता भी अच्छी करते थे।

उदाहरण—

किधौं सूर को सर लग्यो किधौं सूर की पीर,
किधौं सूर को पद लग्यो तन मन धुनत सरीर।

यह दोहा सूरदास की प्रशसा में तानसेन ने कहा। इस पर सूरदास ने इनकी प्रशसा यों की—

बिधना यह जिय जानि कै सेसहि दिए न कान,
धरा मेरु सब डोलते तानसेन की तान।

तानसेन का नाम त्रिलोचन -मिश्र था। इनके पितामह इनके साथ ग्वालियर-नरेश महाराजा रामनिरजन के यहाँ जाते थे। इन्हीं महाराजा ने त्रिलोचनजी को तानसेन की उपाधि दी। तभी से यह तानसेन कहलाने लगे। गान-शास्त्र में पहले बैजू-बावरे इनके गुरु थे। पीछे से तानसेन शेख मोहम्मद गौस ग्वालियरवाले के शिष्य हुए। कहते हैं, शेखजी ने तानसेन की जिह्वा में अपनी जिह्वा लगा दी। उसी दिन से तानसेन मुसलमान हो गए, और अच्छे

गायक भी हुए। जिह्वा लगाने से अच्छे गायक होने की कथा अशुद्ध समझनी चाहिए। यह भी कहते हैं कि शाही घराने की किसी कन्या से विवाह करने से तानसेन मुसलमान हुए। यह बात अधिक प्रामाणिक जान पड़ती है।

नाम—(१६८) महाराजा पृथ्वीराज, बीकानेर।

ग्रंथ—(१) श्रीकृष्णदेव-रुक्मिणी-बेलि खोज (१९००), (२) श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-चरित्र और (३) प्रेमदीपिका।

रचना-काल—१६१७।

विवरण—उत्कृष्ट कवि। यह महाराज अकबर शाह के दरबार में रहते थे। जिस समय महाराजा प्रतापसिंह अकबर की अधीनता क़बूल करनेवाले थे उस समय इन्होंने कुछ दोहे लिखकर उनको इस काम से रोका। यह महाराज काव्य-रसिक और बड़े देश-भक्त भी थे।

उदाहरण—

प्रेम इकगी नेक-प्रेम गोपिन को गायो ;
बनतन बिरह बिलाप सखी ताकी छबि छायो।
ग्यान जोग बैराग मधुर उपदेसन भाख्यो ;
भक्ति भाव अभिलाष मुख्य बनितन मनु राख्यो।
बहु विधि वियोग सजोग-सुख सकल भाव समुझै भगत ;
यह अद्भुत प्रेमप्रदीपिका कहि अनंत उदित जगत ॥ १ ॥
अकबर समद अथाह सूरायण भरियो सजल ,
मेवाड़ो तिण माह पोयण फूल प्रताप सी ॥ २ ॥
अकबर घोर अँधार ऊघाने हिंदू अवर ;
जागे जगदातार पोहरे राण प्रताप सी ॥ ३ ॥
अकबर एकण बार दागल की सारी दुणी ,
बिन दागल असवार एकज राण प्रताप सी ॥ ४ ॥
हिंदूपति परताप पति राखी हिंदुवान की ,
सहे विपति सताप सत्य सपथ करि आपणी ॥ ५ ॥
सह गाँवड़िये साथ एकण वाड़े वाढ़िया ,

राण न मानी नाथ तागो राण प्रताप सी ॥ ६ ॥
सोयो सो ससार असुर पलोलै उपरै ,
जागे जगदातार पोहरे राण प्रताप सी ॥ ७ ॥

इस रचना में जातीयता का चित्र खड़ा है।

छीत स्वामी।

समय—१६२० ।

विवरण—अष्टछाप में गए। (नं० १३१)

(१६६) मनोहर कवि

यह महाराज मनोहरदास कछवाहा अकबर शाह के मुसाहब थे, जैसा कि इनकी कविता से प्रकट होता है। सरोज में लिखा है कि यह संस्कृत तथा फारसी-भाषा के बड़े विद्वान् थे। यह फ़ारसी शायरी में अपना नाम "तोसनी" रखते थे। इनका समय स० १६२० के लगभग है। इनकी कविता बड़ी ही उदार, मधुर, सानुप्रास, भाव-पूर्ण, सरस और प्रशंसनीय है। इन्होंने शत-प्रश्नोत्तरी-नामक एक ग्रंथ भी बनाया।

उदाहरण—

इंदु-वदन नरगिस-नयन सबुलवारे बार ;
उर कुमकुम कोकिल-बयन जेहि लखि लाजत मार।
बिथुरे सुथरे चीकने बने घने घुँघुवार ,
रसिकन को ज़ंजीर-से बाला तेरे बार।
अकबर सों वर कौन नर नरपति-पति हिंदुवान ,
करन चह जेहि करन सो लेन दान सनमान।
अचरज मोहिं हिंदू तुरक वादि करत संग्राम ,
यक दीपति सों दीपियत काबा काशी धाम।

नंददास।

समय—१६२३ ।

विवरण—अष्टछाप में गए (१३२)

(१७०) गोस्वामी गोकुलनाथजी

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ के यह महाराज आत्मज थे। इनके दो गद्य-ग्रंथ—चौरासी वैष्णवों की वार्ता और २५२ वैष्णवों की वार्ता—प्रसिद्ध हैं, और दोनो हमारे पुस्तकालय में वर्तमान हैं। महात्मा गोरखनाथजी के प्रायः २०० वर्ष पीछे गद्य-लेखन की ओर इन्हीं पिता-पुत्रों ने समुचित ध्यान दिया। इनकी लेख प्रणाली प्रशसनीय है। उसके अवलोकन से विदित होता है कि बीच में भी गद्य लिखने की प्रथा एकदम वद नहीं हो गई थी। इन दोनो ग्रथों का विषय इनके नामों ही से प्रकट होता है। इनसे तात्कालिक कई महात्माओं का समय स्थिर हो जाता है। इनका कविता-काल सवत् १६२४ से प्रारंभ होना प्रतीत होता है। गोस्वामी जी ने साहित्य का विचार छोड़कर साधारण व्रज-भाषा में भक्तों के जीवन-चरित्र लिखे। इन ग्रथों में अस्वाभाविक घटनाएँ हैं, और अन्य मतों पर कुछ व्यग्य-पूर्ण कथन भी। उर्दू के भी शब्द आपने लिखे, तथा गुजराती, मारवाड़ी आदि का इन पर प्रभाव पड़ा है। सर्वनाम कम लिखते थे, जिससे नामों की पुनरुक्ति हो जाती थी। फिर भी इनके गद्य में व्यक्तित्व की छाप है, तथा सजीवता, स्वाभाविकता, आडवर-शून्यता और माधुर्य आदि गुण इस गद्य में हैं।

उदाहरण—

श्रीगोसाईंजी के दर्शन करिके अच्युतदास की आँखिन में सूँ आसून को प्रवाह चल्यो सो देखिके अच्युतदास को श्रीगोसाईंजी ने अच्युतदास सों पूछो जो अच्युतदास तुमको असा दुक्ख कहा है।

गोविंद स्वामी।

समय—१६२४।

विवरण—अष्टछाप में गए (१३२)

(१७१) श्रीदादूदयालजी

रचनाकाल—१६२४।

इन महाशय का जन्म अहमदाबाद में, सवत् १६०१ में, हुआ था, और संवत् १६६० में यह पंचत्व को प्राप्त हुए। कुछ लोगों का विचार है कि यह महाशय जाति के धुनिया थे, और इनका नाम महावली था, पर कुछ अन्य लोग

इन्हें सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं। यह पहला मत पुष्ट है। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है कि कमाल कबीरदास के शिष्य थे, और दादूजी कमाल के। कमाल का कबीरदास का निकम्मा पुत्र होना भी प्रसिद्ध है, यथा "बूड़ा बंस कबीर का उपजे पूत कमाल, सतन-सेवा छोड़िकै घर लै आया माल।" "कहत कमाल कबीर का बालका" इत्यादि। फिर भी कमाल कबीर-पंथ की बारह शाखाओं में से एक के अधिष्ठाता थे। दादूजी कभी क्रोध नहीं करते थे, और सब पर दया रखते थे। इसी से इनका नाम दयाल पड़ गया। यह सबको दादा-दादा कहने के कारण दादू कहलाए। यह महाशय बहुत बड़े उपदेशक ऋषि हो गए हैं, और इनका चलाया हुआ मत दादू-पंथ कहलाता है। सुंदरदास, रज्जबजी, जनगोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, खेमदास आदि इनके शिष्य अच्छे कवि भी थे। दादूजी के बनाए हुए सबद और बानी हमारे पास हैं, जिनमें इन्होंने संसार की असारता और ईश्वर (राम)-भक्ति के उपदेश सबल छंदों द्वारा दिए। उन्होंने भजन भी बहुत बनाए। कविता की दृष्टि से भी इनकी रचना मनोहर, स्वानुभव-पूर्ण और यथार्थ भाषिणी है। खोज १९०२ में इनके ३ ग्रंथ और लिखे हैं—(१) दादूजी को अध्यात्म, (२) दादूदयाल को कृत्य और (३) समर्थइ को अंग।

दादू-पंथवाले निर्गुणोपासना की रीति पर निरंजन एवं निराकार की उपासना और सत्तराम द्वारा आपस में अभिवादन करते हैं। ये लोग तिलक, माला कंठी आदि का व्यवहार नहीं करते। आपकी भाषा जयपुरी-मिश्रित पश्चिमी हिंदी है। आपके कुछ पद गुजराती और पंजाबी के भी हैं। कुछ खड़ी बोली की भी क्रियाएँ आपके पदों में हैं। आपने भी कबीर की भाँति हिंदू-मुसलमानों के मिलाने का प्रयत्न किया, और जाति-पाँति को आदर नहीं दिया है। अकबर शाह ने बहुत हठ करके आपको बुलाया, और ४० दिनों तक सत्संग किया। इनसे मिलने के पीछे ही उन्होंने 'दीन इलाही' चलाया, और कलमा बदलकर उसी साल 'इलाही कलमा' सिक्कों पर छापा। इलाही कलमा था "अल्ला हो अकबर जिल्ले जलालहू।" जन गोपाल ने दादूदयाल की जन्म-लीला कही। सं० १७७१ की इसकी एक लिखित प्रति हमने देखी है। दादूदयाल से

अकबर शाह की भेंट का हाल इसी ग्रंथ में लिखा है। दादूदयाल के शिष्यों में सुंदरदास श्रेष्ठतम कवि और भक्त थे। जन गोपाल ही ने आपको धुन्ना कहा है, यथा (जन्म के विषय में) "धुन्ना के घर भयउ अनंदू।" दादूदयाल सद्गुरु-महिमा, ईश्वरीय व्यापकता, दाया आदि सिखलाकर जाति की अवहेलना करते थे। आप १४ साल आमेर में रहे, फिर मारवाड, वीकानेर आदि में फिरते हुए १६५९ में नराने में रम गए। वहाँ से तीन-चार कोस पर मराने की पहाड़ी है, जहाँ जाया-आया करते थे, और वहीं शरीर छोडा। यह दादू-पंथियों का मुख्य स्थान है। यहाँ आपके कपड़े और ग्रंथ अब भी रक्खे हैं। दादूदयाल तथा सुंदरदास की कविता श्रेष्ठ है, किंतु अन्य साधारण संतों की रचनाएँ निम्न कोटि की हैं। इसी से इनके उपदेशों का प्रभाव उच्च कोटि के हिंदू-समाज पर कम पड़ा है। इनमें से बहुतों ने निर्गुण मत का प्रचार किया। एक तो निर्गुण-साहित्य यों भी कुछ फीका आता है, और फिर इन लोगों में साहित्यिक प्रौढ़ता भी साधारणी थी। उधर सगुणवादी सूरदास, तुलसीदास आदि परमोच्च कवि हुए। इन्हीं कारणों से इतरों की कौन कहे, स्वयं कबीरदास की धार्मिक रचना समाज पर प्रभाव न डाल सकी, यद्यपि उनकी साधारण लोक-संबंधी रचनाएँ अब भी चलती हैं।

उदाहरण —

मन रे राम बिना तन छीजइ,
जब यह जाइ मिलइ माटी में तब कहु कइसहि कीजइ।
पारस परस कंचन करि लीजइ सहज सुरत सुखदाई,
माया बेलि बिषै फल लागे तापर भूलु न भाई।
जब लगि प्रान पिंड है नीका तब लगि तू जिनि भूलइ;
यह संसार सेमर के सुख ज्यों तापर तूँ जिनि फूलइ।
औरउ यही जानि जग जीवन समझ देखि सच पावइ,
अंग अनेक आन मति भूलइ दादू जिनि डहकावइ।

अजहुँ न निकसे प्रान कठोर,
दरसन बिना बहुत दिन बीते सुंदर प्रीतम मोर।

इन्हें सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं। यह पहला मत पुष्ट है। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है कि कमाल कबीरदास के शिष्य थे, और दादूजी कमाल के। कमाल का कबीरदास का निकम्मा पुत्र होना भी प्रसिद्ध है, यथा "बूड़ा बंस कबीर का उपजे पूत कमाल, सतन-सेवा छोड़िकै घर लै आया माल।" "कहत कमाल कबीर का बालका" इत्यादि। फिर भी कमाल कबीर-पंथ की बारह शाखाओं में से एक के अधिष्ठाता थे। दादूजी कभी क्रोध नहीं करते थे, और सब पर दया रखते थे। इसी से इनका नाम दयाल पड़ गया। यह सबको दादा-दादा कहने के कारण दादू कहलाए। यह महाशय बहुत बड़े उपदेशक ऋषि हो गए हैं, और इनका चलाया हुआ मत दादू-पंथ कहलाता है। सुंदरदास, रज्जबजी, जनगोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, खेमदास आदि इनके शिष्य अच्छे कवि भी थे। दादूजी के बनाए हुए सबद और बानी हमारे पास हैं, जिनमें इन्होंने संसार की असारता और ईश्वर (राम)-भक्ति के उपदेश सबल छंदों द्वारा दिए। उन्होंने भजन भी बहुत बनाए। कविता की दृष्टि से भी इनकी रचना मनोहर, स्वानुभव-पूर्ण और यथार्थ भाषिणी है। खोज १९०२ में इनके ३ ग्रंथ और लिखे हैं—(१) दादूजी को अध्यात्म, (२) दादूदयाल को दृत्य और (३) समर्थइ को अंग।

दादू-पंथवाले निर्गुणोपासना की रीति पर निरंजन एवं निराकार की उपासना और सत्तराम द्वारा आपस में अभिवादन करते हैं। ये लोग तिलक, माला कंठी आदि का व्यवहार नहीं करते। आपकी भाषा जयपुरी-मिश्रित पश्चिमी हिंदी है। आपके कुछ पद गुजराती और पंजाबी के भी हैं। कुछ खड़ी बोली की भी क्रियाएँ आपके पदों में हैं। आपने भी कबीर की भाँति हिंदू-मुसलमानों के मिलाने का प्रयत्न किया, और जाति-पाँति को आदर नहीं दिया है। अकबर शाह ने बहुत हठ करके आपको बुलाया, और ४० दिनों तक सत्संग किया। इनके मिलने के पीछे ही उन्होंने 'दीन इलाही' चलाया, और कलमा बदलकर उसी साल 'इलाही कलमा' सिक्कों पर छापा। इलाही कलमा था "अल्ला हो अकबर ज़िल्ले जलालहू।" जन गोपाल ने दादूदयाल की जन्म-लीला कही। सं० १७७१ की इसकी एक लिखित प्रति हमने देखी है। दादूदयाल से

अकबर शाह की भेंट का हाल इसी ग्रंथ में लिखा है। दादूदयाल के शिष्यों में सुंदरदास श्रेष्ठतम कवि और भक्त थे। जन गोपाल ही ने आपको धुन्ना कहा है, यथा (जन्म के विषय में) "धुन्ना के घर भयउ अनंदू।" दादूदयाल सद्गुरु-महिमा, ईश्वरीय व्यापकता, दाया आदि सिखलाकर जाति की अवहेलना करते थे। आप १४ साल आमेर में रहे, फिर मारवाड़, बीकानेर आदि में फिरते हुए १६५९ में नराने में रम गए। वहाँ मे तीन-चार कोस पर नराने की पहाड़ी है, जहाँ जाया-आया करते थे, और वहीं शरीर छोड़ा। यह दादू-पंथियों का मुख्य स्थान है। यहाँ आपके कपड़े और ग्रंथ अब भी रक्खे हैं। दादूदयाल तथा सुंदरदास की कविता श्रेष्ठ है, किंतु अन्य साधारण संतों की रचनाएँ निम्न कोटि की हैं। इसी मे इनके उपदेशों का प्रभाव उच्च कोटि के हिंदू-समाज पर कम पड़ा है। इनमें से बहुतों ने निर्गुण मत का प्रचार किया। एक तो निर्गुण-साहित्य यों भी कुछ फीका आता है, और फिर इन लोगों में साहित्यिक प्रौढ़ता भी साधारणी थी। उधर सगुणवादी सूरदास, तुलसीदास आदि परमोच्च कवि हुए। इन्हीं कारणों से इतरों की कौन कहे, स्वयं कबीरदास की धार्मिक रचना समाज पर प्रभाव न डाल सकी, यद्यपि उनकी साधारण लोक-संबंधी रचनाएँ अब भी चलती है।

उदाहरण —

मन रे राम बिना तन छीजइ,
जब यह जाइ मिलइ माटी में तब कहु कइसहि कीजइ।
पारस परस कँचन करि लीजइ सहज सुरत सुखदाई,
माया बेलि विषै फल लागे तापर भूलु न भाई।
जब लगि प्रान पिंड है नीका तब लगि तू जिनि भूलइ;
यह ससार सेमर के सुख ज्यों तापर तूँ जिनि फूलइ।
औरउ यही जानि जग जीवन समझ देखि सच पावइ,
अग अनेक आन मति भूलइ दादू जिनि डहकावइ।

अजहुँ न निकसे प्रान कठोर,
दरसन बिना बहुत दिन बीते सुंदर प्रीतम मोर।

चार पहर चारहुं जुग बीते रैन गँवाई भोर,
अवधि गए अजहू नहि आए कतहुँ रहे चितचोर।
कबहू नैन निरखि नहि देखे मारग चितवत तोर;
दादू अइसहि आतुरि विरहिनि जइसहि चद चकोर।

स० १६२५ के लगभग के गद्य का उदाहरण

मोहिल अजीत नै रॉणो वछो श्यॉरी राजनाथ लाडणु नै छापर हुतो नै द्रोणपुर मोहित कान्हो बसतौ। पछै महाराइ श्रीजोधैजो सगला नुँ मारिनै मोहिलाँरी धरती लेनै राजि श्रीवेदीजीनु राखियौ। जोधपुर तुरकाणी छै। चंदसेणजी राम कहो ताहरा टीको आसकननु दीनो। पछै कितरेहेके दिहाडे उगरसेन कहो जु मो कन्हा चाकरी करोडी की नहीं।

(हिं० ऐकेडेमी ति० प०, जुलाई, १६३५)

(१७२) तुकाराम

आप महाराष्ट्र देश में एक ऊंचे दर्जे के प्रसिद्ध संत हो गए हैं। महाशय भालेरावजी ने अपने लेख 'हिंदी-साहित्य के इतिहास के अप्रकाशित परिच्छेद' (नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०, अंक १-२) में इनका काल शाके १४६० (सवत् १६२५) निश्चित रूप में दिया है। आप जाति के शूद्र थे, और व्यापार किया करते थे। कहा जाता है, एक समय व्यापार में टोटा होने तथा भारी अकाल पडने से आप सांसारिक बातों से विरक्त होकर ईश-चितवन में संलग्न हो गए। आपके दो भाई थे, जिनमें से छोटे भ्राता महात्मा कान्होबा भी अच्छे संत और कवि थे (नं० २६० देखिए)।

महात्मा तुकारामजी भागवत-धर्मांतर्गत वारकरी-पंथ के जन्मदाता माने जाते हैं। यह पथ महाराष्ट्र देश में अद्यावधि प्रचलित है।

पढरपुर इस पंथ के अनुयायियों का केंद्र है। आपकी अटल भगवद्भक्ति ख्याति-पूर्ण है। यह ईश-चिंतवन सर्वदा काव्य ही में किया करते थे, और इसी कारण आपकी मराठी-रचनाएँ बृहत् रूप में हैं। इनके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इनके चरित्र में हिंदी-कवि-सम्राट् महात्मा तुलसीदासजी और साहित्य-सूर्य सूरदासजी की प्रतिभा का सयुक्त रूप विद्यमान कहा जाता है।

आपकी कविता भक्ति-रस-पूर्ण, सरल, भावना-प्रधान तथा महाराज व्यावहारिक वार्तों से व्याप्त है श्रीछत्रपति शिवाजी महाराज ने आपसे गुरु-मंत्र लेने की इच्छा प्रकट की, किंतु भौतिक जगत् से औदासीन्य धारण करने के कारण आपने उक्त महाराज से श्रीरामदासजी को अपना गुरु बनाने का अनुरोध किया। आपके ग्राम-निवासी पंडितगण आपकी अपूर्व प्रसिद्धि से आपसे ईर्ष्या करने लगे थे। इस कारण आपको अपना ग्राम भी छोड़ देना पड़ा, किंतु अंत में आपकी प्रतिभा से पराजित होकर वे लोग आपके शिष्य हो गए। इनकी ईश-भक्ति का प्रभाव हिंदू-समाज ही पर नहीं पड़ा, वरन् मुसलमान भी इनके समय में श्रीविट्ठलजी की उपासना पंढरपुर में रखने लगे थे। यह सौभाग्य की बात है कि आपकी बनाई हुई उपदेश-पूर्ण हिंदी-कविताएँ भी पाई जाती हैं। कहा जाता है, यह महात्मा स० १७०६ में स्वर्ग सिधारे।

उदाहरण—

तुका बड़ो वह ना तुलै, जाहि पास बहु दाम ;
बलिहारी वा वदन की, जेहि ते निकसे राम।
तुका कहे जग भ्रम परा, कही न मानत कोय ,
हाथ परेगो काल के, मारि फोरिहै डोय।
लोभी के चित धन बैठे, कामिनि के चित काम ,
माता के चित पूत बैठे, तुका के मन राम।
राम कहे सो मुख भलो, खाए खीर न खाँड ;
हरि बिनु मुख में धूल पड़ी, क्यों जनी उसे राँड।
कहे तुका भला भया, हुआ संतन का दास ;
क्या मानूँ केते मरता, न मिटती मन की आस।

× × ×

क्या गाऊँ कोई सुननेवाला ;
देखें तो सब जगही भूला।
खेलो अपने रामहि साथ ;
जैसी वैसी कर रहें भाव।

कहाँ से लाऊँ मधुरी बानी ;
रीझे ऐसी लोक बिरानी ।
गिरिधरलाल भाव का भूखा ;
राग कला नहिं जानत तूका ।

× × ×

आप तरे ताकी कौन बड़ाई , औरन कूँ भलो नाम धराई ।
काहे भूमि इतनो भार राखे , दुभत धेनु नहिं दूध चाखे ।
वरसत मेघ फल ही बिरखा , कौन काम उनने अपना रक्खा ।
काहे चंदा सूरज खावे फेरा , छिन एक बैठ पावत न घेरा ।
काहे पारिस कंचन करे धातू , नहीं मोल टूटत पावत घातू ।
कहे तुका उपकारहि काज , सबकर रहिया श्रीरघुराज ।

× × ×

उपर्युक्त छंदों में छदोभंग बहुत हैं । यह अज्ञानी लेखकों का प्रमाद समझ पड़ता है । थोड़े विचार से शुद्ध हो सकते हैं ; किंतु प्राचीन प्रतिष्ठित कवियों की बिगड़ी हुई रचना में भी हाथ लगाना अनुचित समझकर जैसी-की-तैसी उद्धृत कर दी है ।

(१७३) गंग ब्रह्मभट्ट

गग भट्ट ने सवत् १६२७ में 'चंद छंद बरनन की महिमा' नाम्नी पुस्तक खड़ी बोली गद्य में लिखी । इसमें केवल १६ पृष्ठ हैं । ग्रंथ में कहा गया है कि यह वर्णन गंग भट्ट ने बादशाह अकबर को १६२७ में सुनाया और विष्णु-दास ने १६२९ में ग्रंथ लिखा । अब तक के ज्ञात कवियों में यह कवि खड़ी बोली गद्य का प्रथम लेखक है । यह प्रसिद्ध कवि गग भी हो सकता है । इन दोनो कवियों की काव्य-प्रौढ़ता में बड़ा अंतर अवश्य है ।

उदाहरण—

सिद्धि श्री श्री १०८ श्री श्री पातसाही जि श्री दलपतिजी अकबर-साहाजी आम खास में तखत ऊपर विराजमान हो रवेह । और आम खास भरने लगा है जीसमें तमाम उमराव आय-आय कुणश बजाय-बजाय जुहार करके अपनी-अपनी

बैठक पर बैठ जाया करै अपनी-अपनी मिशल से जिनकी बैठक नहीं सो रेसम के रसे में रेसम कीलू में पकड़-पकड़ के पढ़ेता थिन में रहै।

इतना सुन के पातसाहाजी श्रीअकबरसाहाजी आठ सेर सोना नाहरदास चारन को दिया इनके डेढ़ सेर सोना हो गया रास वंचना पूरन भया अमकास वरकास हुआ जीसका संवत १६२७ का मेती मधुमास सुदी १३ गुरुवार के दिन पूरन भए।

नाम—(१७४) चंपादे रानी। समय—लगभग १६२७।
ग्रंथ—शृंगार-रस के स्फुट छंद।
विवरण—बीकानेर-नरेश महाराजा पृथ्वीराज की रानी। कविता राजस्थानी मिश्रित हिंदी में।

(१७५) एकनाथ स्वामी (१६२८)

यह महाराष्ट्र देश में एक प्रसिद्ध संत हो गए हैं। इनका निवासस्थान पैठन (प्रतिष्ठानपुर) था। महाशय भालेरावजी के कथनानुसार आपका समय सं० १६२८ (शाके १४९३) निश्चित जान पड़ता है। दक्षिण में दृढ़ रूप से भागवत-धर्म स्थापित करने का श्रेय आप ही को प्राप्त है। हिंदू-धर्म एवं जाति-गौरव की रक्षा की दृष्टि से यह समय महाराष्ट्र के लिये बहुत महत्त्व का था। इस समय दक्षिण में यवनों का आतंक छाया हुआ था, और इस कारण हिंदू-धर्म की स्थिति शोचनीय हो गई थी। देश के सौभाग्य से इसी समय एक-से-एक बढ़कर स्वार्थत्यागी, देशाभिमानी, उत्कट भगवद्भक्त संतगण क्रमशः महाराष्ट्र में अवतीर्ण हुए, और इन महात्माओं ने अपनी संतवाणी द्वारा देश के धर्म तथा जाति की रक्षा की। महाराष्ट्र के इसी संत-संघ में से श्रीएकनाथजी हैं। आप जनार्दन स्वामी के शिष्य तथा भानुदासजी के प्रपौत्र (देखो नं० १०७ और ११९) थे। आपने गृहस्थाश्रम को भी अपनाया। साहित्यिक रचना की दृष्टि से 'ज्ञानेश्वरी' के संबंध में जो काम आपने किया वह बड़े ही महत्त्व का है। आपके समय में श्रीज्ञानेश्वरी-रचित 'श्रीज्ञानेश्वरी'-ग्रंथ लुप्तप्राय हो चुका था, अथ च दो शताब्दी पूर्व की उसकी भाषा में और तत्कालीन भाषा में बड़ा अंतर हो जाने के कारण कुछ दुर्बोध-सा हो गया था। आपने इस महद्

ग्रंथ का शुद्धीकरण करके इसे नए संस्करण में प्रकट किया। महाशय भालेरावजी का कथन है कि इतिहासाचार्य राजवाडेजी की संशोधित ज्ञानेश्वरी को छोड़कर महाराष्ट्र में प्रायः सभी प्रतियाँ इन्हीं महात्मा की शुद्ध की हुई हैं। कहा जाता है, आपने केवल २५ वर्ष की आयु में 'एकनाथी भागवत'-नामक एक अपूर्व ग्रंथ बनाया। 'ज्ञानेश्वरी', 'दासबोध'- जैसे महामान्य ग्रंथों की श्रेणी में स्थान प्राप्त करने की योग्यता इसी एक ग्रंथरत्न को है। इसके अतिरिक्त आपके बनाए हुए श्रीरुक्मिणी-स्वयंवर, स्वात्मसुख, भावार्थ रामायण आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। आपकी रचना मधुर, सद्भाव से संचारित, सात्त्विक विचारों से भरी हुई तथा गूढ़ विषयों को भी सरलता से वर्णन करनेवाली है। आपने उत्तर-हिंदुस्थान में भी भ्रमण किया, और कुछ दिन काशीजी में निवास करके भागवत आदि ग्रंथों को वहीं संपूर्ण किया। इन्हें हिंदी-भाषा से भी बड़ा प्रेम था। इनकी बहुत-सी हिंदी-कविता उपलब्ध है।

उदाहरण—

अल्ला रखेगा वैसा रहना, मौला रखेगा वैसा रहना।
कोई दिन सिर पर छतर उडावे, कोई दिन सिर पर घड़ा चढ़ावे।
कोई दिन तुरग ऊपर चढ़ावे, मालस खासा चढ़ावे।
कोई दिन शक्कर दूध मलीदा, कोई दिन अल्ला माँगत जुदा।
कोई दिन सेवक हाँथ जोड खडे, कोई दिन नजीक न आवत ठड़े।
कोई दिन राजा वडा अधिकारी, एक दिन होय कंगाल भिखारी।
एका जनार्दन करत करतारी, गाफल क्यों करता मगरूरी।

× × ×

देव छिनाल का-छिनाल का, खेल खिलाडी बाँका।
छूट पड़ा सुखर को बाँटा, जाकर झरोखे में बैठा।
बडा धरम का दाता, नहिं जाति पाँति कुछ नाता।
एक नाथ का वाली, उसे कौन देवे गाली।

× × ×

दिल की गाँठ खोलो, यारो नाम बोलो॥ १॥

कोई नहिं आवे साथ, भुंडे काहे कूँ करे वात ॥२॥
जोरू लरके माँ वाप; सब पसारे हाँथ ॥ ३ ॥
हत्ती घोड़े पालख मैना; नहीं आवे साथ ॥ ४ ॥
दो दिन का वजार यारो; काहे कूँ करता वात ॥ ५ ॥
झूठी माया झूठी काया; झूठा सब दिन रात ॥ ६ ॥
एका जनार्दन बोले भाई; कोई नहीं आए साथ ॥ ७॥

× × ×

हजरत मौला मौला; सब दुनिया पालनवाला।
सब घरमों साईं बिराजे; करत है बोल वाला।
गरीबनवाज मैं गरीब तेरा, तेरे चरनन कूँ रत वाला।
अपना साथी समझ के लेना, सलील वोही अल्ला।
जिन रूप से है जगतपसारा; वोही सल्लाल अल्ला।

(१७६) श्रीभट्ट महाराज निंबार्क-संप्रदाय के वृंदावन-वासी वैष्णव थे। इनका कविता-काल जाँच से १६२९ सं० के लगभग जान पड़ा है। इनका 'आदि वाणी'-नामक ग्रंथ ५० मँझोले पृष्ठों का हमने छतरपुर में देखा है। रचना जी-लोभावनी है। इनका वर्णन नाभादास ने भक्तमाल में किया है। इनका जुगुलशत ग्रंथ खोज (१९००) (द्वि० त्रै० रि०) में लिखा है।

उदाहरण—

बने बन ललित तृभंग बिहारी,
बसी-धुनि मनु बंसी लाई आईं गोपकुमारी।
अरप्यो चारु चरन पद ऊपर लकुट कच्छ तर धारी;
श्रीभट मुकुट चटक लटकनि मैं अटकि रहे प्रिय प्यारी।

(१७७) विहारिनिदासजी महात्मा श्रीहरिदासजी के शिष्य थे। इनका कविता-काल लगभग संवत् १६२९ है। इन्होंने 'साखी' बनाई, जिसकी एक भारी टीका किसी बाबाजी ने की। साखी में ६५० छंद हैं, जिनमें से कुछ छोड़कर शेष दोहे हैं। इसी ग्रंथ की टीका १०८९ बड़े पृष्ठों में हुई। इन्होंने ११६ पदों का एक दूसरा ग्रंथ रचा। ये ग्रंथ छतरपुर में हैं। इनकी गणना

साधारण श्रेणी में है। द्वितीय त्रैवार्षिक खोज में इनका एक ग्रंथ समय-प्रबंध मिला है।

उदाहरण—

कूकर चौक चटाइए चाको चाटन जाय,
श्रीहरिदासन पीठि दै जीवन जाचत धाय।
जाको सदका खाइए ताही की करि आस;
जाके द्वारे जायगो ताके आस पचास।

साधन सबै प्रेम के तरु हरि;
निकसत उमँग प्रगट अकुर वर पात पुराने परिहरि।
गुन सुनि भई दास की आसा दरस्यो परस्यो भावै,
जब दरस्यो तब बोल्यो चाहै बोले हू हँसि आवै।

विट्ठल विपुल के पीछे यह हरिदास स्वामी की गद्दी के अधिकारी हुए।

नाम—(१७८) नागरीदास श्रीहितवनचंद्र के शिष्य।

ग्रंथ—(१) समय-प्रबंध, (२) समय-प्रबंध [दूसरा]।

रचना-काल—१६३०।

विवरण—इनके प्रथम ग्रंथ में सात समय की सेवा का वर्णन है, तथा अन्य महात्माओं के पद संगृहीत है। उसमें विशेषतया श्रीहितहरिवंशजी के पद है। इसका आकार रॉयल अठपेजी १२२ पृष्ठों का है। द्वितीय में स्वयं इनकी रचना है, जिसमें कुल ३३१ पद हैं। इनके ९३५ दोहे भी बड़े भाव-युक्त तथा गंभीर है। कविता इनकी प्रशंसनीय है। हम इन्हें तोष की श्रेणी का कवि मानते है। ये ग्रंथ हमने दरबार छतरपुर में देखे हैं। यह हित-संप्रदाय में थे।

उदाहरण—

मेरो झूमत हथिया मद को,
पिय हिय हिलगि परी पग सों कर मैयत अपनी सदको।
सुरति नदी मरजादा ढाहत मन गुमान अनुराग उलद को,

नागरिदास बिनोद मोद मृदु आनँद वर विहार वेहद की
प्यारी जोरी कै तनु मोरत ,
बंक बिसाल छबीले लोचन भ्रू बिलास चित चोरत ।
कनक-लता-सो आगे ठाढ़ी मन अरु डीठि अगोरत ,
उघटी बर कुच तटी पटी तैं छवि मरजादहिं फोरत ।
अति रस बिबस पियहि उर लावत केलि कलोल झकोरत ,
नागरिया ललितादि निरखि सुख लै बलाय तिन तोरत ।

इस समय के अन्य कविगण (१५६१—१६३०)

नाम—(१७९) मुनि आनद । ग्रंथ—विक्रम वापर-चरित ।

रचना-काल—१५६२ । नाम—(१८०) लावण्यसमय गणि ।

ग्रंथ—(१) बिमल मन्त्रीरास (१५६८), (२) कर-संवादरासा (१५७५) ।

रचना-काल—१५६८ । नाम—(१८१) सहजसुंदर ।

ग्रंथ—गुण-रत्नाकर । रचना-काल—१५७२ ।

विवरण—इस जैन-कवि की संस्कृत तथा प्राकृत-मिश्रित हिंदी है ।

नाम—(१८२) अमरदास ।

ग्रंथ—भगत-विरुदावली (प्र० त्रै० रि०) । रचना-काल—१५७७ ।

विवरण—नानक महाराज के शिष्य हैं । कहीं-कहीं इनका समय १७३६ भी मिला है ।

नाम—(१८३) सिद्धराम ।

ग्रंथ—(१) साखी, (२) शब्द, (३) वैराग को अंग, (४) योग-ध्यान का अग, (५) शब्द,-वाचनी (तृ० त्रै० रि०) ।

रचना-काल—१५८२ ।

विवरण—चरणदास के शिष्य रामरूप के चेला थे ।

नाम—(१८४) धर्मदास गणि ।

ग्रंथ—उपदेशमाला वालवोध । रचना-काल—१५८५ ।

विवरण—गद्य-ग्रंथ ।

नाम—(१८५) छेम बंदीजन, डलमऊ। रचना-काल—१५८७।

विवरण—हुमायूँ बादशाह के समय दिल्ली में थे। साधारण श्रेणी।

नाम—(१८६) मोतीलाल, बाँसी, बस्ती। ग्रंथ—गणेशपुराण भाषा। रचना-काल—१५९० (खोज १९०१) विवरण—साधारण श्रेणी।

नाम—(१८७) सहजसुंदर।

ग्रंथ—रत्नसागर कुमारदास। रचना-काल—१५९२।

नाम—(१८८) सूरदास, संडीले के अमीन (मदनमोहन के शिष्य)।

ग्रंथ—स्फुट। रचना-काल—१५९५ के लगभग।

विवरण—इनका नाम बाबू राधाकृष्णदास ने ध्रुवदास-कृत भक्त-नामावली के नोट नं० १६ में लिखा है। आपकी रचना सूरदास की वाणी में मिल गई है। इन महाशय ने सरकारी आय से १३ लाख रुपए संतों को खिला दिए तथा मालगुजारी की संदूकों में पत्थर भरकर निम्न-लिखित दोहा लिख भेजा—

तेरह लक्ख सडीले आए सब संतन मिलि गटके,
सूरजदास मदनमोहन कवि राति आधि ही सटके।

अकबर बादशाह ने इन्हें माफ़ भी कर दिया, किंतु आपने लज्जा-वश अमीनी के पद पर न पलटकर वृंदावन में ही रहना पसंद किया। नाम एक होने तथा विषय सादृश्य से आपके पद्य सूरदास-वालों में मिल गए हैं।

नाम—(१८९) केशवदास ब्रजवासी, कश्मीर के रहनेवाले।

ग्रंथ—भ्रमरबत्तीसी। रचना-काल—१५९८ (खोज १९०२)

विवरण—साधारण श्रेणी। नाम—(१९०) गंगा स्त्री।

ग्रंथ—स्फुट पद। रचना-काल—१६०८ के लगभग।

विवरण—इनका और यमुना के नाम ध्रुव-कृत भक्त-नामावली में हैं। ये गोस्वामी श्रीहितहरिवंश की चेलियाँ थीं।

नाम—(१९१) जमुना स्त्री। ग्रंथ—स्फुट पद।

रचना-काल—१६०० के लगभग। विवरण—देखिए नं० ९७।

नाम—(१९२) गदाधर मिश्र, ब्रजवासी। जन्म संवत्—१५८०।

रचना-काल—१६०५।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं। इनकी कविता परमोत्तम है। तोष कवि की श्रेणी के कवि हैं।

नाम—(१९३) दील्ह। रचना-काल—१६०५।

नाम—(१९४) माधवदास ब्राह्मण, जगन्नाथ पुरीवाले।

जन्म-संवत्—१५८०। रचना-काल—१६०५।

नाम—(१९५) आसकरनदास, नरवरगढ़, ग्वालियर।

रचना-काल—१६०६।

विवरण—पद बनाए हैं। साधारण श्रेणी के कवि हैं। नरवरगढ़ के राजा भीमसिंह के पुत्र थे।

नाम—(१९६) धरमदास। ग्रंथ—आत्मबोध।

रचना-काल—१६०७। नाम—(१९७) फहीम।

ग्रंथ—स्फुट दोहे। रचना-काल—१६०७।

विवरण—शेख़ अबुलफ़ज़ल के छोटे भाई थे।

नाम—(१९८) रामदास बाबा, गोपाचलवाले।

रचना-काल—१६०७। विवरण—अकबर के यहाँ गाते थे।

नाम—(१९९) हरिराय वल्लभीय।

ग्रंथ—(१) आचार्यजी महाप्रभून की द्वादस निजवार्ता, (२) श्रीआचार्यजी महाप्रभून के सेवक चौरासी वैष्णवों की वार्ता, (३) श्रीआचार्य महाप्रभून की निज वार्ता वा घरू वर्ता, (४) ढोलामारू की वार्ता, (५) भागवती के लक्षण, (६) द्विदलात्मक स्वरूप-विचार, (७) गद्यार्थ भाषा, (८) गोसाईंजी के स्वरूप के चिंतन को भाव, (९) कृष्णावतार स्वरूप निर्णय, (१०) सातों स्वरूप की भावना, (११) वल्लभाचार्यजी के स्वरूप को चिंतन भाव, वरसोत्सव, यमुनाजी के नाम।

रचना-काल—१६०७।

नाम—(२००) इबराहिम आदिलशाह, बीजापुर-नरेश।

ग्रंथ—नौरस। रचना-काल—१६०८।

विवरण—इन शाह बीजापुर ने रस और रागों पर नौरस-नामक ग्रंथ बनाया था, जिसकी तारीफ़ ज़हूरी ने की है ।

नाम—(२०१) गोविंदराम, राजपूतानेवाले । ग्रंथ—हाड़ावती ।

रचना-काल—१६०९ । विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(२०२) ऊधोराम । रचना-काल—१६१० के लगभग ।

विवरण—साधारण श्रेणी । नाम—(२०३) गोस्वामी वनचंद्रजी ।

ग्रंथ—स्फुट पद (तृ० त्रै० रि०) ।

रचना-काल—१६१० ।

विवरण—हितहरिवंश के चौथे पुत्र । साधारण कवि । इनके वंशधर गिरिधरलाल झाँसी में हैं ।

नाम—(२०४) मानराय वंदीजन, असनीवाले ।

जन्म-संवत्—१५८० । रचना-काल—१६१० ।

विवरण—अकबरशाह के यहाँ थे । नाम—(२०५) लालदास स्वामी ।

ग्रंथ—(१) वानी, (२) मंगल, (३) चेतावनी, (४) स्फुट पद ।

रचना-काल—१६१० ।

विवरण—देवबन ज़िला मथुरा निवासी गोस्वामी गोपीनाथ के शिष्य थे ।

नाम—(२०६) गोसानंद । ग्रंथ—भक्तिभावती ।

रचना-काल—१६११ (खोज १९०१) ।

नाम—(२०७) विनयसमुद्र, बीकानेर ।

ग्रंथ—सिंहासनबत्तीसी । रचना-काल—१६११ (खोज १९०१) ।

नाम—(२०८) ब्रह्मरायमल जैन ।

ग्रंथ—(१) हनुमत-मोच-कथा (१६१६), (२) श्रीपाल-रासो (१६३०) (खोज १९००) ।

रचना-काल—१६१३ ।

नाम—(२०९) गोप । इनका टीका नं० ६६३ है ।

ग्रंथ (१) रामालंकार (रामभूषण), (२) अलंकार-चंद्रिका ।

जन्म-संवत्—१५९० । रचना-काल—१६१५ ।

विवरण—महाराज पृथ्वीसिंह ओरछा-नरेश के यहाँ थे।

नाम—(२१०) जोध। जन्म-संवत्—१५९० रचना-काल—१६१५।

विवरण—अकबर शाह के यहाँ थे।

नाम— (२११) पुरुषोत्तम, बुंदेलखंडी। ग्रंथ—राजविवेक।

रचना-काल—१६१५।

विवरण—फ़तेहचंद कायस्थ के यहाँ थे। खोज १९०३ में इनका रचना-काल १७१५ लिखा है।

नाम—(२१२) भगवानदास, मथुरा-निवासी।

जन्म-संवत्—१५९०। रचना-काल—१६१५।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं। नाम—(२१३) बदन।

ग्रंथ—(१) गणेशव्रत-कथा, (२) भगवानस्तुति (५२ छंद)।

रचना-काल—१६१६। विवरण—छतरपुर में देखे।

नाम— (२१४) मोहनलाल मिश्र (चूरामणि के पुत्र), चरखारी।

ग्रंथ—शृंगारसागर।

रचना-कल—१६१६ (खोज १९०७)।

विवरण—रीति-ग्रंथ कहा है। साधारण श्रेणी।

नाम—(२१५) रायमल्ल पाँडे।

ग्रंथ—हनुमच्चरित्र। रचना काल—१६१६।

विवरण—भट्टारक अनंतकीर्ति के शिष्य थे।

नाम—(२१६) गोपाल।

ग्रंथ—(१) रामभूषण, (२) अलंकार-चंद्रिका।

जन्म-संवत—१५९०। रचना-काल—१६२०।

नाम—(२१७) गंगाप्रसाद ब्राह्मण, यकनौर, ज़िला इटावा।

जन्म-संवत्—१५९५। रचना-काल—१६२०।

विवरण—अकबर शाह के दरबार में थे। एक रीति-ग्रंथ बनाया है।

---

*२०६ नं० के कवि और यह शायद एक ही हैं।

नाम—(२१८) जगदीश ।

जन्म-संवत्—१५८८ । रचना-काल—१६२० ।

विवरण—यह अकबर शाह के यहाँ थे । इनकी कविता मनोहर है, गणना साधारण श्रेणी में है ।

नाम—(२१९) नारसिया उपनाम नरसी, जूनागढ़, गुजरातवाले ।

जन्म-संवत्—१५९० । रचना-काल—१६२० ।

नाम—(२२०) प्रसिद्ध ।

जन्म-संवत्—१५९० । रचना-काल—१६२० ।

विवरण- साधारण श्रेणी । खानखाना के यहाँ थे ।

नाम—(२२१) रामचंद्रमिश्र ।

ग्रंथ—रामविनोद (द्वि० त्रै० रि०) । रचना-काल—१६२० ।

विवरण—सेहरा-ग्राम पंजाब-प्रांत में रहते थे । पिता का नाम केशव-दास था ।

नाम—(२२२) लक्ष्मणशरणदास ।

रचना काल—१६२० । विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(२२३) सर्वजीत । ग्रंथ—विष्णुपद (खोज १९०४) ।

रचना-काल—१६२० ।

विवरण—तोप-श्रेणी । इनका समय अज्ञात है पर कविता सौर-काल की समझ पड़ती है ।

नाम—(२२४) गोपाल । ग्रंथ—समस्याचिमन (चमन) ।

रचना-काल— १६२१ । विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(२२५) आनंद कायस्थ, कोटहिसार के ।

ग्रंथ—'कोकसार' या 'कोक-मंजरी' । रचना-काल—१६२२ ।

विवरण—शायद यह १७११ वाले आनंद हों ।

नाम—(२२६) जयचंद, श्रीथलड़ी (सिकंदराबाद के निकट) ।

ग्रंथ—(नासकेतु-कथा का अनुवाद । रचना-काल—सं० १६२४ ।

नाम—(२२७) परबत । रचना-काल—१६२४ ।

विवरण—साधारण श्रेणी। नाम—(२२८) अभयराम, वृंदावन।

जन्म-संवत्—१५६१ ।

रचना-काल—१६२५। विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(२२९) कृष्णचंद गोस्वामी।

ग्रंथ—(१) सिद्धांत के पद, (२) कृष्णदास के पद ।

रचना-काल—१६२६ (तृ० त्रै० रि०) ।

विवरण—हितहरिवंश के द्वितीय पुत्र। नाम—(२३०) जमाल ।

ग्रंथ—(१) जमालपचीसी। (२) भक्तमाल की टिप्पणी।

जन्म-संवत्—१६०२ । रचना-काल—१६२७।

विवरण—गूढ़ काव्य बनाया है। साधारण श्रेणी।

नाम—(२३१) भगवत रसिक, वृंदावनवासी ।

ग्रंथ—(१) अनन्यनिश्चयात्मक, (२) श्रीनित्यविहारी युगुल-ध्यान, (३) अनन्यरसिकाभरण, (४) निश्चयात्मक ग्रंथ उत्तरार्ध, (५) निर्बोध-मनरंजन (खोज १९००)।

रचना-काल—१६२७।

विवरण—स्वामी हरिदास के शिष्य। काव्य साधारण श्रेणी का है।

नाम—(२३२) गेहर गोपाल। इन्होंने गोकुलनाथ की प्रशंसा में कविता की है ।

रचना-काल—१६३०। नाम—(२३३) चतुरविहारी, ब्रजवासी।

जन्म-संवत्—१६०५। रचना-काल—१६३०।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में है। साधारण श्रेणी की कविता की है।

नाम—(२३४) जैतराम। जन्म-संवत्—१६०१। रचना-काल—१६३०।

ग्रंथ—(१) गीता की टीका। (२) सील-रासा ।

विवरण—यह अकबर शाह के दरबार में थे। साधारण श्रेणी।

नाम—(२३५) नरसी महताजी, जूनागढ़।

ग्रंथ—(१) स्फुट पद, (२) सामलदास का विवाह।

रचना-काल—१६३० ।

विवरण—महाशय भालेरावजी ने अपने लेख 'गुजरात का हिंदी साहित्य' (माधुरी वर्ष ५, खंड २, सख्या ३) में इनका समय स० १४७०-१५३० का दिया है ।

नाम—(२३६) नाथ व्रजवासी । जन्म सवत्—१६०५ ।

रचना-काल—१६३० । विवरण—निम्न श्रेणी ।

नाम—(२३६ प) रसिक मुकुंद । ग्रंथ—अष्टक (तृ० त्रै० रि०) ।

विवरण—गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य ।

नाम—(२३७) सोनकॅवरि ।

ग्रंथ—सुवर्ण बेलि की कविता (प्र० त्रै० रि०) ।

जन्म-सवत्—१६०१ । रचना-काल—१६३० ।

विवरण—उपनाम सुवरनबेलि महाराजा जैपुर के वश में राधा-वल्लभी सम्प्रदाय ।

पूर्व मध्य काल में धार्मिक प्रसार सीधा-सीधा देखने में आया । सिवा विद्यापति ठाकुर और कबीरदास के उस काल कोई परमोत्कृष्ट कवि न हुआ । धर्म ने तो उन्नति बहुत अच्छी की, तथा भाषा भी उच्चतर हुई, किंतु साहित्यिक सौंदर्य की स्थिति कवियों की गणना में कम रही । इधर सौर काल भी रहा । धार्मिक अभिवृद्धि का ही, किंतु इनमें साहित्यिक सौंदर्य की मुख्यता रही, और कोरे धर्म की कमी । हमारे साहित्यिक क्षेत्र मे प्रांतीयता हटकर राष्ट्र-भाषा के रूप में व्रज-भाषा का स्थापन हुआ । भाषा का सौंदर्य भी अच्छा प्रस्फुटित हुआ । सौर काल की रचनाओं में शृंगार-सौंदर्य का इतना प्रसार हुआ कि धार्मिक संदेश डूब-सा गया । पूर्व मध्य काल में ४ सूफ़ी कवि हुए थे, किंतु सौर काल में मझन (नं० १४३) और जायसी (नं० १४४)-नामक दो ऐसे कवि मिलते हैं । जायसी की रचना साहित्यिक सौंदर्य में इतर सूफी कवियों से बहुत बढ़ी-चढ़ी है । फिर भी कृष्ण-भक्ति के प्रभाव से सूफ़ी-साहित्य की वृद्धि कुछ दब-सी अवश्य गई । गत अध्याय मे हम गुरुओं को धर्म-स्थापन करते पाते हैं, और सौर काल में उन बीज-रूपी सिद्धांतों का साहित्यिक प्रस्फुटन । निर्गुण-

धारा, जो कबीर और नानक के द्वारा बही थी, इस काल दादूदयाल और उनके अनुयायियों द्वारा चलाई गई। फिर भी मुख्यता सगुणवाद की रही। यद्यपि रामानद तथा वल्लभ को राम और कृष्ण-सबंधिनी दक्षिण और वाममार्ग की भक्ति पूर्व काल में चलाई गई थी, तथापि सौर काल में रामानंदी भक्ति साहित्यिक क्षेत्र में न बढ़ी तथा वल्लभ और चैतन्य आदि कृष्ण-भक्तों के सिद्धात काव्य-क्षेत्र में अपनाए गए। सूरदास, मीराबाई, अष्टछाप, हितहरिवंश, हरिदास आदि महात्माओं तथा इन संप्रदायों के अनुयायियों द्वारा सौर काल में इस भक्ति ने हमारे यहाँ अच्छा चमत्कार दिखाया। सौर काल हमारे प्राचीन सभी साहित्यिक समयों से छोटा अर्थात् केवल ७० वर्षों का है, किंतु सख्या और सौंदर्य मे इस काल कवि सभी गत समयों से अधिक हुए। गणना में हम इस काल अष्टछाप मिलाकर नबर १२६१ से २३७ तक ११२ कवि पाते हैं, यद्यपि तीनो प्रारंभिक समयों में केवल ७५ कवि थे, और पूर्व मध्य में ५०। भक्त कवियों में उपर्युक्त महात्माओं से इतर निपटनिरंजन, श्रीभट्ट, व्यास, हरिवंश, अली आदि भी उत्कृष्ट कवि थे। विट्ठलनाथ ने कुछ गद्य-रचना व्रजभाषा में की, तथा गोकुलनाथ ने दो भारी ग्रथ व्रजभाषा-गद्य में बनाए। गग भाट ने खड़ी बोली मिला गद्य इस काल चलाया। तुकाराम और एकनाथ महाराष्ट्र देश के महात्मा थे, जिन्होंने रामानद आदि की भाँति उस प्रांत में धार्मिक प्रचार द्वारा समाज-संगठन का प्रयत्न किया। अकबरी दरबार में इस काल नरहरि, महाराज पृथ्वीराज, मनोहर, गंग, तानसेन महाराजा टोडरमल तथा महाराजा बीरबल सुकवि थे। तानसेन गायनाचार्य थे, और स्वामी हरिदास भी। अष्टछाप के तथा इतर महात्मा भी साहित्य-रचना के साथ गायन में भी अर्चा-पूजा करते थे। इस काल के सुकवि जोधपुर, गुजरात जायस, असनी, मेवाड़ वृंदावन, तिरहुत, दिल्ली, आगरा, तिकवाँपुर ओड़छा, बीकानेर-महाराष्ट्र प्रांत आदि पर फैले थे। मुख्यता व्रज-मंडल की थी। हिंदी का क्षेत्र बहुत व्यापक था।

—

आठवाँ अध्याय

गोस्वामी तुलसीदास तथा तुलसी-काल की हिंदी

(१६३१—१६८०)

(२३८) गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी (सं० १६३१)

इनका जन्म संवत् १६८९ में राजापुर, ज़िला बाँदा में सरयूपारीण ब्राह्मण आत्माराम दुबे की धर्मपत्नी हुलसी के गर्भ से, हुआ। माता-पिता ने इनका नाम रामबोला रक्खा। महात्मा रघुबरदास तथा बाबा बेनीमाधव हमारे गोस्वामी जी के शिष्य थे। उन्होंने इनके जीवन-चरित्र लिखे हैं, जिनमें एक दूसरे से अनेक प्रतिकूलताएँ हैं। उनके तुलसी-चरित्र के आधार पर कुछ लोग इनके सर्वमान्य चरित्र, जन्म-संवत्, माता, पिता, भाई आदि के नामों में संदेह करते हैं। उनके विचार में गोस्वामीजी ने ७७ वर्ष की अवस्था में रामायण बनाना प्रारंभ किया, और प्राय. १२० वर्ष की अवस्था में शरीर त्यागा। उनके कथनानुसार गोस्वामीजी बाल्यावस्था में दरिद्री न थे, और उनके भाइयों में नंददास न थे। आर्थिक दरिद्रता का अभाव स्वयं गोस्वामीजी के कथनों के प्रतिकूल है। ७७ वर्ष की अवस्था में रामायण का प्रारंभ होना अनुमान-विरुद्ध है। यही दशा १२० वर्ष की अवस्था की है। किसी ७७ वर्ष के जय्पल में रामचरितमानस से ग्रंथरत्न के बनाने की शक्ति का मानना असंभव-प्राय है। जो कवि इस क्षीणावस्था में ऐसा ग्रंथ बना सकता, वह सबल दशा में क्या न बना डालता? इन दोनों महाशयों के तुलसी-चरित्रों में असंभव बातों की अच्छी भरमार है, तथा कई ऐतिहासिक अशुद्धियाँ हैं। जो लोग असंभव-प्राय तथा अशुद्ध कथन करते हैं, उनके किसी भी निराधार कथन पर दृढ़ विश्वास नहीं हो सकता। सब लोग अपनी अवस्था बढ़ाकर बतलाने में अपना महत्त्व वर्द्धन मानकर इस मिथ्या भाषण में प्राय पड़ते हैं। यही बात इस मामले में भी समझ पड़ती है। गोस्वामीजी का जो जीवन-चरित्र प्रसिद्ध है, वह स्वयं उन्हीं के कथनों तथा प्रसिद्ध रामायण-रसिक रामगुलाम के एवं अन्य दृढ़ आधारों पर अवलंबित है। हम तुलसी-चरित्रों का प्रमाण नहीं मानते हैं। गोस्वामीजी का

मृत्यु-दिन "सावन सुकुला सत्तिमी" माना जाता है, किंतु कुछ लोग बाबा बेनीमाधव के कथनानुसार उसे सावन कृष्णा तीज मानते हैं। यह भी कहा जाता है कि गोस्वामीजी के मित्र टोडर के वंशधर इसी तिथि को अब तक तुलसी का मरण-दिन मानकर पुण्यार्थ सीधा निकालते हैं। यह कुछ अच्छा प्रमाण है। मूल गोसाईं-चरित्र में अनेकानेक ऐतिहासिक अशुद्धियाँ जुलाई, १९३० वाली हिंदोस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका में सप्रमाण दिखलाई गई हैं। हम तुलसी-चरित्र का प्रमाण नहीं मानते। हम गोस्वामीजी का वह सूक्ष्म चरित्र यहाँ लिखते हैं, जो अब तक पंडित-समाज में विशेपतया माना गया है।

बाल्यावस्था में यह अत्यंत दरिद्री थे। फिर इन्होंने श्रम करके कुछ विद्या प्राप्त की। प्राय बीस वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ और इनके तारक-नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, परंतु वह थोड़े ही समय में चल बसा। आप अपनी स्त्री के बड़े प्रेमी थे, जिस पर एक समय उसने इनसे कहा कि तुम यदि इतना प्रेम ईश्वर से करते, तो सिद्ध हो जाते। इसी पर यह घर-बार छोड़ रामानंदी मत के महात्मा नरहरिदासजी के शिष्य हो गए, जिन्होंने इनका नाम तुलसीदास रक्खा। इन्हीं के उपदेश से गोस्वामीजी ने रामायण की रचना की। तुलसीदास तीर्थ-स्थानों पर घूमा करते, परंतु विशेपतया काशीजी में, असीघाट पर, रहते थे। इसी स्थान पर, संवत् १६८० में, इनका शरीरपात हुआ। इन्होंने निम्न-लिखित ग्रंथों की रचना की है, ऐसा कहा जाता है। इनमें बहुतेरे संदिग्ध हैं, अर्थात् वे इन तुलसी-कृत नहीं हैं (हिंदी-नवरत्न देखिए)।

रामचरित्र-मानस (रामायण), कवितावली-रामायण, गीतावली-रामायण, अंकावली*, छंदावली-रामायण, बरवै-रामायण, ध्रुव-प्रश्नावली, पदावली-रामायण, कुंडलिया-रामायण, छप्पै-रामायण करखा-रामायण, रोला-रामायण, झूलना-रामायण, रामाज्ञा, रामलला-नहछू, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल कृष्णागीतावली, हनुमानबाहुक, संकटमोचन, हनुमानचालीसा, रामसलाका, रामसतसई, वैराग्य-संदीपिनी, विनयपत्रिका, तुलसीदास की बानी, कलिधर्माधर्मनिरूपण, दोहावली, ज्ञान को परिकरण, मंगलरामायण, गीता भाषा, सूर्य

[*खोज १६०४]

पुराण, राममुक्तावली और ज्ञानदीपिका। चौथी त्रैवार्षिक खोज में स्वयंवर तथा रामगीता और हनुमानशिक्षामुक्तावली, कृष्णचरित्र तथा सगुनावली भी इनके ग्रंथ मिले हैं। ये ३ ग्रंथ द्वितीय त्रैवार्षिक खोज के हैं*। शिष्य-परंपरा में आपके १२ ग्रंथ माने गए हैं। इनमें से बहुत-से ग्रंथ अच्छे हैं, और उनमें भी रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, कृष्णगीतावली, हनुमानबाहुक और विनयपत्रिका बहुत ही अमूल्य ग्रंथरत्न हैं। इन सब में भी रामचरित-मानस की बराबरी कोई नहीं कर सकता, वरन् यों कहना चाहिए कि इसकी समता हिंदी-साहित्य में क्या शायद किसी भी भाषा का कोई भी काव्य-ग्रंथ नहीं कर सकता। इस ग्रंथरत्न में बहुत-से कवियों ने अपने क्षेपक भी लगा दिए हैं, परंतु उनके कारण रामायण में सिवा दोष के कोई विशेष चमत्कार नहीं आ सका।

कुछ लेखकों ने गोस्वामीजी की कविता में अध्यात्म-रामायण, योगवाशिष्ठ, अद्भुत-रामायण, भुशुंडि-रामायण तथा हनुमन्नाटक के प्रभाव देखे हैं। अध्यात्म-रामायण का प्रचार रामानंदियों में बहुत था ही, सो गोस्वामीजी पर भी उसका कुछ प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। वास्तव में गोस्वामीजी पर सबसे बड़ा प्रभाव वाल्मीकीय रामायण तथा श्रीमद् भागवत का है। फिर भी ठीक बात यह है कि इनमें से कोई ग्रंथ रामचरित-मानस का सामना नहीं कर सकता। यों तो प्रत्येक लेखक का पूर्ववर्ती ज्ञान उसको प्रभावित करनेवाला कहा जा सकता है। गोस्वामीजी ने भी कई सुश्लोकों के अनुवाद करके अपनी रचना में रख दिए हैं, किंतु उनकी महत्ता उन भागों पर न अवलंबित होकर उनके अन्य लोक-मान्य सद्गुणों पर आश्रित है। जिस उत्तमता और दृढ़ता से अपने मुख्य विचारों पर आप ज़ोर देते हैं, वे देखते ही बन आते हैं। भाव सबलता आपका परमोत्कृष्ट गुण है, जो आपकी भक्ति, भाषा और भाव, इन तीनो को चमकाती है। ऐसी पटुता संसार-साहित्य में अद्वितीय है। यदि इसकी आभा मिलती है, तो शेक्सपियर, कालिदास, वाल्मीकि और व्यास में।

---

*खोज [१६०३] से इनके कवित्त-रामायण-नामक और एक ग्रंथ का पता चलता है। प्र० त्रै० रिपोर्ट में इनका तुलसी-सतसई-नामक ग्रंथ मिला है।

गोस्वामीजी ने कविता चार-पाँच पृथक् २ प्रणालियों की रची है, और इनके ग्रंथ देखने से विदित होता है कि मानो वे कई भिन्न-भिन्न उत्कृष्ट कवियों की रचनाएँ हैं। उपमा और रूपक इनके बहुत ही विशद हैं, और उनका हर स्थान पर आधिक्य भी है। इसी प्रकार इस महाकवि ने भाषाएँ भी चार प्रकार की लिखी हैं। इन कथनों के उदाहरण-स्वरूप इनके रामचरित-मानस, कविता-वली, कृष्णगीतावली और विनयपत्रिका-नामक ग्रंथ कहे जा सकते हैं, और इन्हीं चारों ग्रंथों की प्रणालियों पर इनके प्राय सभी शेष ग्रंथ विभाजित किए जा सकते हैं।

गोस्वामीजी का सर्वोत्कृष्ट गुण इनकी अटल भक्ति है, जो स्वामी-सेवक-भाव की है। इन्होंने अपने नायक तथा उपनायकों के शील-गुण खूब ही निबाहे है, ब्राह्मणों की सदैव प्रशंसा की है, परंतु साधारण देवताओं का पद उच्च नहीं रक्खा है। गोस्वामीजी ने निर्गुण-सगुण ब्रह्म, नाम, भक्ति, ज्ञान, सत्संग, माया आदि का बड़ा ही गंभीर निरूपण किया है। यह महाशय भाग्य पर बैठना निंद्य समझते और उद्योग की प्रशंसा करते थे। इनके मत में प्रत्येक कविता करनेवाले का राम-गुण गान करना आवश्यक कर्तव्य है। जहाँ सूरदास जीवन के माधुर्य-मात्र को दिखला रहे हैं, वहाँ तुलसीदास सारे जीवन के गांभीर्य को सामने उपस्थित करते है। इनके गुण अगाध है, और उनका दिग्दर्शन तक यहाँ नहीं कराया जा सकता। जो महाशय इस विषय को कुछ विस्तार से देखना चाहें, वे हमारा हिंदी-नवरत्न अवलोकन करने का कष्ट उठावें। हिंदू-धर्म को महात्मा तुलसीदास ने जैसे बनाया, वैसा वह आज है। हमारे पैगंबरों में बादरायण व्यास, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य रामानंद और गोस्वामी तुलसीदास के नाम गिनाए जा सकते हैं। आप हमारे पैगंबर आखिरुज्जमाँ है।

उदाहरण—

अवधेस के द्वार सकार गई सुत गोद मैं भूपति लै निकसे ;
अवलोकत सोच-बिमोचन को ठगि-सी रही जे न ठगे धिक से।
तुलसी मनरंजन अंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से ;

सजनी ससि मैं सम सील उभै नव नील सरोरुह-से बिकसे।

कवितावली

पखा मोर के जो जरी सीस सोहैं,

लसैं फूल की मुंड माला बिमोहैं।

भलो कुंकुमा भस्म के लेप कीने,

करैं संख को नाद श्रृंगीहि लीने।

ज्ञानदीपिका (सं० १६३१)

बंदौं गुरु पद पदुम परागा, सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिय मूरि मैं चूरन चारू, समन सकल भवरुज परिवारू।
सुकृति संभुतन बिमल बिभूती, मंजुल मंगल मोद प्रसूती।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी, किए तिलक गुनगन बस करनी।
श्रीगुरु पद रज मंजुल अंजन, नैन अमिय दृग दोष बिभंजन।
तेहि करि बिमल बिराग बिलोचन, बरनौं रामचरित भवमोचन।

× × ×

उदित उदय गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग,

बिकसे संत सरोज बन हरखे लोचन भृंग।

नृपन करि आसा निसि नासी, बचन नखत अवली न प्रकासी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने, कपटी भूप उलूक लुकाने।
भए बिसोक कोक मुनि देवा; बरसहिं सुमन जनावहिं सेवा।

× × ×

कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बड़ाई तासु,

राम लखन तुम सत्रुहन सरिस सुवन सुचित जासु।

सब प्रकार भूपति बडभागी, बादि बिषाद करिय तेहि लागी।
यह सुनि समुझि सोच परिहरहू, सिर धरि राज रजायसु करहू।
राय राज पद तुम कहँ दीन्हा, पिता बचन फुर चाहिय कीन्हा।
तजे राम जेहि बचनहि लागी, तनु परिहरेउ राम बिरहागी।
नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना, करहु तात पितु बचन प्रमाना।

करहु सीस धरि भूप रजाई ; यह तुम कहँ सब भाँति भलाई ।
परसुराम पितु अज्ञा राखी , मारी मातु लोग सब साखी ।
तनै जजातिहि जौवन दयऊ , पितु अज्ञा अघ अजस न भयऊ ।
अनुचित उचित विचारु तजि जे पालहि पितु बैन ;
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमर पति ऐन ।
कौसल्या धरि धीरज कहई , पूत पथ्य गुरु आयसु अहई ।
सो आदरिय करिय हित मानी ; तजिय विषादु काल गति जानी ।
बन रघुपति सुरपुर नरनाहू , तुम्ह यहि भाँति तात कदराहू ।
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा , तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा ।
लखि विधि बाम काल कठिनाई ; धीरज धरहु मातु बलि जाई ।
सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू , प्रजा पालि पुरजन दुख हरहू ।
भरत कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि ,
बचन अमिय जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि ।
मोहि उपदेश दीन्ह गुरु नीका , प्रजा सचिव सम्मतु सबही का ।
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा , अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा ।
अब तुम्ह विनय मोरि सुनि लेहू , मोहि अनुहरत सिखावन देहू ।
हित हमार सियपति सेवकाई , सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ।
मैं अनुमानि दीख मन माहीं , आन उपाय मोर हित नाहीं ।
मोहि नृप करि भल आपन चहहु , सो सनेह जड़ता बस अहहु ।
कहउँ साँच सब सुनि पतियाहू , चाहिय धरम सील नरनाहू ।
मोहि राज हठि देइहहु जबहीं , रसा रसातल जाइहि तबहीं ।
आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिर नाथ ;
देखे बिन रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाय ।

× × ×

तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई ; गगन मगन मकु मेघहि मिलई ।
गोपद जल बूड़हि घटजोनी , सहज छमा बरु छाँड़इ छोनी ।
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई ; होय न नृप मद भरतहि भाई ।

सगुन छीर अवगुन जल ताता, मिलइ रचइ परपच बिधाता।
भरत हस रबिबंस तड़ागा, जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा।
जौं न होत जग जनम भरत को, सकल धरम-धुर धरनि धरत को।
रामचरितमानस

तुलसीदास को भाषा मुख्यतः प्रौढ़ और परिपक्व अवधी है, जिसमें तत्सम शब्दों का उचित मान है। इनकी प्रवाह-धारा बहुत ही चित्ताकर्षिणी है। अर्थव्यक्त, प्रांजलता, माधुर्य आदि सद्गुण मानो आप ही का मार्ग देख रहे थे, कोमल-कांत पदावली में आप गीतगोविंद का सामना करते हैं। कल्पना की कोमलता, भावुकता, प्रकृति-रंजन, सच्ची अनुभूति, भावपूर्णता, लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, मौलिकता, हृदय-पक्ष का अत्यधिक बल, स्वाभाविता, मार्मिकता चेष्टाओं का चित्रण, लोकोक्ति-विरचन, वर्णन-विदग्धता, चरित्र-चित्रण, स्निग्ध पदावली का प्रयोग, अनुप्रासों का लालित्य, यमकादि का उचित व्यवहार, जीवन-विश्राति का अलौकिक अभिनय, भक्ति-प्रगाढ़ता, भाषा में अनेकरूपता, ऊहा का चमत्कार, ज्ञानविराग-विवचन, प्रबंध-पटुता, तथ्य-निरूपण, भावावेश विभूति, शांति, मूर्ति-विधान आदि-आदि सभी गोस्वामीजी की रचना में परम प्राचुर्य से प्रस्तुत है। आपने हास्य-विनोद, शौर्य, शृंगार, प्रेम, स्नेह, सूक्तियाँ, युद्ध-वर्णन, युद्धोत्साह, चारुता, प्रभावशालिता, सशक्त साहित्य, विनती, विलाप आदि के उदाहरणों पर उदाहरण दिए हैं। रचना से रस छलकता है, और भाव उसकी वंदना करते हैं। ऐसा कोई सद्गुण न होगा, जिसका आपने फड़कता हुआ उदाहरण न दिया हो। सभी रसों, अलकारों एवं अन्य काव्यांगों के आपने अच्छे-से-अच्छे उदाहरण दिए हैं।

सौर काल में हम वैष्णव महात्माओं तथा अकबरी दरबार के प्रभाव हिंदी पर देख आए हैं। हमारे साहित्य को शांतिस्थापन से अच्छा बल प्राप्त हो रहा था, जैसा ऊपर कहा जा चुका है। इन कारणों के अतिरिक्त वैष्णव-संप्रदायोंवाली तल्लीनता ने इस काल एक और भी नया बल पाया। श्रीस्वामी रामानुज का नया वैष्णव-मत दक्षिण से दिनोदिन उत्तर की ओर बढ़ता आता था। उसने इस समय उत्तर में भी अच्छा बल प्राप्त कर लिया

था, और जैसे वल्लभाचार्य महाप्रभु द्वारा कृष्ण-भक्ति का प्रभाव हिंदी पर पड़ा था, वैसे ही इस मत द्वारा राम-भक्ति का बल हिंदी-कविता का सहायक हुआ। गोस्वामी तुलसीदास, केशवदास एवं अन्य कविवरों ने इस समय श्रीरामचंद्र पर अच्छी कविताएँ कीं। उधर अकबरी दरबार का प्रभाव विविध विषयों द्वारा हिंदी को आभूषित कर रहा था। इस कारण हमारी भाषा ने तुलसी-काल में अनेकानेक विषयों के वर्णनों में भी संतोषदायक गौरव दिखलाया। भक्ति के अतिरिक्त अन्य विषयों में वीरता, शृंगार आदि प्रधान हैं। अकबरी काल में जातीयता की उन्नति भारत में नहीं हुई, सो शौर्य की ओर इस समय हमारे कवियों का ध्यान नहीं गया, जैसा आगे चलकर शिवाजी एवं छत्रसाल के समय हुआ। उधर फारसी के नवागत भावों ने शृंगार की विशेष पुष्टि की, और वल्लभीय मत से भक्त कवियों में इसका भक्ति-भाव से प्राधान्य था ही, सो अभक्त कवियों ने भी श्रीकृष्णचंद्र को शृंगारी नायक बनाकर भक्ति की आड़ में नायिका-भेद द्वारा शृंगार-कविता में ही पूर्ण बल और ध्यान लगा दिया। इस नई भक्ति-हीन शृंगारी कविता के पहले आचार्य केशवदास हुए, जिन्होंने रसिकप्रिया में सभी रसों के उदाहरण शृंगार में ही दिए। अत राम-भक्ति के साथ शृंगार-कविता ने भी अच्छी उन्नति की। इस काल में कवि बहुत अधिक और बहुत उत्कृष्ट हुए हैं। उन सबके विषय में पृथक्-पृथक् कथन करने से ग्रंथ का आकार बहुत बढ़ जायगा, अत हम आगे से अध्यायों के अंत में एक-चक्र दे देंगे, जिनमें उन समयोंवाले शेष कवियों के नाम, समय, ग्रंथ और कविता पर सूक्ष्मतया सम्मति प्रकाशित कर दी जायगी। प्रधान-प्रधान कवियों की समालोचना भी यहाँ लिखी जाती है। कहीं-कहीं प्रकृष्ट कवियों की भी समालोचना, उनके ग्रंथ न मिलने या अन्य कारणों से नहीं लिखी जा सकी। अत यह न समझना चाहिए कि चक्र में लिखे हुए कवियों में प्रधान कवि कोई भी नहीं है।

तुलसी-काल (सं० १६३१ से १६८० तक) में ४२+९९+३९ जोड़ १७४ कविगण नंबर २३८ से ४११ तक हैं। यह समय केवल पचास वर्षों का है, तथापि सौर काल की कवि-संख्या ११२ से इधर की संख्या बहुत बढ़

गई, यद्यपि समय उसका ७० वर्षों का था। इससे प्रकट है कि हिंदी-साहित्य की लोक-स्वीकृति दिनोदिन बढ़ रही थी। इस काल स्वयं गोस्वामीजी के अतिरिक्त बलभद्र मिश्र, रहीम खानखाना, रसखान, केशवदास और घासीराम बहुत ही उत्कृष्ट कवि हुए। कार्ष्णं वैष्णवता को छोड़कर हिंदी ने राम के साथ विविध विषयों की प्रणाली में विकास किया, तथा सूफ़ी-साहित्य का विकास भी कमी की ओर चला गया। निर्गुणात्मिका भक्ति दादू, सुंदर आदि के साथ चली तो, किंतु विकसित न हुई। आचार्यता सम्यक् प्रकार से उठी, तथा ब्रजभाषा के साथ अवधी का भी प्रभाव मिल गया। कवियों की स्थिति महाराष्ट्र प्रांत, युक्त प्रांत, राजपूतना, बुंदेलखंड, दिल्ली आदि में विशेषतया रही। महाराष्ट्र प्रांत ने संतों के सहारे समाज-संगठन का सफल प्रयत्न किया। जैसे उत्तरी भारत में मुसलमानी साम्राज्य प्राय ५०० वर्ष रहा, वैसे महाराष्ट्र प्रांत में वह केवल १०० वर्ष रहा होगा, तथा मद्रास की ओर इससे भी कम। इन प्रांतों में विदेशी राज्य पूर्णतया प्राय सवा सौ वर्षों से केवल अँगरेज़ी स्थापित हुआ है। तुलसी-काल अकबर और जहाँगीर के समयों में था। इसके पूर्व ही बहमनी राज्य टूट चुका था। बीदर, बरार, खानदेश, मालवा, गुजरात, बंगाल और कश्मीर इस काल मुगल साम्राज्य में सम्मिलित हुए, तथा दिल्ली का राज्य वास्तव में साम्राज्य बना। इन विजयों में से बहुतेरी हिंदू-सेना की सहायता से हुई, सो मुगल-साम्राज्य के साथ भारत में मुसलमानों का प्रभाव घटा और हिंदुओं का बढ़ा। विजयनगर-साम्राज्य अवश्य टूटा, किंतु इससे देश को हानि न हुई। जैपुर, जोधपुर आदि ने अच्छी ख्याति पाई। मुगल साम्राज्य में मुसलमानों के साथ हिंदुओं को भी भारी-भारी पद मिलने लगे। बादशाह दोनो जातियों के साथ उचित न्याय करके उनमें प्राय तटस्थ रहते थे। हिंदू और मुसलमान दोनो उनके संबंधी भी थे। मुसलमान केवल पदाधिकारी थे। उधर हिंदू पदाधिकारी होने के अतिरिक्त कई महाराज भी होते थे। अतएव उनका पद मुसलमानों की अपेक्षा कुछ हलका न था।

इस काल देश में जो इस प्रकार स्वराज्य-सा स्थापित हुआ, उससे हिंदुओं में जातीयता की भी वृद्धि हुई। उपर्युक्त मुसलमान राज्य तो एक-ही-एक धक्के

से ऐसे बिगड़े कि उनका पता तक न लगा, किंतु छोटे से हिंदू-राज्य मेवाड़ ने २४ वर्ष अकबर से लोहा बजा अपनी स्वतंत्रता स्थापित ही रक्खी। भारत में यही पहला युद्ध था, जो राज्य के कारण न होकर विचारों के लिये हुआ। अकबर मेवाड का राज्य नहीं लेना चाहते थे, वरन् उसे बढ़ाने की उनकी इच्छा थी। वह केवल संबध द्वारा मेल ढूँढ़ते थे। महाराणा प्रतापसिंह हारे और हतोत्साह भी हुए, किंतु अकबर के सबधी हिंदू नरेशों तक ने उन्हें बढ़ावा दिया तथा खानख़ाना तक ने उनके हठ को धम-कार्य समझकर उनकी सहायता की। खानख़ाना ने प्रतापसिंह को जो निम्नलिखित दोहा भेजा था, सो द्रष्टव्य है—

धम रहसी रहसा धरा, खिसि जासी खर साण,
अमर बिसंमर ऊपरे रखियो नहचो राण।

अतएव हम देखते हैं कि एक प्रसिद्ध मुसलमान हिंदूपवि प्रताप को विश्वंभर अमर पर निश्चय रखने को कहता है। अकबर और प्रताप पर कई अच्छे दोहे भी विदित हैं। कुल मिलाकर तुलसी-काल में हम जातीयता की अच्छी वृद्धि देखते हैं और इस काल को स्वराज्य-सा पाते हैं। इस महत्ता की मुख्यता हिंदू-मुसलमान मेल में थी। शासक मुसलमान ही था, किंतु वह अपने शासन-भार को पहचानता था। सौर काल में व्रजभाषा का प्रचार बढ़ा थे, और इधर आकर तुलसीदास के साथ हमारी भाषा में अवधी का भी महत्त्व के साथ पदार्पण हुआ। पडित अयोध्यासिंह उपाध्याय अपने ग्रंथ हिंदी-भाषा और साहित्य के विकास (पृष्ठ ३२०) में लिखते हैं—

"व्रजभाषा और अवधी में अधिकतर उच्चारण का विभेद है, अन्यथा दोनो में बहुत कुछ एकरूपता है।"

बात यह है कि अवधी और व्रजभाषा दोनो के कवि दोनो के शब्दों का अपनी-अपनी रचना मे बेधड़क प्रयोग करते आए है। कभी-कभी बहुत सतर्क होकर देखने से ही जान पड़ता है कि किस कवि में किस भाषा की महत्ता है। यह भ्रम प्राय: ऐसे कवियों के विषय में पड़ता है, जिनकी भाषा दोनो की सीमाओं के निकट है।

नवाँ अध्याय
पूर्व तुलसी काल
(१६३१-४५)
(२३६) अकबर शाह

आप जगत्प्रसिद्ध मुग़ल बादशाह थे। आपका जन्म संवत् १५९९ में, अमरकटक में, हुआ था, और संवत् १६१३ में आप सिंहासनारूढ़ हुए। आप बड़े विद्वान् न थे, परंतु विद्वानों का सत्संग रखते थे। आईन अकबरी-नामक प्रसिद्ध ग्रंथ आप ही के विचारों का संग्रह है। आपके दरबार में बहुत-से गुणी और मानी पुरुष एकत्र थे, जिनमें कई हिंदी-कवि भी थे। आपने संवत् १६६२ तक राज्य किया। इस राजत्व-काल के आदि में बहुत गड़बड़ था, परंतु थोड़े वर्षों में आपने चतुरता एवं कौशल से उसे शांत कर दिया। आप हिंदी-कविता भी करते थे, जो साधारण श्रेणी की होती थी। आपके आदि में विद्वान् न होने तथा राज्यारंभ के समय गड़बड़ में रहने से अनुमान होता है कि १६३१ के पूर्व आपने इतनी हिंदी न सीख पाई होगी कि उस भाषा में छंद-रचना करते। अतः आपका रचना-काल १६३१ से १६६२ तक समझ पड़ता है।

उदाहरण—

जाको जस है जगत मैं जगत सराहै जाहि,
ताको जीवन सफल है कहत अकब्बर साहि।

साहि अकब्बर एक समै चले कान्ह विनोद विलोकन बालहिं;
आहट तेअबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिं।
त्यों बलि बेनी सुधारि धरी सुभई छबि यों ललना अरु लालहिं,
चंपक चारु कमान चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिए अहि बालहिं।
केलि करैं बिपरीत रमैं सु अकब्बर क्यों न इतो सुख पावै;
कामिनि की कटि किंकिनि झान किधौं गनि पीतम के गुन गावै।
बिंदु प्रसेद को छूटो ललाट ते यों लट में लटको लगि आवै;
साहि मनोज मनो चित मैं छबि चंद लये चक डोरि खिलावै।

(२४०) भगवान हित

इन महाशय का बनाया हुआ कोई ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया। यह श्रीहित-संप्रदाय के अनुयायी थे। इनके बनाए हुए दश भजन मुंशी नवलकिशोर सी० आई० ई० के प्रेस द्वारा मुद्रित सूरसागर में मिले। उनसे जान पड़ता है कि यह महाशय अपना नाम जन भगवान् और हित भगवान् करके लिखते थे, और वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ को भी पूज्य मानते थे। इनके पदों से भक्ति टपकती है। इन्होंने नख-शिख भी अच्छे कहे हैं। भगवानदास-नामक एक महाशय का वर्णन हिंदी खोजवाली सन् १६०० की रिपोर्ट के ६२ पृष्ठ पर भी है, परंतु वह संवत् १७५६ के होने से इनसे पृथक् थे। इनके पदों में अच्छी मधुरता पाई जाती है। इनका रचना-काल १६३१ के लगभग है।

उदाहरण—

जसुमति आनँदकंद नचावति,
पुलकि-पुलकि हुलसाति देखि मुख अति सुख-पंजहि पावति।
बाल जुवा वृद्धा किसोर मिलि चुटकी दै-दै गावति,
नूपुर सुर मिश्रित धुनि उपजति सुर बिरंचि बिसमावति।
कुंचित ग्रंथित अलक मनोहर झपकि बदन पर आवति,
जन भगवान मनहुँ घन बिधु मिलि चाँदनि मकर लजावति।

(२४१) रसिक

यह महाशय विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनका कोई ग्रंथ देखने में नहीं आया, परंतु इनके बहुत-से स्फुट भजन हमारे पास हैं। इन्होंने पदों में श्रीकृष्ण-लीला का वर्णन किया, और उसमें भी बाल-लीला एवं शृंगार का प्राधान्य रक्खा है। यह साधारण श्रेणी के कवि थे। इनके, रचना-काल १६३१ संवत् के लगभग है। रसिकदास और रसिकराय-नामक दो और कवि ग्रंथकर्ता हुए हैं। परंतु उनकी कविता पृथक् है।

उदाहरण

लटकत आवत कुंजभवन ते;
ढरि-ढरि परत राधिका ऊपर जागर सिथिल गवन ते।

चौंकि परत कबहू मारग बिच चले सुगध पवन ते ,
भए उसास भरम राधा के सकुचत दुवौ स्रवन ते !
आलस बस न्यारे न होत हैं नेकहुँ प्यारी-तन ते ,
रसिक टरै जनि दसा स्याम की कबहू मेरे मन ते ।

नाम—(२४२) अग्रदास गलता, जयपुर ।

ग्रंथ—(१) श्रीरामभजनमजरी, (२) कुंडलिया, (३) हितोपदेश भापा, (४) उपासनाबावनी, (५) ध्यान-मंजरी, (६) पद, (७) विश्व-ब्रह्म-ज्ञान (१६४७) और (८) रागावली (१६८०)। ध्यान-मंजरी (व्रजभापा में, भालेरावजी को प्राप्त)।

रचना-काल—१६३२ ।

विवरण—यह महाशय नाभादास के गुरु थे । इनका प्रथम ग्रंथ हमने छतरपुर में देखा । यह तोष की श्रेणी में है । इनका समय नाभादास के विचार से रक्खा गया है । 'राम-चरित के पद-नामक इनका एक और ग्रंथ मिला है । आप वल्लभ-संप्रदायवाले कृष्णदास के शिष्य थे, किंतु कृष्ण-भक्ति पर न जाकर राम-भक्ति पर गए । हितोपदेश भापा को कुछ महाशय 'उपखाणां बावनी' भी कहते हैं ।

उदाहरण—

कुडल ललित कपोल जुगुल अस परम सुदेसा ,
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा ।
मेचक कुटिल बिसाल सरोरुह नैन सोहाए ,
मुख-पंकज के निकट मनो अलि-छौना छाए ।

(२४३) गदाधर भट्ट का ठीक समय सं० १६३२ (सं० १९७६ की) खोज में मिला है । आप चैतन्य महाप्रभुवाले गौड़-संप्रदाय के वैष्णव थे । आपकी एक बानी (ग्रंथ) हमने छतरपूर में देखी, जिसकी रचना बड़ी सोहावनी है* । हम इन्हें ऊँची योग्यता का कवि मानते हैं ।

* तृ० त्रै० खोज में इनका एक और ग्रंथ ध्यानलाला-नामक मिला है ।

उदाहरण—

रक्त पीत सित असित लसत अंबुज बन सोभा ;
टोल-टोल मदलोल भ्रमत मधुकर मधु लोभा ।
सारस अरु कलहंस कोक कोलाहलकारी ;
पुलिन पवित्र विचित्र रचित सुंदर मनहारी ।

नाम—(२४४) करनेस वंदीजन ।

ग्रंथ—(१) करणाभरण, (२) श्रुतिभूषण, (३) भूपभूषण ।

जन्म-काल—१६११ । रचना-काल—१६३७ ।

विवरण—यह अकबर शाह के दरबार में नरहरि के साथ जाते थे । इन्होंने खड़ी बोली में भी कविता की । इनका काव्य साधारण श्रेणी का है ।

उदाहरण—

खात हैं हराम दाम, करत हराम काम ,
धाम-धाम तिनही के अपजस छावैंगे ;
दोजख में जैहैं तब काटि-काटि कीड़े खैहैं ,
खोपड़ी को गूद काक टोंटन उड़ावैंगे ।
कहैं करनेस अबै घूसि खात लाजै नहिं ,
रोजा औ नेवाज अंत काम नहिं आवैंगे ;
कबिन के मामिले में करैं जौन खामी, तौन
निमकहरामी मरे कफन न पावैंगे ।

नाम—(२४५) श्रीहितरूपलाल गोस्वामी, वृंदावन ।

ग्रंथ—(१) बानी, (२) समय-प्रबंध, (३) वृंदावन-रहस्य, (४) सर्वतत्त्वसारोद्धार, (५) गन-शिक्षा बत्तीसी, (६) सिद्धांतसार, (७) वंशी-युक्त युगल ध्यान और (८) मानसिक सेवाप्रबंध ।

विवरण—इनकी बानी में लीला, बधाई, वंसावली, उत्सव इत्यादि के वर्णन हैं । आकार रॉयल अठपेजी से बड़ा २६६ पृष्ठों का है । यह हमें दरबार-पुस्तकालय छतरपूर से देखने को मिली । गोस्वामी श्रीहितरूपलालजी ने 'समय प्रबंध'-नामक ५४ पृष्ठों का एक १९५ पदों में भी ग्रंथ रचा । यह ग्रंथ छतरपूर

में है। इनका कविता-काल जाँच से संवत् १६५० जान पड़ता है, तथा सांप्रदायिक लोग इनका काल १७५० के लगभग होना कहते हैं। इनकी गणना साधारण श्रेणी में है।

यह महाशय राधावल्लभीय संप्रदाय के आचार्य तथा चाचा हित वृंदावन-दास के गुरु थे।

उदाहरण—

दिन कैसे भरूँ री माई बिन देखे प्रान अधार ;
ललित तृभंगी छैल छबीलो पीतम नंदकुमार।
सुनु री सखी कदम तर ठाढ़ो मुरली मद बजावै ,
गनि-गनि प्यारी गुनगन गावै चितवत चितहिं रिझावै।
जियरा धरत न धीरज सजनी कठिन लगन की पीर ,
रूपलाल हित आगर नागर सागर सुख की सीर ,
बैठे बिबि गर बहियाँ जोर ,
रतन जटित सिंहासन आसन दंपति नित्य किसोर।
जगमगात भूषन तन दीपति प्रेमी चंद-चकोर ,
श्रीहितरूप सिंगार उदधि की छिन-छिन उठत झकोर।

(२४६) बलभद्र मिश्र

यह महाराज सनाढ्य ब्राह्मण ओड़छा-निवासी पंडित काशीनाथ के पुत्र और केशवदास के बड़े भाई थे। उन्होंने अपनी कविप्रिया में इनका नाम लिखा है। केशवदास के वर्णन में हमने उनका जन्म-काल संवत् १६०८ के इधर-उधर माना है, सो बलभद्रजी का जन्म-काल संवत् १६०० के लगभग मानना चाहिए। इनका केवल एक ग्रंथ नख-शिख हमने देखा है, और खोज में इनके भागवत-भाष्य-नामक द्वितीय ग्रंथ का नाम लिखा है। नख-शिख में ६५ घना-क्षरी छंद और एक छप्पय है। इसमें सन्-संवत् का कोई ब्यौरा नहीं दिया गया है। यह एक बड़ा ही प्रौढ़ ग्रंथ है। अतः अनुमान से यह कवि की कुछ बड़ी अवस्था में, संवत् १६४० या १६५० के लगभग, बना होगा। इसके देखने से जान पड़ता है कि बलभद्रजी बड़े ही सुकवि थे। इसमें कवि आचार्यों

की भाँति चला है, और छंद बड़े गंभीर तथा श्रेष्ठ हैं। भाषा परिपक्व शुद्ध व्रजभाषा है। इसमें उपमाएँ बहुत अच्छी दी गई हैं। नृप शंभु के अतिरिक्त बलभद्र का नख-शिख भाषा-साहित्य के प्राय समस्त नख-शिखों से बढ़कर है। इस एक ही छोटे-से ग्रंथ के रचयिता होने के कारण बलभद्र की गणना दास कवि की श्रेणी में होनी चाहिए। गोपाल कवि ने संवत् १८९१ में इस ग्रंथ की टीका रची। उसमें उन्होंने लिखा है कि बलभद्र कवि ने बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक-टीका, गोवर्द्धन-सतसई-टीका आदि कई ग्रंथ रचे। द्वि० त्रै० खोज में दूषण-विचार (१७१४)-नामक एक और ग्रंथ मिला है, जो संभवत. इन्हीं का रचा ज्ञात होता है। इनका केवल एक छंद हम नीचे लिखते हैं—

पाटल नयन कोकनद के-से दल दोऊ,
　　बलभद्र वासर उनींदी लखी बाल में;
सोभा के सरोवर में बाड़व की आभा किधौं,
　　देवधुनि भारती मिली है पुन्य-काल में।
काम के बरत कैधौं नासिका उडुप बैठ्यो,
　　खेलत सिकार तरुनी के मुख-ताल में;
लोचन सितासित में लोहित लकीर मानो,
　　बाँधे जुग मीन लाल रेसम के जाल में,

नाम—(२४७) होलराय ब्रह्मभट्ट, होलपुर, ज़िला रायबरेली। समय—१६४०।

विवरण—यह अकबर शाह के समय में हरिवंशराय के यहाँ थे। इन्होंने शाह से कुछ ज़मीन पाई, जिसमें होलपुर बसाया। तुलसीदास से इनकी भेंट हुई।

यथा—
होल—लोटा तुलसीदास को लाख टका को मोल;
तुलसी—मोल-तोल कछु है नहीं लेहु राय कवि होल।

कहते हैं, यह लोटा होलपुर में अब तक पूजा जाता है। इनकी कविता साधारण श्रेणी की है।

दिल्ली ते न तख़्त ह्वैहै बख़्त ना मुगल कैसो,
ह्वैहै ना नगर बढ़ि आगरा नगर ते,
गंग ते न गुनी तानसेन ते न तानबाज,
मान ते न राजा औ न दाता बीरबर ते।
खान खानखाना ते न नर नरहरि ते न,
ह्वैहै न दिवान कोऊ बेडर टडर ते,
नवो खंड सात दीप सातहू समुद्र पार
ह्वैहै न जलालुदीन शाह अकबर ते।

(२४८) (रहीम) अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना

रहीम का जन्म संवत् १६१० में हुआ। इनका रचना-काल सं० १६४० के इधर-उधर जान पड़ता है। यह महाशय अकबर बादशाह के पालक बैरमख़ाँ के पुत्र थे। अकबर शाह के दरबारी नौरतन में यह भी थे, और इन्हें अकबर बहुत मानता था। यह महाशय अकबर के समस्त दल के सेनापति एवं मंत्री थे, और इस पद पर जहाँगीर शाह के समय तक रहे। कहा जाता है, इन्होंने कभी किसी पर क्रोध नहीं किया, और सदा परोपकार ही के काम किए। एक बार अकबर और महाराना प्रतापसिंह की सेनाओं से घोर युद्ध हो रहा था। उस समय इनकी स्त्री को रानाजी के सैनिकों ने किसी प्रकार क़ैद कर लिया। जब यह हाल रानाजी को विदित हुआ, तब उन्होंने बड़े सम्मान-पूर्वक उनको ख़ान-ख़ाना के पास भेज दिया। कुछ समय के उपरांत रानाजी का राज्य अकबर ने छीन लिया, और २४ वर्षों तक वह पहाड़ों और जंगलों में घूमते फिरे। अंत में किसी प्रकार उन्होंने अकबर की सेना को जीतकर अपना देश फिर छीन लिया। जब अकबर को यह समाचार मिला, तो उसने एक बृहत् सेना भेजने का फिर विचार किया। यदि यह चढ़ाई होती, तो प्रतापसिंह को पहले की भाँति राज्य त्यागकर फिर भागना पड़ता। इस अवसर पर खानख़ाना ने पुराना अहसान मानकर, अकबर को समझा-बुझाकर, हार की निंदा सहकर भी सेना न भेजने पर राज़ी किया। इन्होंने यावज्जीवन सुपात्रों को बड़े-बड़े दान दिए। यह महाशय कवि और गुणियों के कल्पतरु थे। कहा जाता है, गंग कवि को एक ही

छंद के बनाने पर ३६ लाख रुपयों का इन्होंने दान दिया। इनको श्रीकृष्ण भगवान् का इष्ट था। एक समय कारण-वश यह जहाँगीर बादशाह के द्रोही होकर बंदी हो गए, और छुटने के पीछे भी कुछ काल तक अपमानित रहे। ऐसी अवस्था में भी अर्थी लोगों के घेरने पर अपने में दान-शक्ति न होने के कारण इनको क्लेश होता था, यहाँ तक कि इन्होंने सोचा कि इस प्रकार दान देने के अयोग्य रहकर जीना वृथा है। निम्न-लिखित दोहे इस बात के साक्षी-स्वरूप हैं।

वै रहीम नर धन्य हैं पर उपकारी अंग;
बाँटनवारे को लगै ज्यों मेंहँदी को रंग।
तबहीं लौं जीबो भलो दीबो होन न धीम;
जग में रहियो कुचित गति उचित न होय रहीम।
ए रहीम दर-दर फिरैं माँगि मधुकरी खाहिं;
यारो यारी छाँड़िए वे रहीम अब नाहिं।

कहते हैं, फिर भी एक याचक के कारण विवश होकर रहीम ने रीवाँ-नरेश से १ लक्ष मुद्रा माँगकर उसे दिलवाए। इस अवसर पर इन्होंने यह दोहा बनाकर रीवाँ-नरेश को सुनाया था—

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध-नरेस,
जा पर विपदा परति है सो आवत यहि देश।

इनका शरीरपात संवत् १६८४ में हुआ।

यह महाशय अरबी, फ़ारसी, हिंदी और संस्कृत के पूर्ण विद्वान् थे, और इनकी गुणज्ञता के कारण कवि, पंडित आदि सदैव इनकी सभा में प्रस्तुत रहते थे। गंग पर इनकी विशेष कृपा रहती थी, और वह भी इनकी सभा के भूषण थे। पंडित नकछेदी तिवारी ने लिखा है कि इन्होंने रहीम-सतसई, बरवै नायिका भेद, रासपचाध्यायी, मदनाष्टक, दीवान फ़ारसी और वाक़यात बाबरी का फारसी अनुवाद, ये छ ग्रंथ बनाए। इनमें से द्वितीय मुद्रित और प्रथम के हस्तलिखित दो सै बारह दोहे हमारे पुस्तकालय में वर्तमान हैं। शेष ग्रंथ हमने नहीं देखे। शिवसिंहसरोज में इनका शृंगार-सोरठा-नामक एक और ग्रंथ लिखा है, और मदनाष्टक के इनके ये छंद लिखे हैं, जिनकी भाषा खड़ी बोली है—

कलित ललित माला, वा जवाहिर जड़ा था ;
चपल चखनवाला, चाँदनी में खड़ा था ।
कटि तट बिच मेला, पीत सेला नबेला ,
अलिबन अलबेला, यार मेरा अकेला ।

'माधुरी' में एक लेख लिखकर याज्ञिकत्रय ने इनके संबंध में बहुत-सी नई जानने-योग्य बातों को प्रकट किया है । उनके पास इनके बहुत-से छंद भी संगृहीत हैं । इनके नगर-शोभा-वर्णन-नामक एक नए ग्रंथ का भी पता चला है ।

'बरवै नायिका-भेद' में ९४ छंद हैं । इसमें कवि ने लक्षण न देकर उदाहरण-मात्र दिए हैं । यह ग्रंथ पूर्वी-भाषा में है, और इसकी कविता परम प्रशंसनीय है । रहीम की कविता में सचमुच अलौकिक आनंद आता है । इस ग्रंथ में प्रायः सभी बरवै मनोहर हैं, परंतु उदाहरणार्थ केवल तीन यहाँ लिखते हैं—

खीन मलिन बिप भैया औगुन तीन ;
पिय कह चंद-बदनियाँ अति मतिहीन ।
ढीलि ओखि जल अँचवनि तरुनि सुगानि ,
धरि खसकाय घइलना मुरि मुसकानि ।
बालम अस मनु मिलयउँ जस पय पानि ;
हसिनि भई सवतिया लइ बिलगानि ।

रहीम की काव्य-प्रौढ़ता उनकी 'सतसई' पर विशेषतया अवलंबित है । इस ग्रंथ में किसी नियम पर न चलकर रहीम ने स्वच्छंदता-पूर्वक अपने प्रिय विषयों पर रचना की है । सुतरां यह ग्रंथ बड़ा ही बढ़िया और रोचक बना है । हमारे पास के केवल २१२ दोहों में ही रहीम के विचार एवं उनकी आत्मीयता कूट-कूटकर भरी है । इनका प्रत्येक दोहा अपूर्व आनंद देता है । यह महाशय वास्तव में महापुरुष थे, और इनका महत्व इनके छंदों से प्रकट होता है । इनके विचारों का कुछ उल्लेख नीचे किया जाता है—

इनको मान सबसे अधिक प्रिय था—

रहिमन मोहि न सोहाय, अमी पियावै मान विन ,
बरु बिख देय बुलाय, मान-सहित मरिबो भलो ।

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चितु लाय ;
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरि जाय ।

इनको बड़ों की खुशामद इतनी अप्रिय थी कि यह उनकी अयोग्य प्रशंसा सहन नहीं कर सकते थे ।

थोरो किए बड़ेन की बड़ी बड़ाई होय ,
ज्यों रहीम हनुमंत को गिरिधर कहै न कोय ।

इनके विचारों की उँचाई और गंभीरता निम्न-लिखित दोहों से विदित होती है—

कोउ रहीम जनि काहु के द्वार गए पछिताय ,
संपति के सब जात हैं विपति सबै लै जाय ।

संपति संपतिवान को सब कोऊ कछु देत ,
दीनबंधु बिन दीन की को रहीम सुधि लेत ।

काम न काहू आवई मोल रहीम न लेइ ,
बाजू टूटे बाज को साहेब चारा देइ ।

भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप ;
रहिमन गिरि ते भूमि लौं, लखौ तौ एकै रूप ।

दान लेना भी रहीम निंद्य समझते थे—

रहिमन माँगत बड़ेन की लघुता होत अनूप ;
बलि-मख माँगन हरि गए धरि बावन को रूप ।

इन्होंने बहुत स्थानों पर ऐसे चोज निकालकर रख दिए हैं, जिनकी यथार्थता में भी एक निराला ही आनंद आता है ।

खैर खून खाँसी खुसी बैर प्रीति मधुपान ;
रहिमन दाबे ना दबैं जानत सकल जहान ।

रहिमन बहरी बाज गगन चढ़ै फिरि क्यों तिरै ,
पेट अधम के काज फेरि आइ बधन गिरै ।

इनका पूर्वोक्त गुण इनकी पैनी दृष्टि का एक उदाहरण है । इसी प्रकार इनकी दृष्टि सभी स्थानों पर रहती है । इन्होंने यों ही बहुत स्थानों पर सच्ची-सच्ची बातें सीधी रीति पर कह दी हैं, जो उसी प्रकार भली मालूम पड़ती हैं ।

सबको सब कोऊ करै कै सलाम कै राम ;
हित रहीम तब जानिए जब कछु अटकै काम ।
धन दारा अरु सुतन सों लगो रहै नित चित्त ;
नहिं रहीम कोऊ लख्यौ गाढ़े दिन को मित्त ।
काज परे कछु और है काज सरे कछु और ;
रहिमन भवँरी के भए नदी सेरावत मौर ।
रहिमन चाक कुम्हार को माँगे दिया न देइ ;
छेद में डंडा डारिकै चहै नाँद लइ लेइ ।

इनका अनुभव बहुत ही बढ़ा हुआ था, और उसके फलस्वरूप इन्होंने यह दोहा कहा—

अब रहीम मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम ;
साँचे से तौ जग नहीं झूठे मिलैं न राम ।

इन्होंने इतनी यथार्थ बातें कही हैं कि इनके बहुतेरे कथन कहावतों के स्वरूप में परिणत हो गए हैं ।

जौं गरीब को आदरैं ते रहीम बड़ लोग ;
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण-मिताई-जोग ।
जो रहीम करिबे हुतो ब्रज को यहै हवाल ;
तौ काहे कर पर धरयौ गोबरधन गोपाल ।
मुकता कर करपूर कर चातक तृप हर सोय ;
येतो बडो रहीम जल कुथल परे विप होय ।

यह महाशय मुसलमान होने पर भी कृष्ण और राम के पूरे भक्त थे। इनको ईश्वर पर पूर्ण विश्वास था ।

तैं रहीम मन आपनो कीनो चारु चकोर ;
निसिबासर लाग्यो रहै कृष्णचन्द्र की ओर
रहिमन को कोउ का करै ज्वारी चोर लबार ;
जो पति राखनहार है माखन चाखनहार ।
माँगे मुकुरि न को गयो केहि न त्यागियो साथ ;

माँगन आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ।

इन्होंने नीति के भी बहुत ही चुनिंदे दोहे लिखे हैं, और संसार ने उन्हें इतना पसंद किया है कि प्राय, वे किंवदंतियों के रूप में कहे जाते हैं

फरजी साह न ह्वै सकै गति-टेढ़ी तासीर;
रहिमन सूधी चाल ते प्यादो होत वजीर।

छिमा बड़ेन को चाहिए छोटेन को उतपात;
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात।

रहिमन बिगरी आदि की बनै न खरचे दाम;
हरि बाढ़े आकास लौं छुटो न बावन नाम।

विपत्ति के विषय में इनका यह मत था—

रहिमन बिपदा हू भली जो थोरे दिन होय;
हित अनहित या जगत मैं जानि परत सब कोय।

सत्संग और कुसंग पर भी इन्होंने बहुत ज़ोर दिया है।

कदली सीप भुजगमुख स्वाति एक गुन तीन;
जैसी संगति बैठिए तैसोई फल कीन।

रहिमन नीच प्रसंग सों लगत कलंक न काहि;
दूध कलारी कर गहे मदहि कहैं सब ताहि।

नीति आदि पर विशेष ध्यान रखने पर भी इन्होंने काव्यांगों को हाथ से जाने नहीं दिया है। इनकी रचना में यत्र-तत्र चित्र-काव्य भी मिलता है, परंतु उसमें भी इन्होंने उपदेश नहीं छोड़े हैं।

जो रहिमन गति दीप की कुल कपूत की सोय;
बारे उजियारो करै बढ़े अँधेरो होय।

गुन ते लेत रहीम कहि सलिल कूप ते काढ़ि;
काहू को मन होयगो क्हा कूप ते बाढ़ि।

कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय;
पुरुष-पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय।

इन्होंने उपमाएँ, दृष्टांत, उत्प्रेक्षा आदि भी बहुत बढ़िया खोज-खोजकर कहे हैं।

नैन सलोने, अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन ;
मीठो भावै लोन पर मीठे हू पर लौन।
बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख आदि,
याते हाथी हहरि कै रह्यो दाँत द्वै कादि।
हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान सर पूर ;
खैंचि आपनी ओर को डारि दियो पुनि दूर।

इन महानुभाव के काव्य की सभी लोगों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है, और वास्तव में वह सब प्रकार से प्रशंसनीय है। इन्होंने व्रज-भाषा में कविता की है, और फ़ारसी एवं संस्कृत के पूर्ण विद्वान् होने पर भी ग्राम्य भाषा तक का उत्कृष्ट प्रयोग करने में यह कृतकार्य हुए हैं। इन्होंने शब्दों के वाह्याडंबर का तिरस्कार करके केवल भाव को प्रधान रक्खा है, और फिर भी इनकी कविता तथा भाषा दोनो मनोमोहिनी हैं, इनकी रचना बिलकुल सच्ची है, और उसमें हर स्थान पर इनकी आत्मीयता झलकती है। श्रेष्ठ छंदों के उदाहरण में इनका पूरा ग्रंथ ही रक्खा जा सकता है। हम इनको सेनापति की श्रेणी में समझते हैं।

नाम—(२४९) सदानंद स्वामी, महाराष्ट्र देश।

रचना-काल—सं० १६४१। ग्रंथ—स्फुट कविता।

विवरण—यह बादशाह औरंगजेब के भी समकालीन थे। उक्त बादशाह से इनकी भेंट हुई, ऐसा कहा जाता है। सीतलनाथ, दादामियाँ, मुस्तफ़ा आदि साधु पुरुष आपके समकालीन थे। इसी नाम के दूसरे कवि 'विनोद' के द्वितीय भाग में हैं, किंतु वह इनसे भिन्न हैं।

उदाहरण—

वतन छोड़ अवनत भए, फिरते दारो दार ;
अब गुरु कृपा प्रगट भई, उतरो यह भव पार।
हम तो ब्रह्मदेश के वासी, यहाँ के नहीं निवासी ;
कछु थोडी वार्का उधाय के पावेगा अविनासी।
साई घट-घट भरा है, आप नयन पहिचान ;
दरद नहीं सुख पावेगा, सदानंद है जमान।

नाम—(२५०) कान्होबा, महाराष्ट्र देश।

रचना-काल—सं० १६४२ के लगभग।

विवरण—आप महात्मा तुकाराम के छोटे भाई थे। आपका उनसे कुछ झगड़ा हो गया था, किंतु अंत में आप उनके अनन्य भक्त हो गए। इनकी कुछ हिंदी-कविता महाशय भालेरावजी द्वारा प्राप्त हुई है। वह नीचे दी जाती है।

उदाहरण—

चुरा-चुराकर माखन खाया, गौलनि का नटखार कन्हैया।
काहे बड़ाई दिखावत मोही, जानत हूँ प्रभु मन तेरे सब ही।
और बात सुन ऊखल सों गला, बाँध लिया तू अपना गुपाला।
फिरता बन-बन गाय चरावत, तुक्या-बंधु लकरी लै-लै हाथ।

× × ×

हम हैं दास तिन्हके सुनहु लोके, रावन मार बिभीषण दई है लंका।
गोवर्धन नख पर गोकुल राखा, बरसन लागा जब मेह पत्तर का।
बैकुंठनायक काल कंसासुर का, दैत बुलाय मँगाय सब गोपिका।
स्तंभ फोड़ पेट चीरा कास्यप का, प्रह्लाद के लिये कहे भाई तुक्या का।

(२५१) लालचंद

संवत् १६४३ में लालचंद ने इतिहास-भाषा-नामक एक ग्रंथ रचा। इसका नाम खोज में लिखा है, पर इसके अतिरिक्त इनके विषय में कुछ जान नहीं पड़ा।

नाम—(२५२) लालदास (वल्द ऊधौदास) बनिया, आगरा।

ग्रंथ—(१) महाभारत इतिहाससार (१६४३) [खोज १९०२], बलि-बावन की कथा (प्र० त्रै० रि०)।

रचना-काल—१६४३।

विवरण—महाभारत की कथा का सार लिखा है।

(२५३) अनंतदास साधु

महाराज अनंतदासजी ने संवत् १६४५ के लगभग कविता की। इन्होंने नामदेव आदि की परची-संग्रह, पीपाजी की परची, रायदासजी री परची, रंका

बका की परची, कबीरजी की परची, सिबारी बाई की परची, समनसेउजी री परची और त्रिलोचनदासजी की परची-नामक आठ ग्रंथ बनाए, जिनमें भक्तों के वर्णन किए। इनमें से प्रथम और द्वितीय ग्रंथ १६४५ और १६५७ में बने इनकी रचना साधारण श्रेणी की है।

उदाहरण—

> अंतरजामी बरनउँ तोही, साधू संग सदा दे मोही।
> माँगौं भक्तिजु ब्रह्म गियाना, जो-जो चितऊँ सो परमाना।
> संवत सोला सै पैंताला; बाणी बोला बचन रसाला।
> अंतरजामी आज्ञा दीन्ही, दास अनंत कथा कर लीन्ही।

(२५४) रसखान (समय १६४५)

इनको बहुत लोग सैयद इब्राहीम पिहानीवाले समझते हैं, परंतु वास्तव में यह महाशय दिल्ली के पठान थे, जैसा कि २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है। इन्होंने 'प्रेमवाटिका' ग्रंथ संवत् १६७१ में बनाया। इसमें थोड़े ही दोहे हैं, परंतु ग्रंथ विशद है। रसखान ने अपना समय अनुचित व्यवहारों में भी व्यय किया था; अतः इनकी कविता का आदि-काल भी २५ वर्ष की अवस्था में प्रथम होना अनुमान-सिद्ध नहीं है। विट्ठलेशजी का मरण-काल १६४३ है, सो इनका १६४० के लगभग उनका शिष्य होना जान पड़ता है। अतः इनका जन्म-काल हम १६१५ वि० के लगभग समझते हैं, और इनकी अवस्था ७० वर्ष की मानने मे इनका मरण-काल संवत् १६८५ मानना पड़ेगा। इन्होंने लिखा है कि यह महाशय बादशाह-वंश के पठान थे। २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि रसखानजी पहले एक बनिए के लड़के पर बहुत आसक्त थे। यह सदा उसी के पीछे-पीछे फिरा करते और उसका जूठा खाया करते थे। इनकी हँसी भी हुआ करती थी, परंतु यह कुछ न मानते थे। एक बार चार वैष्णवों ने आपस में बातचीत करते करते कहा कि ईश्वर में ऐसा ध्यान लगावे, जैसा कि रसखान ने साहूकार के लड़के में लगाया। इस पर रसखान के यह वार्ता पूछने पर उन वैष्णवों ने इसे फिर कह दिया। तब इन्होंने कहा कि परमेश्वर का रूप देखें, तो विश्वास आवे। इस पर उन वैष्णवों ने श्रीनाथजी

का चित्र इन्हें दिखाया। चित्र को देखते ही इनका चित्त लड़के से उचटकर विष्णुभगवान् में लग गया, और यह वेष बदलकर श्रीनाथजी के मंदिर में जाने लगे, परंतु पौरिया ने न जाने दिया। तब यह तीन दिन तक गोविंदकुंड पर बिना कुछ खाए-पिए पड़े रहे। इस पर गोस्वामी विट्ठलनाथजी को दया आई, और उन्होंने रसखान के शुद्ध होने में ईश्वरादेश समझ मुसलमान होने पर भी इन्हें शिष्य कर लिया। उस समय से इनकी पदवी इतनी बढ़ी की इनकी गणना गोसाईंजी के २५२ मुख्य शिष्यों में होने लगी, और इनको श्रेष्ठ वैष्णव समझकर गोस्वामीजी के पुत्र गोकुलनाथजी ने २५२ वैष्णवों की वार्ता में २१८ वे नंबर पर इनका चरित्र लिखा। इस बात से वैष्णवों का धर्म-संबंधी औदार्य प्रकट होता है। वार्ता में यह भी लिखा है कि रसखान ने अनेक कीर्तन और कवित्त-दोहे बनाए। इनके भजन हमारे देखने में नहीं आए। भारतेंदुजी ने उत्तर भक्तमाल में इनका यशगान किया है। पं० राधाचरण गोस्वामी ने भी 'नवभक्तमाल' में इनकी प्रशंसा इस प्रकार की—

> दिल्ली नगर निवास बादसा बंसविभाकर,
> चित्र देखि मन हरो भरो पन प्रेम सुधाकर।
> श्रीगोवर्द्धन आय जबै दरशन नहिं पाए,
> टेढ़े-मेढ़े वचन रचन निर्भय ह्वै गाए।
> तब आप आय सु मनाय कर सुश्रूषा महमान की;
> कवि कौन मिताई कहि सकै (श्री) नाथ साथ रसखान की।

इनके 'प्रेमवाटिका' (सं० १६४१) और 'सुजान रसखान'-नामक दो ग्रंथों को गोस्वामी किशोरीलालजी ने प्रकाशित किया, जो हमारे पास वर्तमान हैं। प्रथम में केवल ५२ दोहे एवं सोरठे हैं, जिनमें शुद्ध प्रेम का बड़ा ही विशद रूप दिखाया गया है। उसमें आपने अपने वंश के विषय में भी कुछ लिखा है—

> बिधु सागर रस इंदु सुभ बरस सरस रस खानि;
> प्रेम-वाटिका रचि रुचिर चिर हिय हरष बखानि।
> अति पतरो अति दूर, प्रेम कठिन सबते सदा,

नित इकरस भरपूर, जग मैं सब जान्यो परै।
दंपति-सुख अरु विषय-रस पूजा निष्ठा ध्यान,
इनते परे बखानिए शुद्ध प्रेम रसखान।
मित्र कलत्र सुबंधु सुत इनमें सहज सनेह,
शुद्ध प्रेम इनमैं नहीं अकथ कथा सबिसेह।
इकअंगी बिनु कारनहि इकरस सदा समान,
गनै प्रियहि सरबस्व जो सोई प्रेम प्रमान।
डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय,
रहै एक रस चाहिकै प्रेम बखानौ सोय।
देखि गदर, हित साहिबी दिल्ली नगर मसान,
छिनहिं बादसा-बंसकी-ठसक छोड़ि रसखान।
प्रेम-निकेतन श्रीबनहि आय गोबरधन धाम।
लह्यो सरन चित चाहिकै जुगल सरूप ललाम।

सुजानरसखान में १२९ छंद हैं, जिनमें से प्राय १० दोहे-सोरठादि, और शेष सवैया एवं घनाचरी हैं। इन्होंने प्रेम का बड़ा मनोहर चित्र खींचा है, जिससे इनकी भक्ति भी प्रकट होती है। वह उसी प्रकार की थी, जैसी कि सूरदासजी की। इसलिये अतुल भक्ति रखते हुए भी इन्होंने श्रीकृष्ण-संबंधी शृंगार-रस को भी खूब लिखा है। इनकी कविता में प्रकृष्ट छंद बहुत-से हैं, और वह हर स्थान पर कृष्ण-प्रेम से भरी है। छंदों में अपना नाम लिखने में यह महाशय कभी-कभी दो अक्षर अधिक लिख जाते थे। इन्होंने शुद्ध ब्रजभाषा में कविता की, और अपने शब्दों में मिलित वर्ण बहुत कम आने दिए। अनुप्रास का इन्होंने बहुतायत से प्रयोग नहीं किया। कहीं-कहीं केवल स्वल्प रीति से कर दिया। पूरे भक्त होने पर भी यह शृंगार-रस की उत्कृष्ट कविता कर सकते थे। कविजन इनकी कविता बहुत पसंद करते हैं, और हम भी उनकी इस अनुमति से सहमत हैं। हम इनकी गणना दासजी की श्रेणी में करते हैं।

उदाहरण—

मानुस हौं तौ वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन,

जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नंद कि धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो भयो ब्रज-छत्र पुरंदर कारन;
जो खग हौं तौ बसेरो करौं उन कालिंदी-कूद कदंब की डारन। १।
या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर को तजि डारौं,
आठहू सिद्धि नवो निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारौं।
कोटिन ए कलधौत के धाम करीर के कुंजन ऊपर वारौं;
रसखानि सदा इन नैनन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं। २।
अँखियाँ अँखियाँ सो सकाय मिलाय हिलाय रिझाय हियो भरिबो,
बतियाँ चित्त चोरन चेटक-सी रस चारु चरित्रन ऊचरिबो।
रसखानि के प्रान सुधा भरिबो अधरान पै त्यों अधरा धरिबो;
इतने सब मैन के मोहन जंत्र पै मंत्र वसीकर-सो करिबो। ३

इस समय के अन्य कविगण

नाम—(२५५) कल्यानदास, ब्रजवासी। रचना-काल—१६३२।
विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं। साधारण श्रेणी।

नाम—(२५६) केवलराम, ब्रजवासी। रचना-काल—१६३२।
विवरण—साधारण श्रेणी।

नाम—(२५७) गदाधरदास वैष्णव, वृंदावन ग्रंथ—बानी।
रचना-काल—१६३२। विवरण—कृष्णदास के शिष्य थे।

नाम—(२५८) जगामग। रचना-काल—१६३२।
विवरण—यह अकबरशाह के दरबार में थे।

नाम—(२५९) देवा, उदैपुर, राजपूताना।
रचना-काल—१६३२। विवरण—साधारण श्रेणी।

नाम—(२६०) पद्मनाभ, ब्रजवासी। रचना-काल—१६३२।
विवरण—साधारण श्रेणी। कृष्णदास गलतावाले के शिष्य थे।

नाम—(२६१) जीवन। जन्म-काल—१६०८।
रचना-काल—१६३३। नाम—(२६२) केहरी।
जन्म-काल—१६१०। रचना-काल—१६३५।

विवरण—बुरहानपुरवाले रतसिंह के यहाँ थे।

नाम—(२६३) गंग उपनाम गंग ग्वाल।

रचना-काल—लगभग १६३५।

विवरण—इनका नाम ध्रुवदास की भक्त-नामावली एवं भक्तमाल में है।

नाम—(२६४) मुनिलाल। ग्रंथ—रामप्रकाश।

रचना-काल—१६३७।

विवरण—साधारण श्रेणी। इनका समय पहले अज्ञात होने से नंबर १६३९ था (प्र० त्रै० रि०)।

नाम—(२६५) चंद्रसखी ब्रजवासी। रचना-काल—१६३८।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं। राधावल्लभीय संप्रदाय के अनुयायी थे। साधारण श्रेणी।

नाम—(२६६) गणेशजी मिश्र।

रचना-काल—१६३९।

ग्रंथ—विक्रमविलास। ग्रंथ अच्छी व्रजभाषा में है।

विवरण—संवत् सत्रह से बरस बीते उंतालीस ;

माघ सुदी सुभ सप्तमी कीन्हों ग्रंथ नवीस।

नाम—(२६७) तख्त मल्ल।

ग्रंथ—श्रीकरकुंड की चौपाई। रचना-काल—१६३९।

नाम—(२६८) गोविंददास। जन्म-काल—१६१५।

रचना-काल—१६४०। ग्रंथ—एकत्र पद।

विवरण—इनकी रचना रागसागरोद्भव में है। साधारण श्रेणी।

नाम—(२६९) जलालुद्दीन। जन्म-काल—१६१५।

रचना-काल—१६४०।

विवरण—इनके कवित्त हज़ारा में हैं। साधारण श्रेणी।

नाम—(२७०) नारायणदास पंडित।

ग्रंथ—हितोपदेश भाषा, खोज (१९०४)

जन्म-काल—१६१५। रचना-काल—१६४०।

विवरण—साधारण श्रेणी। नाम—(२७१) नंदलाल।

जन्म-काल—१६११। रचना-काल—१६४०।

विवरण—साधारण श्रेणी। नाम—(२७२) मानिकचंद।

जन्म-काल—१६०८। रचना-काल—१६४०।

विवरण—साधारण श्रेणी। भक्त। भजनकर्ता कवि।

नाम—(२७३) अमृतराय। ग्रंथ—महाभारत भाषा।

रचना-काल—१६४१।

विवरण—यह अकबरशाह के यहाँ थे। साधारण श्रेणी।

नाम—(२७४) चेतनचन्द्र। ग्रंथ—अश्वविनोद शालिहोत्र।

जन्म-काल—१६१६। रचना-काल—१६४१।

विवरण—राजा कुशलसिंह सेंगर की आज्ञा से ग्रंथ बनाया। खोज में इनका संवत् १८१० निकलता है [द्वि० त्रै० रि०]

नाम—(२७५) हरिशंकर द्विज।

ग्रंथ—श्रीगणेशजी की कथा चारि युग की [प्र० त्रै० रि०]।

रचना-काल—१६४१।

विवरण—राजा बरजोरसिंह इनके आश्रयदाता थे।

नाम—(२७६) उदैसिंह महाराजा, मारवार।

ग्रंथ—ख्यात। रचना-काल—१६४२।

विवरण—यह इतिहास-ग्रंथ किसी कवि ने इनके नाम बनाया।

नाम—(२७७) पांडे जिनदास।

ग्रंथ—(१) जंबूचरित्र, (२) ज्ञान-सूर्योदय, (३) स्फुट कवित्त।

रचना-काल—१६४२। नाम—(२७८) मुन्नीलाल।

ग्रंथ—रामप्रकाश। रचना-काल—१६४२।

नाम—(२७९) कल्याणदेव जैन। ग्रंथ—देवराज वच्छराज चउपई।

रचना-काल—१६४३।

विवरण—श्वेतांबर साधु जिनचंद्र सूरि के शिष्य थे।

उदाहरण—

जिणवर चरण कमल नमी सुह गुरु हीय धरेसि ,
समस्या सवि सुख सपजइ भाजइ सयल कलेसि ।
बुद्धइ घण सुख पाइए बुद्धइ लहिए राज ,
बुद्धइ अति गरु अउ पणउ बुद्धि सरइ सवि काज ।
विद्याधर कुल ऊपनी सुर बेगा अभिधान ,
राजा नी अति मानिता वनिता माँहि प्रधान ।
सवत् सोल त्रयाला बरसिइ , एह प्रबंध कियउ मन हरसिहि ।
विक्रम नयरइ रिषभ जिणेसा , जसु समरण सवि टलइ कलेसा ।

पूर्व तुलसी-काल में ४२ कवि २३८ से न० २७६ पर्यंत हैं, यद्यपि समय केवल १५ साल का है। इससे प्रकट है कि हमारे कवियों की सख्या में अब संतोषदायिनी वृद्धि हो रही थी। इतने कवियों में कार्ष्ण वैष्णवों की गणना केवल ८ है, जिससे प्रकट है कि पद-रचयिताओं का समय बीत रहा था। उत्कृष्ट कवि गोस्वामीजी के अतिरिक्त अग्रदास, गदाधर, बलभद्र, रहीम और रसखान थे। अतएव हम देखते हैं कि साहित्यिक उन्नति सौर काल से भी विशेष हो रही थी, किंतु धार्मिक को छोड़कर लोग विविध विषयों पर आ रहे थे। गोस्वामी जी ने सगुणवादी दक्षिण मार्गस्थ रामभक्ति का इस काल रामायण द्वारा वह अपूर्व प्रचार किया, जो अब तक चल रहा है। आप हमारे न केवल सर्वोत्कृष्ट कवि, वरन् सर्वोत्कृष्ट धर्म-प्रचारक भी हुए। रामचरितमानस (रामायण) हमारा न केवल साहित्य-ग्रंथ, वरन् बाइबिल, कुरान, गीता, वेद आदि सभी कुछ है। रहीम इस काल के बहुत बड़े कवि थे, जिन्होंने नीति-कथन बहुत ही सच्चा और अनमोल किया। रसखान सरमोत्कृष्ट वैष्णव कवि थे। अकबर, करनेस और होलराय विविध विषयों पर काव्य-रचना करते थे। साहित्यिक सौंदर्य बहुत बढ़ रहा था। मानस तो तत्सम शब्दों से अलंकृत अवधी भाषा का ग्रंथ है, किंतु कुल मिलाकर हमारे साहित्य पर ब्रजभाषा का ही साम्राज्य था। वास्तव में अवधी और ब्रजभाषा में अंतर बोल-चाल के अतिरिक्त बहुत थोड़ा है, तथा दोनो के ग्रंथों में प्राय दोनो भाषाओं के शब्द आते हैं। इन दोनो के सहारे से

एक मधुर एवं समर्थ साहियक भाषा बन गई थी, जो विविध प्रकार के भाव व्यक्त करने में सक्षम थी। दोहा-चौपाइयों के ग्रंथों में अवधी की विशेषता रहती थी, तथा पदों, छप्पयों, षटपदों, सवैयाओं, घनाक्षरियों आदि में व्रजभाषा की। जहाँ जैसे शब्द अच्छे बैठते थे, वे रक्खे जाते थे। इस काल हमें दिल्ली, आगरा व्रज, गलता, ओड़छा, होलपुर आदि के कवि मिलते है। इस छोटे-से काल में रामायण की भक्ति, अकबरी दरबार तथा विविध विषयों की प्रधानता रही। अन्य ग्रंथों के अतिरिक्त इस काल सं० १६३६ से १६४२ तक एक या अनेक उदयपुरी कवियों द्वारा छितरा हुआ प्राचीन (चद-कृत) रासो ग्रथ एकत्र किया गया, तथा उसमें क्षेपक प्रचुरता से जुड़कर उसका वर्तमान रूप स्थापित हुआ। इस प्रकार जगत्प्रसिद्ध पृथ्वीराज रासो ग्रंथ भी एक प्रकार से इसी समय में उन्नत हुआ।

दशम अध्याय
माध्यमिक तुलसी-काल
(१६४६—१६७०)

यह समय २५ वर्षों का है, किंतु फिर भी इसमें ९९ नाम हैं। व्रज सिरोही, आगरा, ग़ाज़ीपुर, जौनपुर, लखनऊ, मारवाड़, महाराष्ट्र प्रांत, ओड़छा, वृंदावन आदि के सुकवि इस काल मिलते हैं। मुसलमानों में क़ादिरबख्श, मुबारक और नज़ीर के नाम आते है, महाकवि केशवदास हैं, और अन्य सुकवियों में प्रवीणराय, अमरेश, बनारसीदास तथा नाभादास। सौर काल के ढग पर रचना करनेवाले तीन कवि है और सूफ़ी केवल उसमान। पूर्व तुलसी-काल में कोई भी सूफ़ी न था। महाराष्ट्र प्रात के सतों में जन जसवंत और जनी जनार्दन हैं। इस काल में विविध-विषय-वर्णन की प्रणाली और भी वृद्धिगत हुई, तथा केशवदास के साथ पाँचवाँ ऐसा महाकवि हमें प्राप्त हुआ, जिसकी गणना नवरत्न में हो सकी। इनके पूर्व चद, कबीर, सूरदास और तुलसीदास भी ऐसे ही आदर के पात्र हो चुके थे। सगुण वैष्णव-साहित्य के उत्थान से सूफी और निर्गुण-धाराएँ बलवती न हो सकीं। केशवदास के समय से आचार्यता की भी स्थापना हमारे

साहित्य में हुई। तुलसीदास को छोड़ देने से पूर्व तुलसी-काल के सामने माध्यमिक में साहित्यिक प्रौढ़ता भी कुछ वृद्धिगत हुई। नाभादास के ग्रंथ से कथित संतों के नाम भविष्य के लिये अमर-से हो गए। प्रियादास की टीका भी इस विषय में बहुत उपयोगी है।

(२८०) महाकवि केशवदासजी

यह महाशय सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र और काशीनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म ओड़छे में संवत् १६१२ के लगभग हुआ होगा। प्रसिद्ध कवि बलभद्र इनके भाई थे। ओड़छा-नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इंद्रजीतसिंह के यहाँ इनका विशेष आदर था। महाराज बीरबल ने केवल एक छंद पर छ लाख रुपए इनको दिये। आपने उनके द्वारा अकबर के यहाँ से इंद्रजीत पर एक करोड़ रुपयों का जुर्माना माफ़ करा दिया। इसी समय से केशवदास का ओड़छा दरबार में विशेष मान हुआ, जिसका वर्णन इन्होंने स्वयं इस प्रकार लिखा है— "भूतल को इंद्र इंद्रजीत जीवै जुग-जुग जाके राज केसौदास राजु जो करत है।" इनके शरीरांत का समय सं० १६७४ सोचा जाता है।

केशवदास ने निम्न-लिखित ग्रंथ बनाए—रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचंद्रिका, विज्ञानगीता, वीरसिंह देव-चरित्र, जहाँगीरचंद्रिका, नख-शिख और रत्नबावनी। इनमें से अंतिम दो ग्रंथ हमने नहीं देखे हैं। रसिकप्रिया में शृंगार-प्रधान रसों का वर्णन है और आकार में यह ग्रंथ रसराज के बराबर होगा। खोज १९०३ से रसिकप्रिया ग्रंथ १६४८ में रचा जाना पाया जाता है। इसकी मनोहरता दर्शनीय है। विज्ञानगीता प्रबोधचंद्रोदय की भाँति, नाटक के ढर्रे का, एक साधारण ग्रंथ है। कविप्रिया विशेषतया अलंकार-प्रधान ग्रंथ है। इसमें दूषण, कवियों के गुण-दोष, कविता की जाँच, अलंकार, बारहमासा, नख-शिख और चित्र काव्य वर्णित है। यह बड़ा ही श्रेष्ठ ग्रंथ है, और स्वयं केशवदास ने इसकी प्रशंसा की है। इसी ग्रंथ से इनको आचार्य की पदवी मिली। इनके पूर्व केवल कृपाराम, गोप और मोहनलाल ने रीति-काव्य की थी, सो भी इन्हीं-सी सफलता के बहुत पीछे। उनके ग्रंथ साधारण हैं। राम-चंद्रिका में रामचरित्र का वर्णन अश्वमेध-पर्यंत है। यह भी एक बड़ा ही रोचक और

प्रशंसनीय ग्रंथ हैं। खोज १९०२ से कविप्रिया तथा रामचंद्रिका का संवत् १६५८ में रचा जाना पाया जाता है। वीरसिंह देव-चरित्र भी छप चुका है। इसमें १९४ पृष्ठ हैं। यह सं० १६६४ का बना है। इसकी रचना इनके अन्य ग्रंथों से शिथिल है। जहाँगीरचंद्रिका की रचना संवत् १६६९ में हुई।

केशवदास की भाषा संस्कृत और बुंदेलखंडी मिली हुई ब्रजभाषा है, जो प्रशंसनीय तथा चित्ताकर्षिणी है। इन्होंने अपनी कथा प्रासंगिक कविता में छंद बहुत शीघ्रता से बदले, और तुकांत की भी बड़ी सख्ती नहीं रक्खी। आपको अनुप्रास का इष्ट न था। उचित रीति से अनुप्रास का प्रयोग यह करते थे। आपके यहाँ अलंकारों, विचित्र कथनों आदि का बाहुल्य है, किंतु रस-परिपाक बहुत ऊँचे दर्जे का नहीं है, बहुत स्थानों पर आपने हनुमन्नाटक, कादंबरी अनर्घराघव आदि के अनुवाद रख दिए हैं। रामचंद्रिका आपकी परमोत्कृष्ट रचना है, किंतु वह रावण-वध-पर्यंत तथा अश्वमेध के वर्णन में तो रोचक है, शेष स्थानों पर बहुत नहीं। कथा-वर्णन में भी आप बहुत स्थानों पर कथा का डोर छोड़कर कूद-सा गए हैं, जिससे कथा का सामंजस्य यथोचित न होकर ग्रंथ विविध विषयों के वर्णनों का संग्रह-सा देख पड़ने लगता है। इतना सब होते हुए भी अधिकांश रामचंद्रिका में आरोचन की मात्रा प्राचुर्य से है। रीति-काव्य में केशवदास ने दंडी तथा रुय्यक का अनुकरण किया, न कि मम्मट और विश्वनाथ का, जैसा कि इनके पीछेवाले बहुतेरे आचार्यों ने किया है। विश्वनाथ ने पंद्रहवीं शताब्दी में अपना साहित्य-दर्पण रचा। आप पूर्वीय बंगाल के थे। श्रेष्ठ छंदों का केशव-काव्य में बाहुल्य है। अयोध्या, सूर्योदय, धनुष-यज्ञ, स्वयंवर इत्यादि बहुत-से विषयों के अच्छे वर्णन इन्होंने किए हैं। यह महाशय सर्वव्यापिनी दृष्टि के कवि थे। परशुराम का वर्णन इन्होंने कई और कवियों से अच्छा किया, और विभीषण को, उसके राम की तरफ मिल जाने के कारण, अश्वमेध में लव से खूब फटकार दिलवाई। इनकी कविता संस्कृत-शब्द एवं भाव-मिश्रित होने के कारण कठिन होती थी। उसके बाबत यह लोक-कहावत प्रचलित है—'कवि का दीन न चहै बिदाई; पूँछै केसव की कविताई।' कथा-प्रासंगिक कविता की प्रणाली प्रायः इन्हीं की चलाई हुई है। केशवदास की भाषा

सुव्यवस्थित और समर्थ है। शब्द-चयन कुछ संस्कृतपन लिए हुये सशक्त है। ओज की मुख्यता है, किंतु माधुर्य, प्रसाद और अर्थव्यक्त का भी समावेश कम नहीं है। छंदों में कहीं-कहीं मूल-संस्कृत का पूरा भाव न आ सकने से अर्थ-व्यक्त की कभी कदास कमी हो गई है। भाव-व्यंजना में स्वाभाविकता है तथा कला-पक्ष की प्रधानता है। हृदय-पक्ष की कुछ कमी अवश्य आ जाती है, किंतु लाक्षणिक मूर्तिमत्ता वर्तमान है। भावुकता खासी है, और भाव-पुष्टि भी अच्छी हुई है। अनुभूति की व्यजना प्रस्तुत है। संचारियों का चित्रण पाया जाता है और चमत्कार-कौशल भी। शास्त्रीय पद्धति पर गमन हुआ है। पुराण की वृत्ति आपकी वपौती थी। उसका उपयोग ग्रंथों में भी है। पठाकों को इनका विशेष वर्णन नवरत्न में देखना चाहिए।

उदाहरण—

भाल गुही गुन लाल लटैं लटकी लर मोतिन की सुखदैनी,
ताहि विलोकत 'आरसी लै कर आरस सों कछु सारसनैनी।
केसव स्याम दुरे दरसी परसी मति सों उपमा अति पैनी;
सूरज-मंडल मैं ससि-मंडल मध्य धसी जनु धार त्रिवैनी।

× × ×

मूलन ही को जहाँ अधोगति केसव गाई,
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाई।
दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही मैं,
श्रीफल को अभिलाख प्रकट कवि-कुल के जी मैं।
अति चंचल जहँ चलदलै विधवा वनी न नारि,
मन मोह्यो ऋपिराज को अद्भुत नगर निहारि।

× × ×

सोहत मचन की अवली गज-दंतमई छवि उज्जल छाई,
ईस मनों वसुधा मैं सुधारि सुधाधर-मंडल मंडि जुन्हाई।
ता महँ केसवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई;
देवन सों मिलि देवसभा मनु सीय-स्वयंवर देखन आई।

× × ×

कैटभ सो नरकासुर सो पल मैं मधु सो मुर सो जेहि मारयो ;
लोक चतुर्दस रच्छक केसव पूरन वेद-पुरान विचारयो।
श्रीकमला कुच कुंकुम मंडित पंडित वेद पुरान उचारयो ;
सो कर माँगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारयो।

× × ×

राघव की चतुरंग चमू चय को गनै केसव राज-समाजनि ;
सूर तुरंगन के उरझैं पद तुंग पताकनि की पट साजनि।
टूटि परैं तिनते मुकुता धरनी-उपमा बरनी कविराजनि ;
बिंदु किधौं नव फेननि सौं किधौं राजसिरी स्रवै मंगललाजनि।

× × ×

हरि कर मंडन सकल दुख-खंडन,
मुकुर महिमंडल को कहत अखंड मति ;
परम प्रकास तिमि पीयुष निवास,
परिपूरन उजास केसौदास भू अकास गति।
मदन कदन कैसे श्रीजू के सदन जेहि,
सोदर सुधोदर दिनेसजू के मीत अति ;
सीताजू के मुख सुषमा की उपमा को कहि,
कोमल न कमल अमल न रजनि-पति।

× × ×

देखौ बन बारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी ;
अति तपमय लेखी जग थित पेखी तदपि दिगंबर जानी।
जग जदपि दिगंबर पुष्पवती नर निरखि-निरखि मन मोहैं ;
पुनि पुष्पवती तन अति-अति पावन गर्भसहित हित सोहैं।
पुनि गर्भ सँजोगी रति-रस-भोगी जग जन लीन कहावै,
गुनि जग जन लीना नगर प्रवीना अति पति के चित भावै।
अति पतिहिं रमावै प्रेम बढ़ावै सौतिन प्रेम दृढ़ावै ;
अब यों दिन-रातिन गुनि बहु भाँतिन कवि-कुल-कीरति गावै।

× × ×

सुव्यवस्थित और समर्थ है। शब्द-चयन कुछ संस्कृतपन लिए हुये सशक्त है। ओज की मुख्यता है, किंतु माधुर्य, प्रसाद और अर्थव्यक्त का भी समावेश कम नहीं है। छंदों में कहीं-कहीं मूल-सस्कृत का पूरा भाव न आ सकने से अर्थ-व्यक्त को कभी कदास कमी हो गई है। भाव-व्यजना में स्वाभाविकता है तथा कला-पक्ष की प्रधानता है। हृदय-पक्ष की कुछ कमी अवश्य आ जाती है, किंतु लाक्षणिक मूर्तिमत्ता वर्तमान है। भवुकता ख़ासी है, और भाव-पुष्टि भी अच्छी हुई है। अनुभूति की व्यजना प्रस्तुत है। संचारियों का चित्रण पाया जाता है और चमत्कार-कौशल भी। शास्त्रीय पद्धति पर गमन हुआ है। पुराण की वृत्ति आपकी बपौती थी। उसका उपयोग ग्रथों में भी है। पठाकों को इनका विशेष वर्णन नवरत्न में देखना चाहिए।

उदाहरण—

भाल गुही गुन लाल लटैं लटकी लर मोतिन की सुखदैनी,
ताहि विलोकत 'आरसी लै कर आरस सों कछु सारसनैनी।
केसव स्याम दुरे दरसी परसी मति सों उपमा अति पैनी;
सूरज-मडल मैं ससि-मंडल मध्य धसी जनु धार त्रिवैनी।

× × ×

मूलन ही को जहाँ अधोगति केसव गाई,
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाई।
दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही मैं,
श्रीफल को अभिलाख प्रकट कवि-कुल के जी मैं।
अति चचल जहँ चलदलै विधवा बनी न नारि,
मन मोह्यो ऋपिराज को अद्भुत नगर निहारि।

× × ×

सोहत मचन की अवली गज-दंतमई छवि उज्जल छाई,
ईस मनो वसुधा मे सुधारि सुधाधर-मडल मढि जुन्हाई।
ता महँ केसवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई;
देवन सों मिलि देवसभा मनु सीय-स्वयवर देखन आई।

× × ×

कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुर सो जेहि मारयो ;
लोक चतुर्दस रच्छक केसव पूरन वेद-पुरान विचारयो।
श्रीकमला कुच कुंकुम मंडित पंडित वेद पुरान उचारयो ;
सो कर माँगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारयो।

× × ×

राघव की चतुरंग चमू चय को गनै केसव राज-समाजनि ,
सूर तुरंगन के अरुझैं पद तुंग पताकनि की पट साजनि।
टूटि परैं तिनते मुकुता धरनी-उपमा बरनी कविराजनि ,
बिंदु किधौं नव फेननि सों किधों राजसिरी स्रवैं मंगललाजनि।

× × ×

हरि कर मंडन सकल दुख-खंडन ,
मुकुर महिमंडल को कहत अखंड मति ;
परम प्रकास तिमि पीयुष निवास ,
परिपूरन उजास केसौदास भू अकास गति।
मदन कदन कैसे श्रीजू के सदन जेहि ,
सोदर सुधोदर दिनेसजू के मीत अति ;
सीताजू के मुख सुषमा की उपमा को कहि ,
कोमल न कमल अमल न रजनि-पति।

× × ×

देखी वन वारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी ;
अति तपमय लेखी जग थित पेखी तदपि दिगंबर जानी।
जग जदपि दिगंबर पुष्पवती नर निरखि-निरखि मन मोहैं ;
पुनि पुष्पवती तन अति-अति पावन गर्भसहित हित सोहैं।
पुनि गर्भ संजोगी रति-रस-भोगी जग जन लीन कहावै ,
गुनि जग जन लीना नगर प्रवीना अति पति के चित भावै।
अति पतिहिं रमावै प्रेम बढ़ावै सौतिन प्रेम दृढ़ावै ;
अब यों दिन-रातिन गुनि बहु भाँतिन कवि-कुल-कीरति गावै।

× × ×

उठि कै धर धूरि अकास चली, बहु चंचल बाजि खुरीन दली।
भुव हालति जानि अकास छिए, जनु थंभित ठौरहि ठौर किए।
रहि पूरि बिमाननि व्योमथली; तिनको जनु टारन धूरि चली।
परिपूरि अकासहि धूरि रही, सु गयो मिटि सूर-प्रकाश सही।
अपने कुल को कलह क्यों देखहिं रवि भगवंत;
यहै जानि अतर कियो मानो मही अनत।
बहु तामहँ दीह-पताक लसैं, मनु धूम मैं अग्नि कि ज्वाल बसैं।
रसना किधौं काल करालधनी; किधौं मीचु नचै चहुँ ओर बनी।

(२८१) चतुर्भुज कवि, ओरछा।

जन्म-काल—अनुमानत १६२०।

रचना-काल—अनुमानत १६४७।

विवरण—तत्कालीन महाराज श्रीवीरसिंह देव प्रथम के आश्रित।

उदाहरण—

सेत चमर चिलथंत दंत डगमगत डगत डग,
शीश हलत तन डुलत चित्तचिल मिलत धरत पग।
द्रग भरत श्रुत अश्रु त वास नाशा भ्रम भुल्लिय;
काल दिकह दुक्कियह आन यह औसर चुक्किय।
जंपहि न राम 'चत्रभुज' प्रवल, रहब सकल दिन दुरद वर;
सुभभह असुभभ समझह फजर, है कछु खबर कि वे खबर।

सोरठा

अरे असिहा वीर, नेक न चितवत डोकरा,
पातक नसत शरीर, जव थारा मुख दिक्खियाँ।
आतक्यो असपत्त उठिव विरसिंघ सिंघ विय,
दुवन दे दलमलन देश दक्खिन दिय कंपिय।
फिर कपिय गुजरात बहुर उत्तर शु कंप कर;
काल पीठ दे गयउ देख अति ज्वाल विषम भर।
अंगवय देव दानव न कोइ, 'चत्रभुज' जग जहँ जितियव;

असि टेक अवनि पग टेककर, धरम टेक ठड्डिय भयव—

सं० १६५० के लगभग का उदाहरण

राव जोधौ गया जी जात पधारिया। आगरारी पारवती नीसरीया,
यरां राजा करन कनवज रौ घणी राठौड़ तिणसूँ जोधौजी मिलिया।
तरै राजा करन पातिसाही अमराव थौ।
तिण पातिसाहिजीनूँ गुदरायौ राउ जोधौ
मारवाडिरौ घणि छै, वडौ राजा छै,
गुजारातिरैं, मुंहडै ह्णारौ मुलक छै।
(हिं० एकेडेमी, ति० प० जुलाई, १९३५)

नाम—(२८२) दुरसा (जी) चारण, आठा मारवाड़।

ग्रंथ—प्रताप-चौहत्तरा। रचना-काल—१६५०।

मरण-काल—१६९९।

विवरण—महाराना प्रताप का यश और अकबर की निंदा। श्लोक सं० ८० के बराबर।

नाम—(२८३) नागरीदास, वृंदावन। विहारिनिदास के शिष्य थे।

ग्रंथ—समय प्रवधसग्रह। अष्टक, वानी, दोहा, पद।

रचना-काल—१६५०।

विवरण—इन्होंने हितहरिवंश, हितध्रुव, व्यास, कृष्णदास, गोपीनाथ हित, रूपलाल हित तथा नरवाहन इत्यादि महात्माओं के और अपने भी पदों का संग्रह ९० पृष्ठों में किया। यह ग्रंथ हमने दरबार छतरपूर में देखा। काव्य इसका साधारण श्रेणी का है।

(२८४) प्रवीणराय वेश्या महाराज इन्द्रजीतसिंह ओड़छावाले के पास थी। इसी के वास्ते केशवदास ने कविप्रिया बनाई। यह वेश्या होकर भी अपने को पतिव्रता समझती थी। एक बार अकबर शाह ने इसे अपने यहाँ बुलाया, पर इंद्रजीतसिंह को छोड़कर इसने वहाँ रहना पसंद न किया। यह कविता भी साधारण श्रेणी की अच्छी बनाती थी। इसका समय १६५० के लगभग है।

उदाहरण—

आई हौं बूझन मंत्र तुम्हें निज श्वासन सों सिगरी मति गोई ,
देह तजों कि तजों कुल-कानि हिए न लजों लजिहै सब कोई।
स्वारथ औ' परमारथ को गथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई ,
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई।

यह छंद इसने उसी समय इंद्रजीतसिंह को सुनाया, जब अकबर ने इसे बुलाया था।

नाम—(२८५) मोहनदास। रचना-काल—लगभग १६५०।

ग्रंथ—सोरठावली, दोहावली, रागावली, कवितावली, सवैयावली, बारह-मासा, विश्व-ब्रह्मज्ञान।

विवरण—श्रीयुत भालेराव का कथन है कि यह कवि ग्वालियर-राज्यांतर्गत तवरधार प्रांत के निवासी गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के समकालीन थे। आप मोहनपंथ-नामक निर्गुणी मत के प्रतिपादक कहे जाते हैं। भालेरावजी के पास इनके बहुत से छंद हैं।

(२८६) लालनदास

यह महाशय डलमऊ में संवत् १६५२ के लगभग थे। इन्होंने शांतरस तथा स्फुट विषयों के छंद बनाए। इनकी कविता सानुप्रास और विशद होती थी। हम इन्हें तोष कवि की श्रेणी में रक्खेंगे।

उदाहरण—

दालव ऋषि की डलमऊ सुरसरि तीर निवास ,
तहाँ दास लालन बसे करि प्रकास की आस।

दीप-कैसी जाकी जोति जगरमगर होति,
गुलाबास बादर मैं दामिनी अलूदा है ,
जाफरानी फूलन में जैसे हेमलता लसै,
तामैं उग्यो चंद लेन रूप अजमूदा है।
लालनजू लालन के रंग सी निचोरि रँगी ,
सुरँग मजीठ ही के रंगन जमूदा है ;

वकि न वहूदा लखि छविन को तूदा ओप ,
अतर अलूदा अगला के अग ऊदा है।

नाम—(२८७) गैवीनाथ, महाराष्ट्र देश ।

रचना-काल—स० १६५५ । ग्रथ—गोपीचदाख्यान ।

विवरण – हिंदू आपको गैबीनाथ और मुसलमान गैबीपीर के नाम से कहते है। आपकी समाधि गर्भागिरी पर्वत पर है। आपके संप्रदाय का एक मठ कोल्हापुर के निकट वत्तीस शिराला-नामक ग्राम में है। इसी स्थान पर आपने उक्त ग्रंथ रचा। ग्रथ बृहत् रूप में है। आपके शिष्य सोह्रिरोवा आम्व्ये एक प्रसिद्ध साधु हो गए हैं। महाशय भालेरावजी द्वारा हमको इनका समय ज्ञात हुआ है।

(२८८) जनजसवत

महाराष्ट्र में आप एक प्रतिभाशाली कवि तथा सत हो गए है। आपके पिता का नाम जनार्दन था, और वह सवत १६६५ में वालवान प्रांत (वर्तमान नासिक ज़िला) के अंतर्गत मुल्हेर-राज्य में राजा प्रतापशाह के राजपुरोहित थे। कहा जाता है कि आपको बाल्यावस्था ही से साधु-सगति की रुचि थी और भगवान् श्रीरामचद्रजी ने आपको स्वप्न में नासिक जाकर तप करने की तथा श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी से दीक्षा लेने की प्रेरणा की थी, और तभी से आप श्रीगोसाईंजी के शिष्य हो गए। मालवे में जनजसवतजी ने कीर्तन किया, और इस कारण उस प्रांत में आपके वहुत-से शिष्य हो गए। इसके अनंतर इन्होंने काशीजी को प्रयाण किया, और वहाँ श्रीगोसाईंजी से भेट करके उनसे गुरुमंत्र लिया। काशीजी में आप श्रीगोसाईंजी के साथ वहुत दिन तक रहे, और उन्हीं के साथ आपने अयोध्या, मथुरा आदि तीर्थों की यात्रा की। श्रीगोसाईंजी की 'मेरो नेम सुनो जसवता , मेरो मन और नहीं लुभंता', 'कहा कहो, छवि आज की, भले विराजे नाथ' आदि उक्तियाँ इसी यात्रा से सवंध रखती हैं। जनजसवंतजी जव अपने गुरु श्रीगोसाईंजी से विदा होकर घर लौटे, तब आपके गुरु ने आपको श्रीहनुमान् की मूर्ति प्रसाद-रूप में दी।

श्रीयुत भालेरावजी का कथन है कि मूर्ति आपके वंशजों के पास अब तक विद्यमान है।

यह किंवदंती है कि एक समय गुजरात में पर्यटन करते हुए जगल में आपकी भेंट एक साधु-मडली से हुई। इस अवसर पर जब साधुओं को तृषा ने पीडित किया, तब आपने वहाँ कोई जलाशय निकट न होने के कारण एक कुआँ अपने योग-बल से निर्मित किया। शायद आपने कोई कुआँ ढूँढ निकाला हो। यह कुआँ गुजरात में अभी तक प्रसिद्ध है, और तभी से आपका नाम जलजसवत पड़ा। आगे 'ल' का 'न' होकर आप जनजसवंत कहलाए जाने लगे।

इनकी कीर्ति सुनकर इनके पिता के आश्रयदाता राजा प्रतापशाह ने इनको बुलाकर अपने यशोगान करने का अनुरोध किया, किंतु इस अवसर पर इनकी कही हुई स्पष्टोक्तियाँ सुनकर उक्त राजा को बुरा लगा, और इनको कुएँ में डुबाए जाने की आज्ञा मिली। परमात्मा की कृपा से इस पाप-दंड से आपकी रक्षा हुई। आपका स्पष्टोक्तियाँ आपकी स्फुट कविता के उदाहरण के रूप में नीचे उद्धृत को गई है। आपको तथा आपके तुलसीदास आदि ।चार पुत्रों को बालेर या बुधवान के राजा महाराणा श्रीदुरगबाजी और अमरसिंहजी ने सं० १६५६, १६७६ तथा १६७८ में गाँव और ज़मीन जागीर में दीं। आपकी मृत्यु स० १६७४ में हुई। आपने इस विषय में स्वयं यों लिखा है—

> सवत् सोलह सो चौओतरा, रवितनया के तीर।
> फाल्गुन शुल्का अष्टमी, जसवंत तज्यो शरीर।

इनके कविता-सग्रह में गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की अप्रकाशित कुछ कविता भी मिली है, ऐसा महाशय भलेरावजी का कथन है। ऊपर कहा जा चुका है कि इनको स० १६५६ में जागीर प्राप्त हुई, अतएव इनका यह काल ख्याति-पूर्ण समझकर हमने उसी को माना है।

उदाहरण—

> नर-गुन गाई सो खर - मुख होई,
> तू भूपति जैसो करे तैसो होई।
> पुर भान पच्छम जो करै;

तोही जसवत और नहीं डरै।
हरि सों बिमुख भया क्यों राजा,
हाथी घोड़े देस दास सब हैं कामिनि के काजा।
कहत जसवत दु ख मत मानो,
हरि से बिमुख भया क्यों राजा।

\+ \+ \+

कोई वदो कोई निंदो कोई कैसो कहो रे;
रघुपति साथे प्रीति बांधी होई जैसो होई रे।
केवल को भद्रसाथी बांधा नीर था भरपूर रे,
रामचद्र ने कूर्म बनकर राख लीनी वात रे।
चद सूरज जिनी जोत बिन स्थभ विना आकास रे,
जल ऊपर पाषान तारे क्यों नहीं तारे दास रे।
जपते सिव जनकादिक मुनि जन नारदादिक सत रे,
जन्म-जन्म के स्वामी रघुपति दास जनजसवत रे।

नाम—(२८९) जनी जनार्दन, महाराष्ट्र देश।
मृत्यु-काल—सं० १६५८। ग्रथ—हिंदी में स्फुट पद।

विवरण—आप बीजापुर-राज्य में तहसीलदार थे। एक समय वहाँ अकाल पड़ने पर आपने सरकारी कोष लुटा दिया था, और उस उपलक्ष में आपको प्राण-दड की आज्ञा हुई, किंतु किसी भाँति प्राण-रक्षा हो गई। इसके पश्चात् आप परमार्थ-साधन में लग गए। आप जनार्दन स्वामी के शिष्य और महात्मा एकनाथजी के गुरुभाई थे। इनका मृत्यु-काल हमको महाशय भालेरावजी द्वारा प्राप्त हुआ है।

उदाहरण—

जब तु आया, तब क्या लाया, क्या ले जायेगा।
किनने बुलाया, झूँठा धंधा, पडिया फदा, देखत क्या हो अंधा।
कहत जनार्दन सुन अरे मन, न छोड उस साईं के चरन॥

(२९०) नाभादासजी व प्रियादासजी

नाभादासजी एक बड़े ही प्रसिद्ध भक्त और महात्मा हो गए हैं। उन्होंने भक्तमाल-नामक ग्रंथ में क़रीब २०० भक्तों के वर्णन किए हैं। आप महात्मा अग्रदास के शिष्य थे। बाबू राधाकृष्णदासजी ने ध्रुवदास की भक्त-नामावली में सप्रमाण सिद्ध किया है कि भक्तमाल संवत् १६४२ के पीछे और १६८० के पहले बनी। अतएव आपका कथन १६५८ में हुआ है। भक्तमाल में लिखा है कि—

बिट्ठलेश नंदन सुभग जग कोऊ नहिं वा समान ;
श्रीवल्लभजू के बंश में सुरतरु गिरिधर भ्राजमान।
तुलसीदासजी के विषय में भक्तमाल कहती है कि—
रामचरण रस मत्त रहत अहनिशि व्रतधारी।

तुलसीदास संबंधी वर्तमान काल के कथन से प्रकट है कि भक्तमाल उनके समय में बनी, सो इसका समय उनके मरण-काल १६८० के पूर्व है। उधर विट्ठलेश का देहांत संवत् १६४२ में हुआ, और तब गिरिधरजी गद्दी पर बैठे। भक्तमाल इस समय के पीछे बनी। नाभाजी के शिष्य प्रियादास ने संवत् १७६९ में भक्तमाल की टीका बनाई। इससे नाभादास का संवत् १७०० के लगभग शरीरांत होना अनुमान-सिद्ध माना जा सकता है। नाभादास को नारायणदास भी कहते हैं। यह भी लिखा हुआ है कि नाभादासजी का समय संवत् १७०० तक है। यह महाशय अग्रदासजी के शिष्य थे। इनकी जाति के विषय में बहुतों का मत है कि यह डोम थे, क्योंकि भक्तमाल में इनके प्रसिद्ध समकालीन टीकाकार ने इन्हें हनुमान-वंशी लिखा है, और मारवाड़ी भाषा में डोम-शब्द का प्रयोजन हनुमान है। एक टीकाकार ने इनके विषय में यह भी लिखा है कि वैष्णवों की जाति-पाँति वक्तव्य नहीं है। इन्हीं की आज्ञा से इनके शिष्य प्रियादासजी ने भक्तमाल की टीका संवत् १७६९ में लिखी। जान पड़ता है, इन्होंने आज्ञा पहले दे रक्खी थी, और टीका पीछे तैयार हुई। भक्तमाल के मूल में २१६ छंद और टीका में ६२४ छंद हैं, जिनमें प्राय सभी घनाक्षरी

है। टीका में प्रियादासजी ने अर्थ न लिखकर जिन भक्तों का वर्णन मूल में सूक्ष्मतया हुआ है, उन्हीं का विस्तार-पूर्वक कथन किया है, और उनके विषय में बहुत-सी नवीन बातें लिखी हैं। अत मूल से टीका अधिक उपयोगी है। जिन भक्तों के नाम लिखे गए है, उनमें से अधिकतर तीन-चार सौ वर्षों के भीतर के ही है, और इस ग्रंथ मे प्राय· किसी भी विख्यात भक्त का नाम छूट नहीं रहा है। अत वल्लभीय सम्प्रदाय तथा और ऐसे-ही-ऐसे सम्प्रदायों और पंथों के हाल स्थिर रखने में यह ग्रंथ बड़ा ही उपकारी है। इसमें सूरदास, तुलसीदास, वल्लभाचार्य, कबीरदास, हितहरिवंश आदि सभी प्रसिद्ध एवं बहुतेरे अप्रसिद्ध भक्तों के नाम आ गए है। खेद केवल इतना है कि सन्-संवत् का कुछ भी ब्योरा नहीं दिया हुआ है। फिर भी भक्तमाल की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इसकी कविता भी मनोहर है। नाभादासजी ने प्रायः एक-एक छप्पय द्वारा प्रत्येक भक्त का वर्णन किया है, परंतु कहीं-कहीं एक ही छप्पय में कई मनुष्यों का एवं कई छंदों में एक ही भक्त का हाल भी कहा है। प्रिया-दासजी ने प्राय सभी स्थानों पर विस्तार-पूर्वक वर्णन किए है, और जो जितना बड़ा भक्त है, उसका उतना ही अधिक वर्णन है। इन दोनो महात्माओं के महत्त्व की प्रशंसा कोई कहाँ तक कर सकता है? इन महाशयों ने जाति-पाँति का बंधन बहुत कुछ ढीला कर दिया था, और किसी के वैष्णव हो जाने पर ये उसके महत्त्व की जाँच जाति से न करके भक्ति की मात्रा से करते थे। इन्होंने 'जाति-पाँति पूछै ना कोय; हरि का भजै सो हरि का होय।' को यथार्थ कर दिखाया, और अपने निर्मल चरित्रों से संसार को पवित्र किया। कविता के अनुसार हम इन्हें तोष कवि की श्रेणी मे रक्खेंगे। खोज में प्रियादासजी-कृत भागवत् भाषा भी लिखी है, जो बुंदेलखंडी भाषा में बनी है। 'महात्मा नाभादास तथा प्रियादास के कथनों में भक्तों की जीवनी लिखने का विशेष प्रयास न होकर उनके माहात्म्य-कथन में असंभव घटनाओं का समावेश परम प्रचुरता से है। उस काल हमारा समाज असंभव कथन बिना किसी माहात्म्य ग्राह्य कम मानता था। इतना सब होते हुए भी भक्तमाल अच्छा ग्रंथ माना जाता है, क्योंकि इसमें संतों के चरित्र-रक्षण की उपयोगिता ख़ासी है।

उदाहरण लीजिए—

नाभादासजी

श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मन मोद घन।
मधुर भाव सम्मिलित ललित लीला सुबलित छबि,
निरखत हरषत हृदय प्रेम बरषत सुकलित कबि।
भव निस्तारन हेत देत दृढ़ भक्ति सबन नित;
जासु सुजस-ससि उदै हरत अति तमभ्रम श्रम चित।
आनँदकंद श्रीनंद सुत श्रीवृषभानुसुता भजन;
श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मन मोद घन।

प्रियादासजी

वृंदावन ब्रज भूमि जानत न कोऊ प्रिया,
दई दरसाई जैसी सुक मुख गाई है,
रीति हू उपासना की भागवत अनुसार,
लियो रस सार सो रसिक सुखदाई है।
आज्ञा प्रभु पाय पुनि गोपेश्वर लगे आय,
किए ग्रंथ भाव भक्ति भाँति सब पाई है,
एक-एक बात मैं समात मन बुद्धि, जब
पुलकित गात दृग झरी-सी लगाई है।

ये दोनो महात्मा भक्तिशिरोमणि होने के अतिरिक्त सुकवि भी थे। इनके छंदों में कहीं-कहीं छंदोभंग जान पड़ता है, परंतु यह छापनेवालों की अल्पज्ञता का फल है, न कि इनकी कविता का। भक्तमाल के बराबर उपयोगी ग्रंथ हिंदी में बहुत कम हैं। इस ग्रंथ की बहुत-सी अन्य टीकाएँ हुई हैं। दो अन्य टीकाओं के नाम शिवसिंहसरोज में भी लिखे हैं। संसार ने इस ग्रंथ का जितना आदर किया है, उसके यह योग्य भी है। नाभादासजी ने दो अष्टयाम भी बनाए, जो हमने छतरपुर में देखे। इनमें से एक गद्य ब्रजभाषा में है, और दूसरा छंदोबद्ध, विशेषतया दोहा-चौपाइयों में। गद्य-ग्रंथ ५६ बड़े पृष्ठों का है,

और पद्यवाला ५० बड़े पृष्ठों का। इनका रामचरित्र के पद-नामक एक और ग्रंथ द्वितीय त्रैवार्षिक खोज में मिला है।

उदाहरण—

तब श्रीमहाराज कुमार प्रथम वशिष्ट महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये। फिरि अपर वृन्द समाज तिनको प्रनाम करत भये। फिर श्रीराजाधिराजजू को जोहार करिकै श्रीमहेंद्रनाथ दशरथजू के निकट बैठत भये।

अवधपुरी की सोभा जैसी, कहि नहिं सकहिं शेष, श्रुति तैसी।
रचित कोट कलधौत सोहावन, विविध रंग मति अति मनभावन।
चहुदिसि विपिन प्रमोद अनूपा, चतुर वीस जोजन रस रूपा।
सुदिसि नगर सरजू सरि पावनि, मनिमय तीरथ परम सोहावनि।
विकसे जलज भृंग रस भूले, गुंजत जल-समूह दोउ फूले।
बरसत त्रिविधि सुधा सम बारी; विकसे विविध कंज मन हारी।

परिखा प्रति चहुँदिसि लसत कंचन कोट प्रकास;
विविध भाँति नग जगमगत प्रति गोपुर पुर पास।
दिव्य फटिक मै कोट की शोभा कहि न सिराय;
चहुँदिसि अदभुत जोति मैं जगमगात सुखदाय।

(२६१) कादिरबख्श

यह महाशय पिहानी, ज़िला हरदोई के रहनेवाले संवत् १६३५ में उत्पन्न हुए। यह सय्यद इब्राहीम के शिष्य थे, और कविता आदरणीय करते थे। इनके किसी ग्रंथ का नाम ज्ञात नहीं हुआ है, पर स्फुट काव्य परम मनोहर देखने में आया है। इनका कविता-काल संवत् १६५९ समझना चाहिए। हम इन्हें तोष कवि की श्रेणी में रक्खेंगे। आप वल्लभीय संप्रदाय के भी भक्त कहे गए हैं।

उदाहरण—

गुन को न पूछै कोऊ, औगुन की बात पूछै,
कहा भयो दई, कलियुग यों खरानो है;
पोथी औ' पुरान ज्ञान, ठट्ठन में डारि देत,

चुगुल चवाइन को मान ठहरानो है।
कादिर कहत यासों कछू कहिबे की नाहिं,
जगत की रीति देखि चुप मन मानो है ;
खोलि देखौ हियो सब ओरन सोंभाँति-भाँति,
गुन ना हेरानो गुन-गाहक हेरानो है।

सं० १६६० के लगभग का उदाहरण

तिणि बेला दातार जूझार राजा रतन मूँछाँ करि घालि बोलै। तरुआर तोलै। आगै लड्का कुरखेत महाभारत हूआ। देवदाणव लरि मूआ। च्यारि जुग कथा रही। वेदव्यास वालमीक कही। सु तीसरौ महाभारत आगम कहवा उजेणि खेत। अगनि सोर गाजसी। पवन वाजसी। गजबंध छत्रबंध गजराव गडसी। हिंदू असुराइण लडसी।

(राव रतन महासेदा सोतरी वचनिका)

नाम—(२९२) अमरेश। जन्म-काल—१६३५।

रचना-काल—१६६०।

विवरण—इनके छंद कालिदासहजारा में मिलते हैं, पर कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इनकी कविता मनोहर है। इनको तोष कवि की श्रेणी में हम रखते हैं।

उदाहरण—

कसि कुच कंचुकी मैं, विरचु बिमल हार,
मालती के सुमन धरेई कुम्हिलाइगे ,
गोरी गारु चदन वगारु वनसारु अब,
दीपक उज्यारु तम, छिति पर छाइगे।
वारु धूप अगर अगारु धूप बैठी कहा,
अमरेस तेरे आजु भूलि-से सुभाइगे ,
सरद सुहाई साँझ आई सेज साजु, अस
कहत सुआ के आँसु, वाके नैन आइगे।

नाम—(२९३) मुक्तामणिदास। रचना-काल—१६६०।

विवरण—इनका काव्य गोसाईं तुलसीदासजी ने पसद किया था।

(२९४) राघवदास कुंभनदास के पौत्र थे। आपका कविता-काल संवत् १६६० के लगभग समझना चाहिए। आपकी कविता अच्छी सुनी जाती है, पर वह हमारे देखने में नहीं आई।

नाम—(२९५) प्रवीन । ग्रंथ—सारसग्रह।

रचना-काल—लगभग १६६१।

विवरण—इन्होंने गोस्वामी वनचंद्र, श्रीगोस्वामी हितहरिवश के पुत्र, की आज्ञा से सारसंग्रह-नामक पुस्तक सगृहीत की, अतः इनका कविता-समय १६६० के लगभग निश्चय किया गया। इस पुस्तक में १५० कवियों की कविता संगृहीत है। यह हमारे पुस्कालय में प्रस्तुत है।

(२९६) मुवारक

सैयद मुवारक अली बिलग्रामी का जन्म सवत् १६४० में कहा जाता है। यह महाशय अरबी, फ़ारसी तथा सस्कृत के बड़े विद्वान् और भाषा के अच्छे कवि थे। सुना जाता है कि इन्होंने १० अंगों पर सौ-सौ दोहे बनाए, जिनमें से तिलशतक व अलकशतक प्रकाशित हो चुके हैं, और हमारे पुस्तकालय में मौजूद हैं। इनके अलावा और कोई ग्रथ इनका देखने में नहीं आया, परतु स्फुट छंद बहुत देख पड़ते है। इनकी कविता सरस और मनोमोहिनी है। हम इनको पद्माकर की श्रेणी में समझते है। आपने रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अच्छी कही हैं। रचना-काल सवत् १६६१ के लगभग है।

उदाहरण—

कान्ह की बाँकी चितौनि चुभी झुकि, काल्हि ही झाँकी है, ग्वाल गवाछनि,
देखी है नोखी-सी चोखी-सी कोरनि ओछे फिरै उभरैं, चित जा छनि।
मारेई जाति निहारे मुवारक, ये सहजै कजरारे मृगाछनि;
सींक लै काजर दे री गवाँरिनि, आँगुरी तेरी कटैंगी कटाछनि॥ १॥

वाजत नगारे मेघ ताल देत नदी नारे,
झींगुरन झाँझ भेरी विहंग बजाई है;
नीलग्रीव नाचकारी कोकिल अलापचारी,
पौन वीनधारी चाटी चातक लगाई है;

चुगुल चवाइन को मान ठहरानो है।
कादिर कहत यासों कछू कहिबे की नाहिं,
जगत की रीति देखि चुप मन मानो है ;
खोलि देखौ हियो सब ओरन सोंभाँति-भाँति,
गुन ना हेरानो गुन-गाहक हेरानो है।

सं० १६६० के लगभग का उदाहरण

तिणि वेला दातार जूझार राजा रतन मूँछाँ करि घालि बोलै। तरुआर तोलै। आगै लङ्का कुरखेत महाभारत हूआ। देवदाणव लरि मूआ। च्यारि जुग कथा रही। वेदव्यास वालमीक कही। सु तीसरौ महाभारत आगम कहता उजेणि खेत। अगनि सोर गाजसी। पवन वाजसी। गजबध छत्रबंध गजरात गड़सी। हिंदू असुराइण लड़सी।

(राव रतन महासेदा सोतरी वचनिका)

नाम—(२९२) अमरेश। जन्म-काल—१६३५।

रचना-काल—१६६०।

विवरण—इनके छंद कालिदासहज़ारा में मिलते हैं, पर कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इनकी कविता मनोहर है। इनको तोष कवि की श्रेणी में हम रखते हैं।

उदाहरण—

कसि कुच कंचुकी मैं, विरचु बिमल हार,
मालती के सुमन धरेई कुम्हिलाइगो ,
गोरी गारु चंदन बगारु घनसारु अब,
दीपक उज्यारु तम, छिति पर छाइगो।
वारु धूप अगर प्रगारु धूप बैठी कहा,
अमरेस तेरे आजु भूलि-से सुभाइगो ,
सरद सुहाई साँझ आई सेज साजु, अस
कहत सुआ के आँसु, वाके नैन आइगो।

नाम—(२९३) मुक्तामणिदास। रचना-काल—१६६०।

से भरा है, और पूर्ण रूपेण प्रशंसनीय है। इनकी भाषा साधारण व्रजभाषा है। इनके कई भजनों में अच्छी कविता की गई है। बहुत लोगों का मत है कि इनकी कविता नवरत्नवाले कवियों तक से समानता कर सक्ती है, पर हमारा मत इस कथन से नहीं मिलता। फिर भी बनासीदासजी को हम एक अच्छा कवि, तोष कवि की श्रेणी का, समझते हैं।

उदाहरण—

भौंदू समझ सबद यह मेरा;
जो तू देखै इन आँखिन सों तामें कछू न तेरा।
पराधीन बल इन आखिन को बिनु परकास न सूझै;
सो परकास अगिनि रवि-ससि को तू अपनो करि बूझै।
तेरे दृग मुद्रित घट अंतर अंध रूप तू डोलै;
कै तो सहज खुलैं वे आँखैं कै गुरु संगति खोलै।
भौंदू ते हिरदै की आँखैं;
जे करखैं अपनी सुख संपति भ्रम की संपति नाखैं।
जिन आँखिन सों निरखि भेद गुन ज्ञानी ज्ञान विचारैं;
जिन आँखिन सों लखि सरूप मुनि ध्यान धारना धारैं,

गद्य यथा

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो। संशय, विमोह, विभ्रम ये तीन भाव जामें नाहीं सो सम्यग्दृष्टी। संशय, विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टांत करि दिखाइयतु है सो सुनो।

काया से विचारि प्रीति माया ही में हार-जीति,
लिए हठ रीति जैसे हारिल की लकरी;
चंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि,
त्यों ही पाँय गाड़ै पै न छाड़ै टेक पकरी।
मोह की मरोर सों भरम को न ठौर पावै,
धावै चहुँ ओर ज्यों बढ़ावै जाल मकरी;
ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूठ के झरोखे झूलि,

मनिमाल-जुगनू मुबारक तिमिर थार
चौमुख चिराक चारु चपला चलाई है,
बालम बिदेस, नए दुख को जनमु भयो,
पावस हमारे लाई बिरह बधाई है॥ २॥
अकल मुबारक तिय बदन लटकिपरी यों साफ़,
खुसनवीस मुनसी मदन, लिख्यो काँच पर काफ़॥ ३॥
सब जग पेरत तिलन को, थक्यो चित्त यह हेरि;
तव कपोल को एक तिल, सब जग डारयो पेरि॥ ४॥

(२९७) बनारसीदास (१६६८)

यह महाशय खरगसेन जैन के पुत्र संवत् १६४३ में उत्पन्न हुए। इन्होंने १६९८ पर्यंत अपना वृहत् जीवन-चरित्र ६७३ दोहा-चौपाइयों के अर्द्धकथानक-नामक अपने ग्रंथ में दिया। उसके पीछे नहीं ज्ञात है कि इनकी जीवन-यात्रा कब तक स्थिर रही। यह जौहरी थे, और जौनपुर तथा आगरे में रहा करते थे। इनका जन्म-स्थान जौनपुर था। युवावस्था में इन महाशय के आचरण बिगड़ गए थे, और इन्हें कुष्ट-रोग का दुःख भी झेलना पड़ा, पर पीछे से इन्हें ज्ञान हो गया, और इन्होंने शृंगार-रस का अपना ग्रंथ गोमती नदी में फेंक दिया। बनारसी-विलास, नाटक समयसार, नाममाला, अर्द्धकथानक तथा बनारसी-पद्धति-नामक इनके पाँच ग्रंथ हैं, जिनमें से प्रथम दो हमारे पास वर्तमान हैं। खोज में इन्हीं बनारसीदास के मोक्षपदी-ध्रुव-वंदना तथा कल्याण मंदिर भाषा-नामक ग्रंथ भी मिले हैं। चतुर्थ त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में इनके दो ग्रंथ वेदनिर्णयपंचाशिक तथा मारगन विद्या-नामक मिले हैं [खोज १९००]। बनारसी-बिलास २५२ पृष्ठों का ग्रंथ इनकी स्फुट कविता का संग्रह है, जिसमें घनाक्षरी, सवैया, छप्पय, दोहा, चौपाई आदि बहुत-से छंदों में कविता की गई है, और कई पृष्ठों तक ब्रजभाषा का गद्य भी है। नाटक समय-सार नाटक-ग्रंथ नहीं है, वरन् एक उपदेश-ग्रंथ महात्मा कुंदकुंदाचार्य-कृत इसी नाम के एक ग्रंथ के आश्रय पर बना। इसमें १२० पृष्ठ हैं। नाममाला एक प्रकार का कोष-ग्रंथ है। बनारसी पद्धति का अधिक हाल ज्ञात नहीं हो सका। बनारसीदास की कविता धर्मोपदेशों

नाम—(३००) चतुर्भुज, ओरछा । रचना-काल—१६४७ ।

विवरण—म० वीरसिंहदेव प्रथम के आश्रित कवि ।

नाम—(३०१) नैनसुख, पंजाबी केशवदास के पुत्र ।

ग्रंथ—वैद्यमनोत्सव ११० । रचना-काल—१६४९ ।

विवरण—साधारण श्रेणी [खोज १९०० तथा १९०३] ।

नाम—(३०२) अगर । जन्म-काल—१६२६ । रचना-काल—१६५० ।

विवरण—शांतरस की कविता की है, जो साधारण श्रेणी की है ।

नाम—(३०३) कुंजलालजी गोस्वामी । ग्रंथ—स्फुट पद ।

रचना-काल—१६५० के लगभग ।

विवरण—राधावल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्य ।

नाम—(३०४ जमालुद्दीन, पिहानी । जन्म-काल—१६२५ ।

रचना-काल—१६५० । नाम—(३०५) झूँठा स्वामी ।

ग्रंथ—पद्यावली । रचना-काल—१६५० । विवरण—राधावल्लभीय ।

नाम—(३०६) दामोदरचंद्र गोस्वामी ब्रजवासी ।

ग्रंथ—समयप्रबंध, हस्तामलक, स्फुट पद । जन्म-काल—१६२२ ।

रचना-काल—१६५० ।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं । साधारण श्रेणी ।

नाम—(३०७) नारायण भट्ट स्वामी, ऊँचगाँव (बरसाना) ।

जन्म-काल—१६२० , रचना-काल—१६५० ।

विवरण—रामलीला का चलन इन्हीं महाशय ने चलाया । साधारण कवि थे ।

नाम—(३०८) नंदन । जन्म-काल—१६२५ ।

रचना-काल—१६५० ।

नाम—(३०९) हित विट्ठलजी । ग्रंथ—स्फुट पद ।

रचना-काल—१६५० । जन्म-काल—१६२५ ।

विवरण—हित हरिवंश के वंशज नागरवर गोस्वामी के शिष्य ।

नाम—(३१०) इब्राहीम सैयद, पिहानी (हरदोई ।

फूली फिरै ममता जँजीरन सों जकरी।
निरभय करन परम परधान, भवसमुद्र जलतारन यान।
शिव मंदिर अघ हरण अनिंद, बदहुँ पास चरन अरविंद।
कमठ मान भंजन बर बीर; गरिमा सागर गुन गंभीर।
सुर कुरु पार लहै नहिं जास, मैं अजान जंपू जस तास।

(२६८) उसमान

यह महाशय शैख़ हसन गाज़ीपुर-निवासी के पुत्र जहाँगीर शाह के समय में हुए। इन्होंने संवत् १६७० में चित्रावली-नामक एक प्रेम-कहानी दोहा-चौपाइयों में, जायसी की रचना के ढंग पर, बनाई। इनकी रचना सबल और मनोहर है। हम इनको साधारण श्रेणी में रखते हैं। यदि इनका समय ग्रंथ हमारे देखने में आता, तो इनकी कविता के विषय में हम अधिक निश्चय के साथ अनुमति दे सकते।

कहीं-कहीं इन्होंने जायसी की पदावली भी अपने यहाँ रख ली है। इनकी रचना में कुछ पौराणिकता भी है, क्योंकि नायक शिव का अंश माना गया है।

उदाहरण—

आदि बखानौं सोइ चितेरा, यह जग चित्र कीन्ह जेहि केरा।
कीन्हेसि चित्र पुरुष अउ नारी, को जल पर अस सकइ सँवारी।
कीन्हेसि जोति सूर-ससि-तारा, को असि जोति सिखइ को पारा।
कीन्हेसि बयन बेद जेहि सीखा; को अस चित्र पवन पर लीखा।
अइस चित्र लिखि जानइ सोई, वोहि बिनु मेटि सकइ नहिं कोई।
कीन्हेसि रंग श्याम अउ सेता, राता पीत अउर जग जेता।
वह सब बरन कीन्ह जहँ ताईं, आपु अबर्न अरूप गोसाईं।

कीन्हा अगिनि पीन पर भाँति-भाँति संसार,
आपुन सब महँ मिलि रहा को निगरावइ पार।

इस समय के अन्य कविगण

नाम—(२९९) ओलीराम।
जन्म-काल—१६२१। रचना-काल—१६४६।

नाम—(३००) चतुर्भुज, ओरछा । रचना-काल—१६४७ ।

विवरण—म० वीरसिंहदेव प्रथम के आश्रित कवि ।

नाम—(३०१) नैनसुख, पंजाबी केशवदास के पुत्र ।

ग्रंथ—वैद्यमनोत्सव ११० । रचना-काल—१६४९ ।

विवरण—साधारण श्रेणी [खोज १९०० तथा १९०३] ।

नाम—(३०२) अगर । जन्म-काल—१६२६ । रचना-काल—१६५० ।

विवरण—शांतरस की कविता की है, जो साधारण श्रेणी की है ।

नाम—(३०३) कुंजलालजी गोस्वामी । ग्रंथ—स्फुट पद ।

रचना-काल—१६५० के लगभग ।

विवरण—राधावल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्य ।

नाम—(३०४ जमालुद्दीन, पिहानी । जन्म-काल—१६२५ ।

रचना-काल—१६५० । नाम—(३०५) कूँठा स्वामी ।

ग्रंथ—पद्यावली । रचना-काल—१६५० । विवरण—राधावल्लभीय ।

नाम—(३०६) दामोदरचंद्र गोस्वामी व्रजवासी ।

ग्रंथ—समयप्रबंध, हस्तामलक, स्फुट पद । जन्म-काल—१६२० ।

रचना-काल—१६५० ।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं । साधारण श्रेणी ।

नाम—(३०७) नारायण भट्ट स्वामी, ऊँचगाँव (बरसाना) ।

जन्म-काल—१६२० , रचना-काल—१६५० ।

विवरण—रामलीला का चलन इन्हीं महाशय ने चलाया । साधारण कवि थे ।

नाम—(३०८) नंदन । जन्म-काल—१६२५ ।

रचना-काल—१६५० ।

नाम—(३०९) हित विट्ठलजी । ग्रंथ—स्फुट पद ।

रचना-काल—१६५० । जन्म-काल—१६२५ ।

विवरण—हित हरिवंश के वंशज नागरवर गोस्वामी के शिष्य ।

नाम—(३१०) इब्राहीम सैयद, पिहानी (हरदोई ।

रचना-काल—१६५१।

विवरण—यह महाशय कादिर कवि के गुरु थे।

नाम—(३११) रानी रारधरीजी राठूरिन, सिरोही।

रचना-काल—१६५१। नाम—(३१२) हरिराम।

ग्रंथ—(१) छंदरत्नावली (१६५१) और (२) जानकी-राम-चरित्र नाटक (द्वि० त्रै० रि०)।

रचना-काल—१६५१। विवरण—लल्लूलाल के पूर्वज।

नाम—(३१३ शुक्र। ग्रथ—संकट-चौथ की कथा।

रचना-काल—स० १६५१। नाम—(३१४) मालदेव जैन।

ग्रथ—(१) पुरदरकुमार-चउपई, (२) भोजप्रबध।

रचना-काल—१६५२।

विवरण—वड़गच्छीय भावदेव सूरि के शिष्य थे।

उदाहरण—

> नर-नारी जे रसिक ते सुणियहु सब चित लाइ ;
> ढूँढन कबहि घुमाइयहिं विना सरस तरु नाइ।
> सरस कथा जइ होइ तौ सुणइ सविहि मन लाइ ;
> जिहँ सुवास होवहिं कुसुम सरस मधुर तिहँ जाइ।
> भावदेव सुरि गुणनिलउ वडगछ कमल दिणद ;
> तासु सु सीस शिष्य कहइ मालदेव आनंद।

नाम—(३१५) खेमजी, ब्रजवासी। ग्रंथ—खेमजी की चिंतवनी।

जन्म-काल—१६३०। रचना-काल—१६५५।

विवरण—साधारण श्रेणी। नाम—(३१६) खेमदास, बुंदेलखंडी।

ग्रंथ—सुखसंवाद।

जन्म-काल—१६३०। रचना-काल—१६५५।

विवरण—साधारण श्रेणी (खोज १९०१-१-१९०२)।

नाम—(३१७) धीरज नदिद (इंद्रजीतसिंह), ओड़छा।

जन्म-काल—१६३७। रचना-काल—१६५५।

विवरण—राजकुमार इंद्रजीतसिंह ओड़छावाले बड़े गुणग्राही और गुणी थे। इन्हीं के दरबार में केशवदास तथा प्रवीणराय पातुरी थी। कविता भी इन्होंने की है, जो साधारण श्रेणी की है।

नाम—(३१८) पदुमचारिणी, बीकानेर। रचना-काल—१६५५।

विवरण—मलाजी सदू की पुत्री।

नाम—(३१९) नजीर, आगरावाले।

ग्रंथ—रानी केतकी की कहानी हिंदी (खड़ी बोली में)। यह ग्रंथ इंशाअल्ला का कहा जाता है। शायद नज़ीर ने कोई दूसरा ग्रंथ इसी नाम का लिखा हो।

रचना-काल—१६५७ के पूर्व।

विवरण—आप कृष्ण-भक्त कहे जाते हैं। नाम—(३२०) अनंतदास।

ग्रंथ—(१) राजदासपरिचय, (२) नामदेव आदि की परची-संग्रह, (३) पीपाजी (खोज १९०२), (१६५७) की परची, और (४) रैदासजी की (प्र० त्रै० रि०) परची इत्यादि।

नाम—(३२१) कान्हरदास चौबे, ब्रजवासी।

रचना-काल—१६५७। नाम—(३२२) काशीनाथ।

रचना-काल—१६५७।

विवरण—साधारण श्रेणी। खोज में लिखा है कि यह महाशय बलभद्र के पुत्र और केशवदास के भतीजे थे, पर केशवदास के पिता का भी नाम काशीनाथ था, इससे हमें यह संबंध अशुद्ध जँचता है।

नाम—(३२३) कृष्णजीवन लच्छीराम।

ग्रंथ—(१) योगसुधानिधि और (२) करुणाभरण नाटक (खोज १९००)।

रचना-काल—१६५७। विवरण—पिता का नाम कृष्णजीवन कल्याण।

नाम—(३२४) जनगोपाल।

ग्रंथ—(१) ध्रुव-चरित्र और (२) भरथरी-चरित्र (खोज १९००)।

रचना-काल—१६५७। विवरण—महात्मा दादूदयाल के शिष्य।

नाम—(३२५) निधि । रचना-काल—१६५७ ।

नाम—(३२६) नीलकंठ मिश्र, अंतर्वेदी ।

रचना-काल—१६५७ । विवरण—तोप-श्रेणी ।

नाम—(३२७) नीलाधर । रचना-काल—१६५७ ।

नाम—(३२८) बालकृष्ण त्रिपाठी । ग्रंथ—रसचंद्रिका (पिंगल) ।

जन्म-काल—१६३२ । रचना-काल—१६५७ ।

विवरण—बलभद्र के पुत्र । यह केशवदास के भतीजे नहीं हो सकते, क्योंकि वह मिश्र थे । साधारण श्रेणी के कवि थे ।

नाम—(३२९) बेनीमाधवदास, पस्का ज़िला गोंडा ।

ग्रंथ—गोसाईं-चरित्र ।

जन्म-काल—१६२५ । मृत्यु-काल—१६९९ ।

रचना-काल—१६५७ ।

विवरण—गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य थे ।

नाम—(३३०) विजयदेव सूरि । ग्रंथ—श्रीशीलरास ।

रचना-काल—१६५७ ।

विवरण—नेमनाथ के पुत्र शीलजैन का इतिहास (खोज १९००) ।

नाम—(३३१ लक्ष्मीनारायण मैथिल ।

ग्रथ—(१) प्रेम-तरंगिणी और (२) हनुमानजी का तमाचा (द्वि० त्रै० रि०) ।

रचना-काल—१६५७ । विवरण—खानखाना के यहाँ थे ।

नाम—(३३२) माधव । ग्रंथ—विनोद-सागर ।

रचना-काल—१६५९ ।

विवरण—अकबर शाह के समय में थे । कृष्ण का यश वर्णन किया है । मधुसूदनदास की श्रेणी ।

नाम—(३३३) अभिराम । रचना-काल—१६६० के पूर्व ।

विवरण—इनकी रचना सारसंग्रह में है । नाम—(३३४) उदयराय ।

रचना-काल—१६६० के पूर्व ।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है।

नाम—(३३५) केशव पुत्रवधू। रचना-काल—१६६० के पूर्व।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है।

नाम—(३३६) खेम। रचना-काल—१६६० के पूर्व।

विवरण—यह दादूदयाल के शिष्य थे, और इन्होंने 'रंभा-शुक- सवाद' ग्रंथ बनाया है। नं० ३१५ भी देखिए।

नाम—(३३७) द्विजेश।

रचना-काल—१६६० के पूर्व। नाम—(३३८) धनुराय।

रचना-काल—१६६० के पूर्व। नाम—(३३९) ब्रजचंद।

रचना-काल—१६६० के पूर्व। विवरण—इनकी कविता सारसग्रह में है।

नाम—(३४०) ब्रजजीवन राधावल्लीभीय।

रचना-काल—१६६० के पूर्व।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है।

नाम—(३४१) मनोभव। रचना-काल—१६६० के पूर्व।

विवरण—इनकी कविता सारसग्रह में है।

नाम—(३४२) रसरास। रचना-काल—१६६० के पूर्व।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है। साधारण श्रेणी।

नाम—(३४३) लालमनि। रचना-काल १६६० के पूर्व।

विवरण—इनकी रचना सारसग्रह में है।

नाम—(३४४) हरिनाम। रचना-काल—१६६० के पूर्व।

विवरण—इनकी कविता सारसग्रह में है।

नाम—(३४५) उदयराज जैनजती, बीकानेर।

ग्रंथ—फुटकर दोहे तथा 'गुणमाला' और 'रगेज दीन महताब'।

रचना-काल—१६६० के लगभग।

विवरण—उपदेश राजनीति-विषय में। आश्रयदाता महाराजा रायसिंहजी, जिन्होंने स० १६३० से १६८८ तक राज्य किया।

उदाहरण--

> गरज समै मन और है सरी गरज मन और,
> उदैराज मन मनुष कर रहै न एकहि ठौर।
> उदैराज अरहट घरी ऐसी जग की प्रीति,
> रीती आवै सामुही भरी जात बिपरीति।
> उदैराज उद्यम किए सब कछु होत तयार,
> गाय-भैंस नहिं बंस मैं दूध पियत मंजार।

नाम—(३४६) गदाधरजी। ग्रंथ—स्फुट पद।
रचना-काल—१६६०। विवरण—साधारण श्रेणी।

नाम—(३७७) घनश्माम शुक्ल।
ग्रंथ—(१) साँझी, (२) मानसपुर-पत्तावली (द्वि० त्रै० रि०)।
जन्म-काल—१६३५। रचना-काल—१६६०।

नाम—(३४८) निहाल। जन्म काल— १६३५।
रचना-काल—१६६०। नाम—(३४९) पीतांवरदासजी स्वामी।
ग्रंथ—बानी। रचना-काल—१६६० के करीब (खोज १९०५)।
विवरण—स्वामी हरिदासजी के पुत्र थे। मधुसूदनदास की श्रेणी।

नाम—(३५०) कोटा-नरेश महाराजा मुकुंदसिंह हाड़ा।
जन्म-काल—१६३५। रचना-काल—१६६०।

विवरण—यह महाशय संवत् १७२६ में उज्जैन की लड़ाई में शाहजहाँ की ओर से लड़कर औरंगज़ेब द्वारा मारे गए थे।

नाम—(३५१) हरिरामदासजी प्राचीन।
ग्रंथ—हरिरामदासजी की बानी। जन्म-काल—१६३१।
रचना-काल—१६६०। विवरण—राजपूतानी-भाषा में।

नाम—(३५२) चूरामणि। रचना-काल—१६६१।
विवरण—इनकी कविता बहुत उत्कृष्ट और सरस है।

नाम— (३५३) ऋषभदास जैन।

ग्रंथ—(१) श्रेणिक रास (१६६२), (२) कुमारपाल रास (१६७०) और (३) रोहिणीय रास।

रचना-काल—१६६२। नाम—(२५४) दादू पिंजारा, । महाराष्ट्र देश।

ग्रंथ—(१) विचारसागर और (२) स्फुट रचना।

रचना-काल—स० १६६३।

विवरण—आपने मुसलमान होते हुए भी मराठी तथा हिंदी में रचना की है। आपका विचारसागर-नामक हिंदी-ग्रंथ उपलब्ध है, ऐसा महाशय भाले-रावजी का कथन है। इनका वर्णन श्रीनाथजी के भक्तमाल में पाया जाता है। महाशय भालेरावजी द्वारा ही हमको इनका समय ज्ञात हुआ है।

नाम—(२५५) धर्मदास। ग्रंथ—महाभारत (प्र० त्रै० रि०)

रचना-काल—१६६४।

विवरण—च० त्रै० रि० में समय १७११ लिखा है।

नाम—(२५६) माधवदास चारण।

ग्रंथ—(१) गुणरासो और (२) स्फुट पद।

रचना-काल—१६६४ (खोज १९०१)।

नाम—(२५७) रायमल्ल ब्रह्मचारी।

ग्रंथ—(१) भविष्यदत्त-चरित्र और (२) सीता-चरित्र।

रचना-काल—१६६४। विवरण—सकलचंद्रभट्टारक के शिष्य थे।

नाम—(२५८) कुँवरपाल। ग्रंथ—स्फुट पद्य।

रचना-काल—१६६५। विवरण—बनारसीदास के मित्र थे।

नाम—(२५९) मोहन माथुर। ग्रंथ—अष्टावक्र।

रचना-काल—१६६५।

विवरण—तोष-श्रेणी (खोज १९०३) रिपुवार के साथ ग्रंथ बनाया।

नाम—(२६०) कल्यानी (स्त्री)। ग्रंथ—स्फुट भजन।

रचना-काल—१६६६ के लगभग।

विवरण—भक्त कवि। ध्रुवभक्त-नामावली में नाम है।

नाम—(२६१) गिरिधर स्वामी, वृंदावनवासी।

ग्रंथ—स्फुट भजन। रचना-काल—१६६६ के लगभग।

विवरण—ध्रुवभक्त-नामावली में नाम है। भक्तमाल में उदार भक्त कहे गए हैं।

नाम—(३६२) नवल (स्त्री)।

ग्रंथ—स्फुट भजन। रचना-काल—१६६६ के लगभग।

विवरण—ध्रुवभक्त-नामावली में नाम है।

नाम—(३६३) नाथ भट्ट। ग्रंथ—स्फुट भजन।

जन्म-काल—१६४१। रचना-काल—१६६६ के लगभग।

विवरण—ध्रुवभक्त-नामावली में इनका नाम है। यह राधारमन की गद्दी के महंत गोपाल भट्ट के पुत्र थे।

नाम—(३६४) रघुनाथ ब्राह्मण।

ग्रंथ—रघुनाथ-विलास (प्र० त्रै०, खोज)।

रचना-काल—१६६६ के लगभग।

विवरण—ध्रुवभक्त-नामावली में नाम है।

नाम—(३६५) रूपचंद, आगरावासी।

ग्रंथ— (१) परमार्थी दोहाशतक और (२) नीत परमार्थी। रचना-काल—१६६३ के लगभग।

विवरण—बनारसीदास के सम-सामयिक तथा जैन-धर्म के मर्मज्ञ पंडित थे।

उदाहरण—

चेतना चित परिचय विना जप तप सबै निरत्थ;
कन विन तुस जिमि फटक तैं आवै कछू न हत्थ।
चेतन सो परिचय नहीं कहा भए व्रत धारि;
सालि विहूनै खेत की वृथा बनावति वारि।
विना तत्त्व-परिचय लगत अपर भाव अभिराम;
ताम और रस रुचत है अमृत न चाख्यो जाम।
भ्रम ते भूल्यो अपनपौ खोजत किन घट माँहि;
विसरी वस्तु न कर चढ़ै जो देखै घर चाहि।

नाम—(२६६) श्रीविष्णुविचित्र।

रचना-काल—१६६६ के लगभग।

विवरण—इनका नाम ध्रुवभक्त-नामावली में है। ध्रुवदास इन्हें सुकवि कहते हैं।

नाम—(२६७) हरपन्चद। ग्रंथ—पुण्यसार।

रचना-काल—१६६६। नाम—(२६८) हेमविजय।

ग्रंथ—स्फुट पद्य। रचना-काल—१६६६ के लगभग।

विवरण—हरिविजय सूरि के शिष्य तथा संस्कृत के मार्मिक विद्वान् और कवि थे।

उदाहरण—

घनघोर घटा उनई जु नई इतवें उतवें चमकी बिजली;
पियु रे पियु रे पपिहा विललाति जु मोर किंगार करंति मिली।
बिच बिंदु परे दग आँसु झरें दुनि धार अपार इसी निकली;
मुनि हेम के साहिब देखन कूँ उग्रसेन लसी सु अकेली चली।
कहि राजि मती सुमती सखियान कूँ एक खिनेक खरी रहु रे;
सखि री सगरी अँगुरी मुहि वाहि करंति (?) बहुत्त इमे निहुरे।
अबही तबही कबही जबही यदुराय को जाय इसी कहु रे;
मुनि हेम के साहिब नेम जी हो अब तो रन तें तुम क्यों बहुरे।

नाम—(२६९) प्राणचद्र।

ग्रंथ—रामायण, महानाटक, उपनाम महानाटक भाषा।

उदाहरण—

कातिक मास पच्छ उजियारा, तीरथ पुन्य सोम कर वारा।
ता दिन कथा कीन्ह अनुमाना; साह सलेम दिलीपति थाना।
सवत सोरह सै सत साठा; पुन्य पगास पाय भय नाठा।
जो सारद माता कर दाया; बरनौं आदि पुरुष की माया।

रचना-काल—१६६७ (खोज १९०२)।

नाम—(२७०) भगत। रचना-काल—१६६७।

ग्रंथ—भक्त-चालीसा (द्वि० त्रै० रि०)।

नाम—(३७१) भूपति। ग्रंथ—कविता श्रीहजूराँ री।

रचना-काल—१६६७। नाम—(३७२) रघुनाथ ब्राह्मण।

ग्रंथ—रघुनाथ-विलास। रचना-काल—१६६७।

विवरण—बादशाह जहाँगीर के समय में थे। सभवत. नं० ३६४ भी यही हों।

नाम—(३७३) पद्म भगत।

ग्रंथ—रुक्मिणीजी को व्याहलो (खोज १९००)।

रचना-काल—१६६९ के पूर्व। नाम—(३७४) विद्याकमल।

ग्रंथ—भगवती-गीत। रचना-काल—१६६९ के पूर्व (खोज १९००)।

विवरण—जैनमतानुसार सरस्वती-स्तुति।

नाम—(३७५) मुनि लावण्य। ग्रंथ—रावण-मदोदरी-संवाद।

रचना-काल—१६६९ के पूर्व (खोज १९००) नाम—(३७६) अज्ञात।

रचना-काल—सं० १६६९। ग्रंथ—राजकुली।

विवरण—महाशय भालेरावजी का कथन है कि य ... एक लेख में स्वर्गीय अलेक्ज़ेंडर फ़ार्ब्स के संग्रह में संगृहीत है ... का विषय तथा राजपूताने के कतिपय राजाओं के राज्याभिषेक ... नि हुए नगर, जैन-देवालय आदि के वर्णन पर है। २९ ... सं की दी हुई है। इसमें मारवाड़ी, गुजराती, हिंदी ... के ग्रंथकर्ता का नाम अज्ञात है।

नाम—(३७७) विहारीवल्लभ, व्रजवासी

ग्रंथ—भगवत रसिकजू की कथा (प्र० त्रै०

रचना-काल—१६७०।

विवरण—भगवत रसिक अनुयायी। खोज

निकलता है।

नाम—(३७८) वृंदावनदास, म वा

जन्म-काल—१६४५। रचना-काल—१

ग्यारहवाँ अध्याय

(अंतिम तुलसी काल संवत् १६७१ से १६८० तक)

नाम—(३७९) बान चौबे, मथुरा।

रचना-काल—१६७४। ग्रंथ—कलि-चरित्र।

विवरण—उक्त चौबोला छंदों का ग्रंथ चौबेजी ने खानखानाजी की आज्ञा से बनाया। इन्हें बादशाह ने अरद नाम की जागीर लगाई।

उदाहरण—

संवत सोरह से चौहत्तरि चैत चाँद उजियारी ;
आयसु दई खानखाना ने तब कविता अनुसारी।
ब्राह्मण जाति मथुरिया पाठक बान नाम जग आयो ;
हुकुम दियो राजाधिराज सम महामान मन भायो।

नाम—(३८०) केशव मिश्र। रचना-काल—१६७५।

ग्रंथ—जहाँगीर-जस-चंद्रिका।

(३८१) लीलाधर

इनके तीन छंद हमारे देखने में आए हैं। यह संवत् १६७६ के लगभग जोधपुर के महाराजा गजसिंह के यहाँ थे। इनकी कविता अच्छी है। छेकानुप्रास का ध्यान इन्हें अधिक रहता था। हम इन्हें साधारण श्रेणी का कवि मानते हैं। सूदन कवि ने इनका नाम लिखा है, और दास ने भी काव्यनिर्णय में इनका नाम दिया है।

रचना-काल—१६७६ के लगभग।

उदाहरण—

पावै जो परस ताको होत है सरस भाग,
पावन दरस जाको जानो अनुसार है,
रमनीय पेखन' की लीलाधर पेखन की,
ललित सुरेखन की प्रगटी पसार है।

ग्रंथ—भक्त-चालीसा (द्वि० त्रै० रि०)।

नाम—(३७१) भूपति । ग्रंथ—कविता श्रीहजूराँ री ।

रचना-काल—१६६७ । नाम—(३७२) रघुनाथ ब्राह्मण ।

ग्रंथ—रघुनाथ-विलास । रचना-काल—१६६७ ।

विवरण—बादशाह जहाँगीर के समय में थे। सभवत: नं० ३६४ भी यही हों ।

नाम—(३७३) पद्म भगत ।

ग्रंथ—रुक्मिणीजी को ब्याहलो (खोज १९००) ।

रचना-काल—१६६९ के पूर्व । नाम—(३७४) विद्याकमल ।

ग्रंथ—भगवती-गीत । रचना-काल—१६६९ के पूर्व (खोज १९००) ।

विवरण—जैनमतानुसार सरस्वती-स्तुति ।

नाम—(३७५) मुनि लावण्य । ग्रंथ—रावण-मंदोदरी-संवाद ।

रचना-काल—१६६९ के पूर्व (खोज १९००) नाम—(३७६) अज्ञात ।

रचना-काल—सं० १६६९ । ग्रंथ—राजकुली ।

विवरण—महाशय भालेरावजी का कथन है कि यह ग्रंथ एक लेख के रूप में स्वर्गीय अलेक्ज़ेंडर फ़ार्ब्स के संग्रह में संगृहीत है। ग्रंथ का विषय गुजरात तथा राजपूताने के कतिपय राजाओं के राज्याभिषेक के समय उनके निर्माण किए हुए नगर, जैन-देवालय आदि के वर्णन पर है। इसमें अंतिम घटना सं० १६६६ की दी हुई है। इसमें मारवाड़ी, गुजराती, हिंदी आदि भाषाओं के प्रयोग हैं। ग्रंथकर्ता का नाम अज्ञात है।

नाम—(३७७) बिहारीवल्लभ, ब्रजवासी ।

ग्रंथ—भगवत रसिकजू की कथा (प्र० त्रै० रि०)

रचना-काल—१६७० ।

विवरण—भगवत रसिक अनुयायी । खोज-रिपोर्ट से इनका समय १६३२ निकलता है ।

नाम—(३७८) वृंदावनदास, ब्रजवासी ।

जन्म-काल—१६४५ । रचना-काल—१६७० ।

ग्यारहवाँ अध्याय

(अंतिम तुलसी-काल संवत् १६७१ से १६८० तक)

नाम—(२७९) वान चौबे, मथुरा।

रचना-काल—१६७४। ग्रंथ—कलि-चरित्र।

विवरण—उक्त चौबोला छंदों का ग्रंथ चौबेजी ने खानख़ानाजी की आज्ञा से बनाया। इन्हें बादशाह ने अरद नाम की जागीर लगाई।

उदाहरण—

> संवत सोरह सै चौहत्तरि चैत चाँद उजियारी ;
> आयसु दई खानखाना ने तब कविता अनुसारी।
> ब्राह्मण जाति मथुरिया पाठक वान नाम जग आयो ,
> हुकुम दियो राजाधिराज सम महामान मन भायो।

नाम—(३८०) केशव मिश्र। रचना-काल—१६७५।

ग्रंथ—जहाँगीर-जस-चंद्रिका।

(३८१) लीलाधर

इनके तीन छंद हमारे देखने में आए हैं। यह संवत् १६७६ के लगभग जोधपुर के महाराजा गजसिंह के यहाँ थे। इनकी कविता अच्छी है। छेकानुप्रास का ध्यान इन्हें अधिक रहता था। हम इन्हें साधारण श्रेणी का कवि मानते हैं। सूदन कवि ने इनका नाम लिखा है, और दास ने भी काव्यनिर्णय में इनका नाम दिया है।

रचना-काल—१६७६ के लगभग।

उदाहरण—

> पावै जो परस ताको होत है सरस भाग,
> पावन दरस जाको जानो अनुसार है ,
> रमनीय धेखन' की लीलाधर पेखन की,
> ललित सुरेखन की मगरी पसार है।

बहिक्रम बूढ़ी करि चिंता चित गूढ़ी करि,
रचनाऊ ढूँढ़ी बिधि बिविध बिचार है,
कथन कथे री लोक चौदहो मथे री,
पर तेरी या हथेरी की न पाई अनुहार है।

जान पड़ता है, इन्होंने कोई नख-शिख बनाया है, जिसका यह छंद है।

(३८२) श्रीसुंदरदासजी दादूपंथी (१६७७)

नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज में पाँच सुंदरदास लिखे हैं, और सरोज में तीन। खोजवाले सुंदरदासों में से तीन का पता दिया है, और दो का नाम यों ही लिखा है। पाँच मनुष्यों में एक का कविता-काल संवत् १८५७ से १८६९ तक है, और शेष का १६५७ से १७१० तक। अत इन चारो नामों का समय भी ऐसा मिलता है कि इनके विषय में कुछ निश्चय होना कठिन है। हमारे विचार में इन चार में से केवल दो कवि थे, और शेष दो नाम दोहराकर आए हैं। एक तो सुदरदास शाहजहाँ के यहाँ थे, जिन्होंने सुदर-शृंगार और सिंहासन-बत्तीसी-नामक ग्रथ १६८८ के लगभग बनाए, और द्वितीय सुंदरदास प्रसिद्ध कवि दादूपंथी दूसर घनिया थे, जो जयपुर के निकट दौसा में, सं० १६५३ में, उत्पन्न हुए थे, और जिनका कविता-काल १६७७ से १७४६ तक समझ पड़ता है। इन्होंने निम्न-लिखित ग्रंथ बनाए है—

हरिबोल चितावणी, साखी, सुंदरदासजी की सवैया (१६७७) सुंदर-सांख्य (१६७७), तर्क-चिंतामणि, विवेक-चिंतामणि (१६७०), पचइन्द्री-निर्णय ग्रथ (१६९१), बानी, ज्ञानसमुद्र (१७१०), ज्ञानविलास, सुंदर-विलास, सुंदर-काव्य (प्र० त्रै० रि०), सवैया, टीका भगवद्गीता, सुँदराष्टक, कुल १३ अष्टकें, सर्वांग-योग, सुख-समाधि, स्वप्न-बोध, वेद-विचार, उक्त अनूप, सुदर-बावनी, सहजानद, गृह-वैराग-बोध, त्रिविध अत करण-वेद और पद। प्र० तथा द्वि० त्रै० खोज में रुक्मागद की एकादशी-कथा, ज्ञान-सागर, विवेकचेतावनी, सुदर-गीता और विचारमाला भी लिखे है (१७०७)। इनके छद और ग्रंथ यत्र-तत्र देखने में बहुत आए है, जिनसे जान पड़ता है कि भारी भक्त होने के अतिरिक्त यह महाशय उत्कृष्ट कवि भी थे, और साहित्य पर

इनका प्रगाढ़ अधिकार था। इनका ज्ञानसमुद्र हमने छतरपुर में देखा है। उसमें गुरु-शिष्य-संवाद है।

उदाहरण—

मौज करो गुरुदेव दयाकर शब्द 'सुनाय कह्यो हरि नेरो;
ज्यों रवि के प्रगटे निसि जात सुदूरि कियो भ्रम मानि अँधेरो।
काइक वाचक मानस हू करि है गुरुदेव ही मंगल मेरो;
सुंदरदास कहै कर जोरि जु दादूदयाल को हौं नित चेरो।
सेवक सेव्य मिले रस पावत भिन्न नहीं अरु भिन्न सदाहीं;
ज्यों जल बीच धरयौ जलपिंड सुपिंडहु नीर जुदे कछु नाहीं।
ज्यों दृग में पुतरी दृग एक नहीं कछु भिन्न न भिन्न देखाहीं;
सुंदर सेवक भाव सदा यह भक्ति परा परमेश्वर माहीं।

कैधों पेट चूल्हो कैधों भाठी कैधों भार आहि,
जोई कछु झोंकियत सोई जरि जात है,
कैधों पेट कूप कैधों वापी कैधों सागर है,
जेतो जल परै तेतो सकल समात है।
कैधों पेट भूत कैधों प्रेत कैधों राक्स है,
खावँ-खावँ करै कहू नेकु ना अघात है;
सुंदर कहत प्रभु कौन पाप पायो पेट,
जब ते जनम लीन्हों तब ही ते खात है।

यह महाशय बड़े प्रसिद्ध साधु, योगी, फ़ारसी, संस्कृत तथा भाषा के सुबोध पंडित, औपनिषद्, वेदांत एवं योग-विषय के अच्छे विद्वान् और ब्रह्मचारी थे। आपने काशी जाकर प्रचुर परिश्रम द्वारा विद्याध्ययन किया था। इन्होंने ज्ञान और नीति के भी उत्कृष्ट दोहे कहे हैं। इनकी कविता में व्रजभाषा, खड़ी बोली और पंजाबी का मिश्रण है। इनके कई छपे ग्रंथ हमने छतरपुर में देखे हैं। शाहजहाँ के सुंदरदास भी सत्कवि थे। उनका हाल समयानुसार उचित स्थान पर लिखा जायगा। निम्न-लिखित छंदों से यह उचित निष्कर्ष निकाला गया है

कि सुंदरदास दादूपंथी संवत् १६५३ में उत्पन्न और १७४६ में पचत्व को प्राप्त हुए।

सात बरस सौ मैं घटै इतने दिन की देह ;
सुंदर आतम अमर है देह खेह की खेह।
संवत सत्रह सै छीयाला ; कातिक की अष्टमी उजाला।
तीजे पहर बृहस्पति बार ; सुंदर मिलिया सुंदर सार।
इक्ती ती वीराणवे इतने बरस रहत ;
स्वामी सुदरदास को कोऊ न पायो अंत।

यह महाशय ११ वर्ष की अवस्था में फ़क़ीर हो गए थे। इनका कविता-काल संवत् १६७७ से १७४६ पर्यंत समझना चाहिए। सुंदरदासजी समय-समय पर दादूद्वारे, नराणे, लाहौर, अमृतसर, शेखावाटी, जयपूर, फ़तेहपूर आदि में रहे।

उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त इनके निम्न-लिखित अन्य ग्रंथों के नाम लिखे हुए हैं—

अद्भुत उपदेश, पचप्रभाव, गुरुसंप्रदाय, उत्पत्तिनिशानी, सतगुरु-महिमा, वारहमासे दो, आयुर्वलभेदविचार, गूढ़ अर्थ, नौ निद्धि, अष्ट सिद्धि, ससवाद, वारहराशी, छत्र-वंद छंद, कमल-वंद छंद, आदि अक्षर दोहा छद, मध्य अक्षरी, निगड़ छद, सिंहावलोकनी, प्रतिलोम, अनुलोम और वृत्तवंद दोहा।

चौथी त्रैवार्षिक खोज में इनका सुंदर गीतावैराग्यपरिकरण ग्रंथ मिला है। इनकी रचना दादूपथी सिद्धांतों के अनुसार है।

संत कवियों में कबीरदास, तुलसीदास, दादूदयाल, सुंदरदास आदि कुछ ही कवियों को छोड़कर शेष द्वारा साहित्यिक दृष्टि से निम्न श्रेणी का काव्य बना, जो सुपठित समाज में समादृत न हो सका, और पंथों का चलन समाज के निम्न भाग में ही रहा। ये सत लोग स्वयं साहित्य-मार्ग के ज्ञाता न थे, और केवल भक्ति आदि को लेकर जैसा रुचा, वैसी रचना करते थे। इनकी रचनाओं में भाव-सबलता के स्थान पर संकीर्णता थी, एवं शब्द-योजना भी उत्कृष्ट न थी।

वैष्णव-संप्रदायोंवाले कविगण इस कथन के बाहर हैं। सुंदरदास भी सुकवि थे, और दादूपंथियों में इनकी रचना सर्वोत्कृष्ट है।

(३८३) ताहिर आगरा-निवासी

इन्होंने संवत् १६७८ में एक कोक्सार अच्छे छंदों में (द्वि० त्रै० रि०) बनाया। आपने अपने ग्रंथ में स्त्री-जाति, सामुद्रिक लक्षण, आसन, वाजीकरण इत्यादि कहे हैं। इनकी कविता ललित, शांत और गंभीर है। हम इनको साधारण श्रेणी में रक्खेंगे।

उदाहरण—

पदुम जाति तन पदुमिनि रानी ; कंज सुवास दुवादस बानी।
कंचन बरन कमल कइ बासा , लोचन भँवर न छाँड़त पासा।
अलप अहार अलप सुख बानी ; अलप काम अति चतुर सयानी।
सेत बसन औ' सेत सिंगारा ; सेत पुहुप मोतिन के हारा।
झीन बसन महँ झलकइ काया , जनु दरपन महँ दीपक छाया।

खोज (प्र० त्रै० रि०) में 'गुणसागर'-नामक इनका एक ग्रंथ मिला है।

(३८४) घासीराम, मल्लावाँ जिला हरदोई के ब्राह्मण (१६८०)

इन्होंने (द्वि० त्रै० रि०) पक्षीविलास-नामक अन्योक्ति का एक बड़ा उत्कृष्ट, अपूर्व ग्रंथ बनाया। इनका समय संवत् १६८० के लगभग है, क्योंकि इनके छंद हज़ारा में भी उद्धृत हैं। इनका काव्य बहुत ही ललित और चित्ता-कर्षक है। इनकी गणना कवि पद्माकर की श्रेणी में है। इन्होंने प्रेम, नीति और विविध विषयों के वर्णन सफलता-पूर्वक किए हैं। कुछ लोगों का विचार है कि अकबर के समयवाले घासीराम मल्लावाँवाले घासीराम से भिन्न हैं।

उदाहरण—

कहाँ पाई माई झूठे मोती मैं सचाई, नहिं,
दुरत दुराई गति पौढ़व गयंद की ;
बड़ेन बड़ाई लघुताई छोटे नरन की,
जानी जाति ऐसे ज्यों परिच्छा सूक चंद की।
जान्यौं मैं अहीर को है हीर को है पीर को है,

हीर को न पीर को मिठाई बिष कद की ,
घासीराम कंठ जब कूबरी लगाई, तब
आई री उघरि सुघराई नँदनंद की ।
स्याम लिखे गुनि प्यारी को आखर, जोग चिठी वह जो सुनि पैहै ,
देखत ही उड़ि जायँगे प्रान, कपूर लौं फेरि न हाथन ऐहै ।
उधौ चुपाहु सुनी खबरैं बृपभानुलली तन क्यों छिप वैहै ,
कौल कली सम राधे हमारी, सु वा कुबजा की खवासिनि ह्वैहै ।
इन्होंने खड़ी बोली में भी कई छंद वनाए ।
"ऐ बाज जहाज़िम क्या ताज़िम चिड़ियों पर बार ख़्वार करते ।" इत्यादि ।

(३८५) जटमल

इस कवि ने सवत् १६८० में गोरा बादल की कथा पद्य में कही, जो मिश्रित भाषा में है । (खोज १९०१) ।

स० १६७१ का लिखा हुआ किसी कवि-कृत भुवनदीपिका गद्य ग्रंथ मिला है ।

उदाहरण—

जउ अस्त्री पुत्र तणी पृछा काइ । आठमइ-नवमइ-स्यानि एकलो सुक्र होइ तउ प्रताप स्वभाव रमतउ कहिवउ ।

(हिं. एकेडेमी ति० प० जुलाई, १९३५)

स० १६८० के लगभग का उदाहरण—

जहाँगीर पातिसा, नूरमहल इतमाददोलारी वेटी असपखांरी बहन, तिणसूँ साहजादे थकाँ यारी हुती तै पछै पातसा हुवौ तरै उणरी मोंटी मारिनै उडनूँ लै मोहला माँ घाली । पातसाही उडनूँ सूँपी ।

(हिं० एकेडेमी वि० प० जुलाई, १९३५) ।

इस समय के अन्य कविगण

नाम—(३८६) वंशीधर मिश्र, सडीला जिला हरदोईवाले ।

रचना-काल—१६७२ । नाम—(३८७) चेतराम ।

ग्रंथ—ढोलामारू की कथा ।

रचना-काल—सं० १६७३ ।

विवरण—महाशय भालेरावजी द्वारा हमको यह कवि ज्ञात हुए हैं ।

नाम—(२८८) मुकंददास ।

ग्रंथ—क्रोक भाषा (द्वि० त्रै० रि०) ।

रचना-काल—१६७३ । नाम—(२८९) दिलदार ।

जन्म-काल—१६५० । रचना-काल—१६७५ ।

विवरण—हज़ारा में इनका काव्य है ।

नाम—(२९०) विट्ठल व्रजवासी (विद्यादास) ।

जन्म-काल—१६५० । रचना-काल—१६७५ ।

विवरण—श्रीकृष्णजी की लीला का वर्णन किया ।

नाम—(२९० अ) वैकुंठमणि शुक्ल ।

रचना-काल—१६७५-८४ तक के लगभग ।

ग्रंथ—(१) वैशाख-माहात्म्य और (२) अगहन-माहात्म्य । खड़ी-बोली मिश्रित गद्य में लिखे ।

विवरण—ओड़छाधिपति म० जसवंतसिंह के दरबार में थे,

उदाहरण—

सब देवतन की कृपा तें वैकुंठमनि सुकुल श्रीमहारानी श्रीरानी चंद्रावती के धरम पढ़िवे के अर्थ यह जयरूप ग्रंथ वैसाख-महातम भाखा करत भए । एक समय नारदजू ब्रह्मा की सभा से उठिके सुमेर पर्वत को भए ।

(हिं० एकेडेमी-त्रि० प० जुलाई, १९२७)

नाम—(२९१) मानसिंह महाराजा ।

ग्रंथ—मान-चरित्र ।

जन्म-काल—१५९२ । रचना-काल—१६७५ तक ।

विवरण—यह महाराज जयपुर-नरेश अकबर के प्रसिद्ध सेनापति थे । इन्होंने कवियों द्वारा 'मानचरित्र'-नामक अपने जीवन-चरित्र का ग्रंथ बनवाया । यह स्वयं भी कवि और कवियों के आश्रयदाता थे ।

नाम—(२९२) गुणसूरि जैनी । ग्रंथ—ढोलासागर ।

रचना-काल—१६७६ ।

नाम—(३६३) चतुर्भुजसहाय, सिरोहिया (उदैपुर) ।

ग्रंथ—स्फुट । रचना-काल—१६७७ ।

विवरण—महाराणा जगतसिंह के यहाँ जागीरदार थे । साधारण श्रेणी ।

नाम—(३६४) दयालदास ।

ग्रंथ— (१) राणा-रासो (खोज १९००), (२) अकल को अंग और (३) रासो को अग ।

रचना-काल—१६७७ के पूर्व । विवरण—मेवाड़ राजपूताना के कवि हैं ।

नाम—(३९५) बूटा उपनाम बूखराय ।

ग्रंथ—स्फुट छद । रचना-काल—१६७७ ।

विवरण—यह कवि जहाँगीरशाह का कृपापात्र था ।

नाम—(३९६) रतनेस, बुंदेलखडी । रचना काल—१६७८ ।

विवरण—साधारण श्रेणी । प्रतापसाह के पिता ।

नाम—(३६७) काशीराम । ग्र थ—कनकमजरी (खोज १९०३) ।

रचना-काल—१६८० और १७३४ के बीच ।

विवरण—राजकुमार लक्ष्मीचद के यहाँ थे ।

नाम—(३९८) जगन । जन्म-काल—१६५२ ।

कविता-काल—१६८० । विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(३९९) तुलसीदास ।

ग्रंथ—वाह सर्वांग (१६८० के पूर्व), बृहस्पति-कांड (१६८० के पूर्व), दोहावली (१६८० के पूर्व), (खोज १९०३) प्रथम त्रैवार्षिक खोज में इनके भगवद्गीता भाषा और ज्ञानदीपिका (१५७४ ई०) ग्रंथ मिले हैं ।

रचना-काल—१६८० के लगभग ।

विवरण—गोस्वामीजी से इतर कवि हैं ।

नाम—(४००) दौलत । जन्म-काल—१६५१ ।

रचना-काल—१६८० । नाम—(४०१) वारक ।

जन्म-काल—१६५५ । रचना-काल—१६८० ।

नाम—(४०२) महाराजा विक्रमाजीतसिंह, ओड़छा।

रचना-काल—१६८० ।

ग्रंथ—(१) लघु सत्सई और (२) माधव-लीला ।

उदाहरण—

तू मोहन उर बस रही, मोहन उर बस कौन ;
सब लीने तोमें रहैं, तू उनही बिच लीन ।
है जमुना जम ना जहाँ, जमुना नाम प्रकास ,
बाहुल शुक्ला न्हाइ वहँ, मिटै जमपुरी त्रास ।
जो जमुना जमुना जहाँ, ना जम उर तेहि ठाइ ;
बिमल मना हरि रँग मना, हो जु अधन दुखदाइ ।

नाम—(४०३) विश्वनाथ प्राचीन ।

जन्म-काल—१६५५ । रचना-काल—१६८० ।

विवरण—साधारण श्रेणी । नाम—(४०४) व्रजपति भट्ट ।

जन्म-काल—१६६० । रचना-काल—१६८० ।

विवरण—इनकी रचना रागसागरोद्भव में है । साधारण श्रेणी । तृ० त्रै० खो० में इनका रंग-भाव-माधुरी-नामक ग्रंथ मिला है, जिसमें नवरस, नायिका-भेद, नखशिख, आभूषण, षट्ऋतु आदि का वर्णन है ।

नाम—(४०५) शिवलाल मिश्र, ओड़छा ।

रचना-काल—१६८० । विवरण—महाकवि बलभद्र के पौत्र ।

उदाहरण—

जाट जुलाहे जुरे दरजी मरजी में मिल्यो चक चूकि चमारो ;
दीनन की कहु कौन सुनै निसि दौस रहैं इनही को अखारो ।
को सिवलाल कि बात कहै रघुनाथ के द्वार पै कोऊ पुकारो ;
ऐसे बड़े करुनाकर को इन पाजिन ने दरबार बिगारो ।

यहाँ इन जातियों की वास्तविक निंदा होकर केवल वैष्णवता में जाति-भेद के निरादर का असली प्रयोजन है ।

नाम—(४०६) शेख़ नबी, मऊ जैतपूर के सूफ़ी कवि ।

ग्रंथ—ज्ञानदीप (१६७६) (आख्यान काव्य ग्रंथ)

रचना-काल—१६८० [खोज १९०२]

नाम—(४०७) समय सुंदर उपाध्याय।

ग्रंथ—(१) शत्रुंजयरास, (२) सांबप्रद्युम्नरास, (३) प्रियमेलक चौपाई, (४) पोपहविधि चौपाई, (५) जिन दत्तर्षि कथा, (६) प्रत्येक बुद्ध चौपाई, (७) करकंडू चौपाई, (८) नलदमयंती चौपाई और (९) वल्कल चोरी चौपाई।

रचना-काल—१६८० के लगभग। नाम—(४०८) संतदास व्रजवासी।

ग्रंथ—(१) शब्दावली और (२) बारहखड़ी।

रचना-काल—१६८०।

नाम—(४०९) हृदयराम पंजाबी।

ग्रंथ—(१) हनुमन्नाटक भाषा और [२] बालिचरित्र।

रचना-काल—१६८० (खोज १९०४)।

विवरण—यह कृष्णदासजी के पुत्र थे। जहाँगीर शाह के समय में यह थे।

नाम—(४१०) अज्ञात। ग्रंथ—रुद्रमालनु कवित्त।

रचना-काल—१७वीं शताब्दी।

विवरण—महाशय भालेरावजी का कथन (माधुरी वर्ष ५, खंड २, संख्या ३) है कि ये कवित्त किसी राजा के उपलक्ष में बनाए गए हैं, और इनमें सिद्ध-राज जयसिंह के निर्माण किए हुये रुद्रमाल तथा सहस्रलिंग तालाबों का वर्णन है। यह रचना हमारे देखने में नहीं आई है। रचयिता का नाम अज्ञात है।

नाम—(४११) धोन, गुजरात-प्रांत।

रचना-काल—१७वीं शताब्दी का उत्तरार्ध। ग्रंथ—स्फुट कविताएँ।

विवरण—महाशय भालेरावजी द्वारा हमको यह कवि ज्ञात हुए हैं। अंतिम तुलसी-काल (१६७१-८०) में ३७९ से ४११ तक ३३ कवि हैं। इनके स्थान दौसा, मल्लाँवाँ, ओड़छा आदि हैं। इस काल के मुख्य कवियों में सुंदरदास

दादूपंथी, थान घासीराम, महाराजा विक्रमाजीतसिंह ओड़छा आदि की गणना है। शैख़ नवी सूफ़ी कवि भी वर्तमान हैं।

अब विविध विषय वर्णन की प्रणाली और भी बढ़ गई तथा भक्ति-साहित्य की ओर से धीरे-धीरे ध्यान हटता गया। यह समय छोटा ही है, और इसके विषय में विशेष कथन की आवश्यकता नहीं। मध्य तुलसी-काल के गुण इसमें और भी विकसित देख पड़ते हैं।

कवि-नामावली